एस.सी.ई.आर.टी., बिहार द्वारा विकसित

दो वर्षीय सेवाकालीन डिप्लोमा इन एलिमेन्ट्री एजुकेशन (दूरस्थ शिक्षा)

स्व–अधिगम सामग्री

विद्यालय और शिक्षा नीति

(द्वितीय सत्र)

S2.2

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्
(एस.सी.ई.आर.टी.), महेन्द्रू, पटना (बिहार)

प्रकाशक
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्
(एस.सी.ई.आर.टी.), महेन्द्रू, पटना, (बिहार)

© **दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, (एस.सी.ई.आर.टी.),बिहार**

डिप्लोमा इन एलिमेन्ट्री एजुकेशन (दूरस्थ शिक्षा) कार्यक्रम	
सत्र	द्वितीय
विषयपत्र	विद्यालय और शिक्षा नीति
ISBN	**978-93-84709-26-6**

द्वितीय संस्करण, 2014	
प्रतियाँ	20,000

डी.एल.एड. (ओ.डी.एल.) के साधनसेवियों एवं प्रशिक्षुओं (कार्यरत शिक्षकों/शिक्षिकाओं) के स्वाध्याय हेतु निःशुल्क उपलब्ध

स्व-अनुदेशनात्मक अधिगम सामग्री विकास समूह
विषय-पत्र : विद्यालय और शिक्षा नीति

दिशाबोध
• श्री हसन वारिस, निदेशक, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, पटना • श्री ए. के. पाण्डेया, निदेशक, शोध एवं प्रशिक्षण निदेशालय, शिक्षा विभाग, बिहार • डॉ. सैयद अब्दुल मोईन, विभागाध्यक्ष, अध्यापक शिक्षा विभाग, एस.सी.ई.आर.टी, पटना • डॉ. श्वेता शांडिल्य, शिक्षा विशेषज्ञ, यूनिसेफ, पटना • डॉ. ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी, प्राचार्य, मैत्रेय कॉलेज ऑफ एजूकेशन एण्ड मैनेजमेन्ट, हाजीपुर(वैशाली)

परामर्श	प्रो. कृष्ण कुमार केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
संपादन	डॉ. ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी प्राचार्य, मैत्रेय कॉलेज ऑफ एजूकेशन एण्ड मैनेजमेन्ट, हाजीपुर (वैशाली)
लेखन	चन्दन श्रीवास्तव केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

लेखन सहयोग
• हर्षवर्द्धन कुमार, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली • अरविन्द कुमार, बी.आर.सी.सी., गया • डॉ. ज्ञान रंजन गंगेश, +2 एस.बी.एल.सी. उच्च विद्यालय, रायपुर, सीतामढ़ी • विक्रांत कुमार, बी. पी. इन्टर विद्यालय, बेगुसराय • जीतेन्द्र कुमार, डायट, गया • इन्द्रजीत कुमार, डायट, सीवान • मनोज कुमार त्रिपाठी, प्रखण्ड संसाधन केन्द्र समन्वयक, बड़हरा, भोजपुर

संयोजन
• डॉ० रीता राय, व्याख्याता, अध्यापक शिक्षा विभाग, एस.सी.ई.आर.टी, पटना

आमुख

इस पूरे डी.एल.एड. कार्यक्रम में इस विषयपत्र का अपना एक अलग स्थान है। इसके दो कारण हैं–पहला यह कि यह विषयपत्र अपने पारम्परिक स्वरूप अर्थात 'शिक्षा के इतिहास' से हटकर एक अलग दृष्टिकोण से विद्यालय और शिक्षा नीतियों के मध्य के संबंध को समझने का अवसर प्रदान करता है। और दूसरा यह कि यह विषयपत्र इस प्रकार का देश में किसी अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में पहला प्रयोग है। यह विषय इस बात का प्रयास करता है कि प्रशिक्षु किसी एक विद्यालय, जो उनका अपना विद्यालय भी हो सकता है, को आधार बनाकर शिक्षा नीतियों एवं आयोगों की अनुशंसाओं को लागू किये जाने में निहित चुनौतियों को समझ सके। इसके लिए प्रत्येक प्रशिक्षण संस्थान अपने आस–पास के किसी एक विद्यालय को संदर्भ बनाकर समझने का अभ्यास करायेगा। इसके द्वारा प्रशिक्षुओं का ध्यान किसी विद्यालय के विभिन्न आयामों पर दिलाया जा सकता है। जिन आयामों को इसके विषयपत्र के रूप मे चुना गया है, वे हैं : विद्यालय का नाम, विद्यालय का भवन, विद्यालय में शिक्षक, पाठ्यक्रम तथा परीक्षा। इन पांच आयामों की मदद से आप अपने विद्यालय के इतिहास को समझने का प्रयास करेंगे और उन्हें शिक्षा नीतियों से जोड़ते हुए शिक्षा के विकास को समझ सकेंगे। इन सभी आयामों में विद्यालय और शिक्षा नीति के विकास का इतिहास छुपा हुआ है। किसी विद्यालय का नाम, उसकी स्थापना से लेकर आज तक में किये गये परिवर्तन स्वयं में शिक्षा नीति के विकासक्रम का संकेत होता है। विद्यालय का भवन स्वयं में विद्यालय के विकास की कहानी समेटे रहता है। विद्यालय में आये परिवर्तनों के साथ–साथ शिक्षक के पेशे व अपेक्षित भूमिका में भी कई महत्वपूर्ण बदलाव होते रहे हैं। अतः आज के संदर्भ में जिस प्रकार के शिक्षक हैं, वे अपने आप में अपने ऐतिहासिक विकास के द्योतक हैं। विद्यालय के पाठ्क्रम से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारियों के माध्यम से अलग–अलग शिक्षा नीतियों के बीच की कड़ियों को एक दूसरे से जोड़ा जा सकता है तथा विद्यालय के पाठ्यक्रम को समझा जा सकता है। साथ ही, हमारे विद्यालय में जिस प्रकार से अभी परीक्षा की व्यवस्था चल रही है, वह भी अब तक के नीतिगत विमर्शों एवं शैक्षिक विकास का ही प्रतिफल है। इस प्रकार चयनित पांच आयामों की इकाइयों के माध्यम से आप अपने विद्यालय से संबंधित ऐतिहासिक एवं नीतिगत विमर्शों को बेहतर तरीके से समझ सकेंगे।

उपरोक्त सभी बिन्दुओं पर व्यापक समझ बनाने के लिये इस पठन सामग्री में उपयुक्त विषयवस्तुओं का समावेश करने का प्रयास किया गया है। इस विषय की अपेक्षानुसार, इसकी इकाइयों में विभिन्न नीतिगत दस्तावेजों से तमाम मौलिक उद्धरणों को लिया गया जिन्हें साभार संदर्भित किया गया है। प्रस्तुत पठन सामग्री को यथासंभव सरल, तथ्यात्मक रूप से सटीक तथा विषयवस्तु में निरन्तरता बनाए रखते हुए लिखने की कोशिश की गई है। यथास्थान गतिविधियों के माध्यम से प्रशिक्षुओं को सक्रिय रूप से सहभागिता निभाने का अवसर दिया गया है। आशा है, आप इस पाठ्यसामग्री के माध्यम से शिक्षा की समकालीन आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील हो सकेंगे। पाठ्य सामग्री को और संवर्द्धित करने के लिए आपके सुझाव सदैव आमंत्रित हैं।

डॉ सैयद अब्दुल मुईन
निदेशक
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार

हसन वारिस
निदेशक
राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्
(एस.सी.ई.आर.टी.), महेन्द्रू, पटना, (बिहार)

विषयपत्र को समझने का दृष्टिकोण

इस विषयपत्र का उद्देश्य प्रशिक्षुओं को विद्यालय के विभिन्न आयामों का विश्लेषण इस प्रकार से करने का अवसर प्रदान करना है जिससे उन्हें देश की प्रमुख शिक्षा नीतियों तथा उनके विकासक्रम का ज्ञान अपनी संस्था के संदर्भ में मिल सके। आमतौर पर शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में 'शिक्षा का इतिहास' एक विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। इसमें शिक्षा से संबंधित ऐतिहासिक तथ्यों को प्रमुखता से चिन्हित किया जाता है, परन्तु ये तथ्य किसी संदर्भ से नहीं जुड़ पाते और इस कारण देश की शिक्षा नीतियों को लेकर एक विहंगम तथा संवेदित दृष्टि का विकास करने में असमर्थ रहते हैं। एक अन्य आम प्रवृत्ति देश की शैक्षिक नीतियों को सिर्फ उनकी प्रमुख अनुशंसाओं के दर्पण में देखने की है। उन अनुशंसाओं का विद्यालय पर क्या प्रभाव पड़ा, इसको केन्द्र में रख कर कभी भी बहस नहीं होती है जैसा की नीचे दिए गए चित्र मे दर्शाया गया हैः

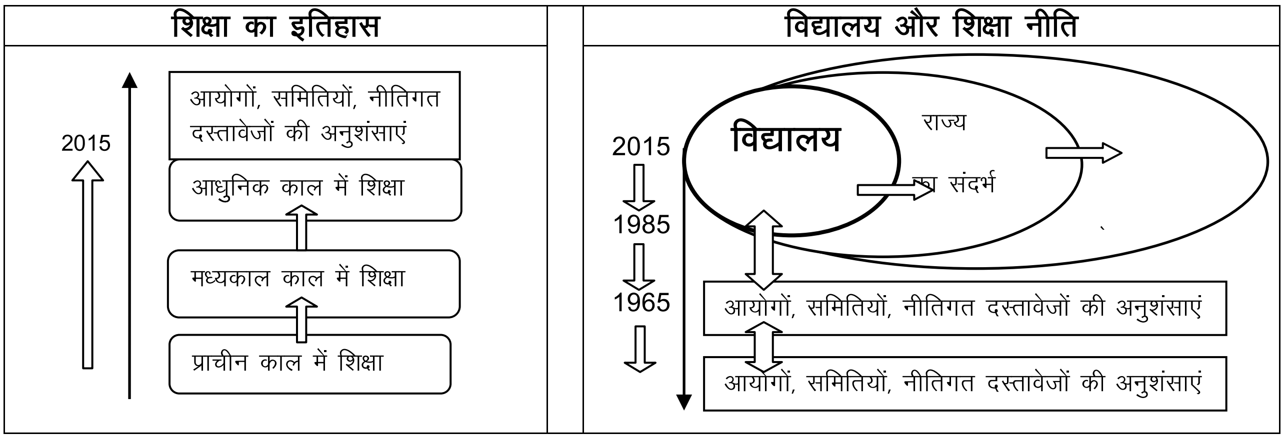

अतः विद्यालय और शिक्षा नीतियों को समझने के इस नए तरीके में, किसी भी शिक्षा नीति के बनाये जाने की प्रक्रिया, उस समय की आवश्यकताओं तथा बाध्यताओं को भी जानने पर जोर दिया गया है। एक शिक्षा नीति से दूसरी शिक्षा नीति का सफर उपलब्धियों और अधूरे रह गये लक्ष्यों की मिलीजुली कथा कहता है। अतः शिक्षा नीतियों को किस रीति से पढ़ाया जाए, यह महत्त्वपूर्ण है। यह पर्चा इस बात का प्रयास करता है कि प्रशिक्षु किसी एक विद्यालय जो उनका अपना विद्यालय भी हो सकता है, को आधार बनाकर शिक्षा नीतियों एवं आयोगों की अनुशंसाओं को लागू किये जाने में निहित चुनौतियों को समझ सके। इसके लिए प्रत्येक प्रशिक्षण संस्थान अपने आस–पास के किसी एक विद्यालय को संदर्भ बनाकर समझने का अभ्यास करायेगा। इसके द्वारा प्रशिक्षुओं का ध्यान किसी विद्यालय के विभिन्न आयामों पर दिलाया जा सकता है। इस विषयपत्र के इकाइयों का एक अलग स्वरूप है जिसमें हम विद्यालय को केन्द्र में रखकर आज के संदर्भ को पहले समझने का प्रयास करते हैं, उससे संबंधित नीतिगत दस्तावेंजों की पड़ताल करते हैं। साथ ही, विद्यालय की स्थिति का राज्य की स्थिति के साथ और राज्य की स्थिति का देश की स्थिति के साथ तुलानात्मक विश्लेषण भी करने की संभावना इकाइयों में निहित है। जब आज की विद्यालयी स्थितियों से संबंधित सूचनाओं की एक समझ बन जाएगी, फिर हम आज से पीछे के समय में आए हुए महत्वपूर्ण नीतिगत परिवर्तनों को समझना शुरू करते हैं और उन्हे अपने विद्यालय के संदर्भ में विश्लेषित करते हैं। इसप्रकार विद्यालय और शिक्षा नीति में आज का संदर्भ एक प्रकार से प्रस्थान बिन्दु होता है और यहां से हम पीछें के समय के महत्वपूर्ण शैक्षिक परिवर्तनों से संबंधित नीतिगत विमर्शों की समझ बनाते हैं। चूंकि, इस पुस्तक को एक नए कलेवर में पहली बार लिखा गया है अतः संशोधनों की अपार संभावना है। इस संदर्भ में आपके सुझाव सदैव आमंत्रित हैं।

चन्दन श्रीवास्तव
लेखक

डॉ0 ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी
संपादक

विषयसूची

इकाई	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1	विद्यालय का नाम	01-24
2	विद्यालय का भवन	25-46
3	विद्यालय में शिक्षक	47-70
4	पाठ्यक्रम	71-99
5	परीक्षा	100-125
	उपयोगी संदर्भ सूची	126-127

इकाई–1
विद्यालय का नाम

1.1 परिचय
1.2 सीखने के उद्देश्य
1.3 पूर्व अनुभव
1.4 अपने विद्यालय के नाम एवं स्वरूप से संबंधित ऐतिहासिक सूचनाओं का संग्रह
1.5 विद्यालय के नामों, प्रकारों व उनके स्वरूपों का विश्लेषण : शिक्षा नीतियों के आलोक में
1.6 समेकन
1.7 मूल्यांकन के प्रश्न

1.1 परिचय

'विद्यालय' शब्द उस संस्था को दिया गया नाम है जिसे समाज में सीखने–सिखाने का एक महत्वपूर्ण औपचारिक केन्द्र माना जाता है। आप इसे स्कूल, पाठशाला, मकतब, आदि भी कहते हैं। हमारे जीवन को यह संस्था किसी न किसी रूप में जरूर प्रभावित करती है। और, हमारे विद्यालय का हमारे जीवन पर प्रभाव विद्यालय से शिक्षा संपन्न कर लेने के साथ खत्म नहीं हो जाता बल्कि यह प्रभाव आजीवन देखने को मिलता है। लेकिन क्या आपने अपने विद्यार्थी जीवन के दौरान ऐसे सवालों को कभी पूछा है–कैसे बना आपका स्कूल?, किसने बनाया इसे?, कब बनाया गया इसे, क्यों बनाया गया इसे?'। यह संभव है कि उस समय आपने इन प्रश्नों पर बहुत गंभीरता से विचार नहीं किया हो। पर, आज एक अध्यापक या अध्यापिका के रूप में आप यह सहज ही समझ सकते हैं कि शिक्षा के केन्द्र अथवा एक संस्था के रूप में विद्यालय अचानक ही अस्तित्व में नहीं आ गया होगा, उसका अपने विकास का एक इतिहास है और इस इतिहास में शिक्षा नीतियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। उसी इतिहास का का एक महत्वपूर्ण द्योतक है– विद्यालय का नाम। किसी विद्यालय का नाम तथा उसकी स्थापना से लेकर वर्तमान समय तक उसके नाम एवं स्वरूप में किया गया परिवर्तन, अपने आप में देश की शिक्षा नीति के विकास क्रम का संकेत है। अतः विद्यालय के नाम में प्रयुक्त प्रत्येक शब्द शिक्षा नीति के विकास क्रम को जानने अथवा ढूंढने में सहायक हो सकता है। इस इकाई में हम विद्यालय के नामों का विश्लेषण करेंगे तथा शिक्षा नीतियों से जोड़ते हुए उनके इतिहास को समझेंगे। यह इकाई आपको अपने विद्यालय के नाम व प्रकार तथा विविध स्वरूपों के पीछे के इतिहास को समझने में भी मदद करेगी।

इस इकाई की संरचना को देखें तो सबसे पहले आज के संदर्भ में विद्यालय के नामों व उनसे संबंधित सूचनाओं की पड़ताल करने की कोशिश की गई है। उसके बाद उनके ऐतिहासिक एवं नीतिगत विमर्शों की चर्चा की गई है जिसमें हम आज की स्थिति को प्रस्थान बिन्दू मानकर इससे पहले के काल में यथासंभव अवरोही क्रम में जा रहे हैं।

1.2 सीखने के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- यह जान पाएंगे कि किसी विद्यालय का नाम कैसे उस विद्यालय के इतिहास को जानने का माध्यम हो सकता है।
- विद्यालय के नाम द्वारा देश/राज्य में विद्यालय व्यवस्था के विकास के विभिन्न चरणों से परिचित हो पाएंगे।
- विभिन्न दस्तावेजों का अध्ययन कर देश में विद्यालयों के विकास क्रम को जान पाएंगे।
- विभिन्न शिक्षा नीतियों के विद्यालयों के नामों एवं स्वरूप पर पड़े प्रभावों को जान पाएंगे।
- दस्तावेजों का अध्ययन कर विभिन्न नीतियों के तहत विशेष प्रकार के विद्यालयों की स्थापना अथवा विकास के विभिन्न आयामों की पड़ताल कर पाएंगे।

1.3 पूर्व अनुभव

आपने तरह–तरह के विद्यालयों के नामों को सुना होगा। कुछ में तो आपकी अपनी शिक्षा हुई होगी और आज एक अध्यापक के रूप में आप किसी विद्यालय में शिक्षणरत है जिसका अपना कोई नाम है। अतः पूर्व अनुभव के तौर पर आपके पास विद्यालयों के विभिन्न नामों की जानकारी है। साथ ही, शायद आपको इसकी भी जानकारी होगी कि वैसे नाम कब प्रचलन में आए, उन विद्यालयों को कब शुरू किया गया।

1.4 अपने विद्यालय के नाम एवं स्वरूप से संबंधित ऐतिहासिक सूचनाओं का संग्रह

किसी विद्यालय का वर्तमान नाम उस विद्यालय के लिए अतीत में अलग–अलग कई नामों के इस्तेमाल किए जाने की कहानी छिपाए हो सकता है। विद्यालय के नाम के रूप में लिखे शब्दों के माध्यम से उस विद्यालय के इतिहास की कड़ियों को जोड़ना अपने–आप मे एक रोचक कार्य होगा। इसके माध्यम से आप विद्यालय के नाम का विश्लेषण तो कर ही पायेंगे, बल्कि साथ में अपने विद्यालय के कई और ऐतिहासिक तथ्यों को जान पाएंगे जैसे– अपने शुरूआत में वह विद्यालय किस प्रकार का था, फिर उसके स्वरूप में क्या–क्या अंतर आया और कैसे आया, आदि।

अतः इस इकाई की शुरूआत हम किसी एक विद्यालय को चुनकर उसके नाम के अस्तित्व में आने और समय के साथ उसमें हुए कुछ परिवर्तनों को जानने का प्रयास करेंगें। इस कार्य के लिए उस विद्यालय से बेहतर क्या होगा, जहाँ आप वर्तमान में सेवारत है। इस विद्यालय को चुनने से न केवल आप समय का बेहतर उपयोग कर पाएंगे, बल्कि संभव है कि अपेक्षाकृत कम प्रयासों द्वारा भी आप अधिक से अधिक सूचनाएँ एकत्र कर पायेंगे। साथ ही, हम यह भी समझेंगे कि यदि विद्यालय के नाम से संबंधित सूचनाओं को इकट्ठा करना हो तो इसके लिए किस प्रकार की योजना बनाई जानी चाहिए। क्योंकि, उपयोगी व प्रचुर सूचनाओं को इकट्ठा करने पर ही विद्यालय के नाम का गहन विश्लेषण किया जा सकेगा। आगे एक गतिविधि के तौर पर विद्यालय के नाम से जुड़ी सूचनाओं को एकत्रित करने की योजना दी गई है। आप इस योजना में अपेक्षित संशोधन करके अपने विद्यालय के नाम संबंधी सूचनाओं को जमा करने में इसका इस्तेमाल कर सकते हैं।

<table>
<tr><th colspan="2">गतिविधि : अपने विद्यालय के नाम को समझना</th></tr>
<tr><td>अपने विद्यालय का पूरा नाम लिखें</td><td>...
....</td></tr>
<tr><td>लिखे गए विद्यालय के नाम के सभी शब्दों को अलग–अलग करके लिखें :
पहला शब्द : ....
दूसरा शब्द : ....
तीसरा शब्द : ....
अगला शब्द : ....
अगला शब्द : ....
अगला शब्द : ....</td><td>उदाहरण
1. अनुसूचित जाति एवं
2. अनुसूचित जनजाति
3. आवसीय
4. कल्याण विद्यालय</td></tr>
<tr><td>अब यह ज्ञात करें कि इन शब्दों का सामान्य अर्थ क्या है? इन शब्दों को पढ़ने से आपके विद्यालय के बारे में कौन–कौन सी सूचना सीधी मिल जाती है।
....
....
....</td><td>1. बहुद्देशीय
2. राजकीय
3. उत्क्रमित
4. मध्यविद्यालय</td></tr>
<tr><td colspan="2">साथ ही, विद्यालय के नाम संबंधी निम्नलिखित सूचनाओं को एकत्र करें।</td></tr>
</table>

क्र0सं0	सूचनार्थ प्रश्न	प्राप्त सूचना	सूचना का स्रोत
1.	विद्यालय की स्थापना का वर्ष		
2.	विद्यालय की स्थापना किसने की? (सरकार, समुदाय या किसी व्यक्ति विशेष से)		
3.	विद्यालय का नामकरण किसने किया।		
4.	क्या कभी विद्यालय के स्वामित्व में कोई परिवर्तन हुआ है? (सरकार, द्वारा अधिग्रहण आदि)		
5.	क्या विद्यालय के नाम में स्थापना से अबतक कोई परिवर्तन हुआ है ? यदि हाँ तो इस संदर्भ में परिवर्तन का वर्ष, कारण आदि को सूचीबद्ध करें।		
6.	विद्यालय के नाम से जुड़ी कोई अन्य रोचक सूचना (यदि आपको उपलब्ध हो पाए)		
7.	क्या विद्यालय के नाम से संबंधित कुछ दस्तावेज भी आपको मिले हैं? यदि हां तो कौन–कौन से?		

इस गतिविधि की सफलता के लिए आपका जिज्ञासु एवं खोजी होना आवश्यक है। यदि आप अपनी जिज्ञासा का इस्तेमाल सूचनाओं तक पहुँचने के लिए सुनियोजित ढंग से करेगें तो न केवल आपको अपनी पड़ताल के बेहतर परिणाम मिलेंगे बल्कि आप इस पूरी अन्वेषण प्रक्रिया को रूचिकर ढंग से कर पायेंगे। सूचना संग्रह के लिए स्रोत के रूप में आप अपने विद्यालय से संबद्ध दस्तावेजों, संबंधित शिक्षा अधिकारियों, अपने विद्यालय के वर्तमान एवं पूर्व प्रधानाध्यपक, शिक्षक–शिक्षकाओं, छात्र–छात्राओं का उपयोग कर सकते हैं। आप अपने विद्यालय के पास–पड़ोस के बुजुर्गों से बात कर सकते हैं। यहां तक की इंटरनेट की सहायता से अपने विद्यालय से जुड़ी बहुत सारी जानकारियाँ इकट्ठी कर सकते हैं।

उपरोक्त संग्रहित सूचनाओं की मदद से अब आप यह विश्लेषण करें कि :	
1.	आपके विद्यालय का जो नाम है वह वैसा क्यों है? उसका हर शब्द क्यों महत्वपूर्ण है?
2.	कौन–कौन से वे कारण थे जिसके कारण विद्यालय का यह नाम निर्धारित किया गया?
3.	क्या विद्यालय के नाम में लिखे शब्दों को निर्धारित करने के पीछे भी कुछ तर्क हैं?
4.	आपके विद्यालय के नाम जैसे क्या बहुतेरे विद्यालय बिहार में हैं या ऐसा विद्यालय एक ही है या बहुत कम संख्या में है?
5.	क्या विद्यालय के नाम के कारण आपके विद्यालय में किसी विशेष प्रकार की शैक्षिक व्यवस्था है?
6.	क्या आपके विद्यालय को उसके नाम के अलावा किसी अन्य नाम से भी जाना जाता है? वैसा क्यों है? विश्लेषण करें।
7.	क्या आपके विद्यालय के नाम के कारण कोई भ्रम भी पैदा होता है?

उपरोक्त विश्लेषण केवल संग्रहित सूचनाओं की मदद से नहीं की जा सकती बल्कि उसके लिए अब हमें विभिन्न शिक्षा नीतियों का सहारा लेना होगा। वास्तव में, विद्यालय के नाम एवं इसके बदलते स्वरूप पर शिक्षा नीतियों का एक गहरा प्रभाव रहा है जिसमें स्वतंत्रता पूर्व व स्वतंत्रता पश्चात दोनो प्रकार की नीतियां शामिल हैं। उन नीतियों को समय–समय पर आए तमाम आयोगों, समितियों, शोधों, आदि की संस्तुतियों के आलोक में तैयार किया गया। उन संस्तुतियों के लागू करने के लिए नए विद्यालयों का सृजन किया गया तथा पहले से विद्यमान विद्यालयों में कई बदलाव भी किए गए। पर, बात सिर्फ नीतियों के कारण विद्यालय के नाम में परिवर्तन का नहीं है बल्कि यह समझना भी आवश्यक है कि वैसी नीतियों के बनने के पीछे का संदर्भ क्या था? उस संदर्भ ने आपके विद्यालय को प्रभावित किया या नहीं किया? वह संदर्भ सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक या राजनीतिक, कुछ भी हो सकता है और अलग–अलग स्थितियों में संदर्भ बदल भी सकता है। आगे के खण्ड में हम विद्यालय के नाम के पीछे कि नीतियों तथा नीतियों के पीछे के संदर्भ की पड़ताल करने की कोशिश करेंगें। इसकी मदद से आप अपने विद्यालय के नाम के इतिहास के नीतिगत विमर्शों से अवगत हो सकेंगे।

1.5 विद्यालय के नामों, प्रकारों व उनके स्वरूपों का विश्लेषण : शिक्षा नीतियों के आलोक में

शिक्षा नीतियों अथवा शिक्षा आयोगों की अनुशंसाओं का अध्ययन सिर्फ सूचना या तथ्यों के रूप में नहीं किया जाना चाहिए बल्कि उन्हें उन तमाम परिस्थितियों से जोड़कर देखा जाना चाहिए जिनकी पृष्ठभूमि में वे अस्तित्व में आए या आगे आएंगे, जैसे–राजनीतिक माहौल, सामाजिक बदलाव, कोई प्रभावी घटना, आदि।

इसके साथ–साथ अपने विद्यालय से संबंधित दस्तावेजों का सतर्क अध्ययन इस प्रकार से करने की अपेक्षा है कि हम उनमें शिक्षा नीतियों के प्रभावों को चिन्हित कर सकें। आगे विद्यालय के नामों का विश्लेषण करने के लिए विभिन्न शैक्षिक एवं नीतिगत दस्तवेजों से कुछ मौलिक अंशों को प्रस्तुत किया जाएगा ताकि आप उनका विश्लेषण स्वयं कर सकें।

यदि हम अपने शैक्षिक इतिहास को देखें तो पाएंगे कि समय–समय पर कई ऐसी शिक्षा नीतियों को बनाया गया जिनके कारण विद्यालय के नाम में बुनियादी बदलाव हुए। उन नीतियों का विश्लेषण करें तो निम्नलिखित तीन तरह के प्रावधानों को चिन्हित किया जा सकता है जिसके कारण कई तरह के नामवाले विद्यालयों की स्थापना हुई या फिर पुराने विद्यालयों के नाम में कुछ परिवर्तन हुआ :

- विद्यालय के स्वामित्व से संबंधित नीतियों के प्रावधान
- विद्यालय के प्रकार से संबंधित नीतियों के प्रावधान
- विद्यालय के स्वरूप से संबंधित नीतियों के प्रावधान

उदाहरण

राजकीय कन्या मध्य विद्यालय

स्वामित्व ← राजकीय | कन्या मध्य → प्रकार एवं स्वरूप

विद्यालय के नाम को विश्लेषित करने का एक महत्वपूर्ण आधार यह हो सकता है कि विद्यालय का स्वामित्व किसके पास है। इसी के आधार पर हम अक्सर किसी विद्यालय के नाम के साथ–साथ 'सरकारी' अथवा 'निजी' विद्यालय वाली पहचान को भी जोड़कर देखते हैं। कुछ हद तक कहा जा सकता है कि भले 'निजी' या 'सरकारी' शब्द विद्यालय के नाम में शामिल हो या न हो, पर हम इन्हें विद्यालयों के नामों के साथ जोड़कर देखते हैं। आज के संदर्भ में, विद्यालय के स्वामित्व का मामला उसके नाम के बारे में बहुत कुछ अनुमान लगाने का अवसर देता है। आगे समान स्कूल प्रणाली आयोग 2007 के अनुसार बिहार में विद्यालयों के प्रकारों का उल्लेख किया जा रहा है।

वित्तिय स्रोत एवं प्रबंधन के आधार पर बिहार में तीन प्रकार के विद्यालय हैं

(क) सरकारी विद्यालय के रूप में विदित सरकार द्वारा पूर्णतः वित्तपोषित सरकारी विद्यालय

(ख) सामान्यतः सहायता प्राप्त विद्यालय के रूप में विदित सरकार द्वारा अंशतः वित्तपोषित निजी विद्यालय

(ग) सामान्यतः सहायतारहित विद्यालय के रूप में विदित सरकार से कोई वित्तीय मदद न लेनेवाले विद्यालय

(स्रोत : समान स्कूल प्रणाली आयोग–2007, बिहार सरकार, पृष्ठ संख्या 61–62)

गतिविधि

आप निम्नांकित तीन प्रकार के विद्यालयों के अंतर्गत अपने आस–पास अवस्थित विद्यालयों के नामों (अपने जिले तथा आस पास के जिले में स्थित कम से कम तीन–तीन विद्यालय) का संग्रह करें :

विद्यालयों के प्रकार		संबंधित विद्यालयों के नाम
1	सहायतारहित विद्यालय (निजी विद्यालय)	
2	सरकारी विद्यालय	
3	सरकार द्वारा अंशतः वित्तपोषित निजी विद्यालय	

सूचना एकत्र करने के बाद यह विश्लेषण करें कि अलग अलग प्रकार के विद्यालयों के नामों में क्या अंतर है। वे अपने नाम में विद्यालय के किस विशेषता को अधिक प्रदर्शित कर रहे हैं।

यदि निजी विद्यालयों की चर्चा करें तो उनके नाम में कई ऐसे शब्द मिलते हैं जो कहीं और से लिए गए है। उदाहरण के तौर पर, आज भारत में निजी विद्यालयों के नाम में 'पब्लिक' शब्द को स्थान दिए जाने का चलन आम है। इसे ब्रिटेन के विद्यालयों से लिया गया है जहां पर सरकारी विद्यालयों के नाम में 'पब्लिक' शब्द जुड़ा हुआ करता है। पर, यहां पर इस शब्द को निजी विद्यालयों ने अपना लिया। इसके साथ–साथ, हाल के वर्षों में कई निजी विद्यालयों के नाम में 'वर्ल्ड स्कूल', 'इन्टर–नेशनल स्कूल' तथा 'ग्लोबल स्कूल' जैसे शब्दों का प्रयोग भी देखा गया है। जरा सोंचिए कि ऐसे विशेषण शब्दों को अपने नाम में जोड़कर वे क्या प्रदर्शित करना चाहते हैं। इस प्रकार की कई विविधताएं नीजी विद्यालयों के नामों में देखी जा सकती हैं। आज यह समझते हैं कि सभी निजी विद्यालय एक जैसे नहीं हैं। स्वामित्व के आधार पर इन विद्यालयों के स्वरूप में कई फर्क है। उदाहरण के तौर पर, अपने आर्थिक स्थिति व सामाजिक फैलाव के आधार पर इन विद्यालयों में कई अंतर देखें जा सकते हैं। कई निजी विद्यालयों का स्वरूप यानि आधाभूत संरचना (Infrastructure) काफी व्यापक होती है जिसके स्तर को वे अपने नाम में भी प्रदर्शित करते हैं। कई निजी विद्यालय बहुत सीमित संसाधनों में चलते हैं पर अपने नाम को इस प्रकार से प्रस्तुत करते हैं ताकि उनकी तरफ आकर्षित हुआ जा सके।

गतिविधि

आप ऐसे कुछ निजी विद्यालयों के नामों का संग्रह करें जो काफी रोचक लगते हैं और यह विश्लेषण करें कि अपने नाम के माध्यम से वे क्या संदेश दे रहें हैं। यह भी पता लगाएं कि उन नामों को उन्होंने क्यों चुना? साथ ही, आप अपने जिले के पांच सबसे अच्छे माने जाने वाले विद्यालयों की सूची बनाएं और यह देखें कि क्या उनमें निजी विद्यालय कितने हैं।

निजी विद्यालयों के लिए वर्तमान में कई नीतिगत प्रावधान हैं जो उनके अस्तित्व को बनाए रखने या फिर उन्हे मान्यता देने के लिए हैं। आपने कई परीक्षा बोर्डों के विषय में सुना होगा, जैसे–सी.बी.एस.ई या आई.सी.एस.ई। इन बोर्डों के अपने कुछ शर्तें हैं जिनको पूरा करने पर निजी विद्यालयों को वे अपना पाठ्यक्रम लागू करने की मान्यता देते हैं। यहां निजी विद्यालयों की चर्चा हम इसलिए कर रहे है क्योंकि आपके विद्यालय पर उनका गहरा प्रभाव पड़ता है। आज आपके विद्यालय की जो स्थिति है उसके बनने में निजी विद्यालयों की भी भूमिका है। आज के समय में आपके सरकारी विद्यालयों की तुलना निजी विद्यालयों से की जा रही है। क्या इस स्थिति के बनने में शिक्षा नीतियों की भी भूमिका रही है, जरा सोंचे। निजी विद्यालयों

की स्थिति के विषय में जिसप्रकार से मानकपूर्ण आम धारणा बना दी गई है, ऐसा क्यों है इस विषय में भी सोंचे। कई बार, ये विद्यालय अपने नाम को किसी अन्य प्रसिद्ध विद्यालय के नाम से मिलते–जुलते नाम पर रख लेते हैं ताकि उनके मानकों के प्रति लोगों का एक भ्रम बना रहे।

गतिविधि

आप अपने आस–पास या अपने जिले के कुछ ऐसे विद्यालयों का पता लगाएं जिन्होंने अपने नाम को किसी अन्य प्रसिद्ध विद्यालय के नाम पर रखा है? क्या इस प्रकार का नाम रखने का फायदा उनको मिलता है? इस बारे में पता लगाएं।

यदि आजादी के बाद के शुरूआती दौर को देखें तो निजी विद्यालयों के प्रति शिक्षा नीतियां मूलतः मौन थी या फिर एक आलोचनात्मक नजरिए में थीं, क्योंकि पिछली शताब्दी के सत्तर के दशक के पहले ऐसा प्रतीत होता है कि इन विद्यालयों का कोई खास महत्व नहीं था। पर, आज के नीतियों में एक बड़ा बदलाव यह आया है कि इन विद्यालयों की स्थिति पर सवाल उठाने के साथ–साथ इनके अस्तित्व को खुलकर अपनाया जा रहा है तथा प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसका उदाहरण आप उपर दिए गए उद्दरण के विश्लेषण में पा सकते हैं। शिक्षा नीतियों के नजरिए में आए इस बदलाव के कई कारण हो सकते हैं जिसमें से एक संभावित कारण है– उदारीकरण की नीति। वैसी नीति जो शिक्षा को एक बाजार के रूप में स्थापित करने पर बल देती हैं तथा इसके लिए निजीकरण को बढ़ावा दे रही है। इसी के फलस्वरूप निजी विद्यालयों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है और सरकारी विद्यालयों की गुणवत्ता गिर रही है ताकि निजी विद्यालयों का फायदा हो।

गतिविधि

आप अपने क्षेत्र में निम्नलिखित बातों का पता लगाने कि कोशिश करें :

- वहां निजी विद्यालयों की क्या संख्या है तथा उन विद्यालयों की स्थापना कब हुई।
- शुरूआत से लेकर आज तक के काल में, उन विद्यालयों में क्या बदलाव आए।
- क्या वे विद्यालय स्वयं को सरकारी विद्यालयों के विकल्प के रूप में प्रस्तुत करते हैं?

अब बात करते हैं सरकारी स्वामित्व वाले विद्यालयों के नामों की। अगर बिहार राज्य में देखें तो राज्य सरकार द्वारा प्रारंभ किए गए विद्यालयों को राजकीय विद्यालय के नाम से जाना जाता है ये विद्यालय सीधे तौर पर अपने स्थापना के काल से ही राज्य के स्वामित्व वाले विद्यालय हैं। इन विद्यालयों के नाम में आप 'राजकीय' शब्द पाते हैं। पर, जब हम राज्य सरकार द्वारा अधिग्रहित उन विद्यालयों की चर्चा करते हैं जिनके नाम में 'राजकीकृत' शब्द जुड़ा हुआ है तो कई और सवाल उठते हैं। जैसे–राजकीकृत होने से पहले इन विद्यालयों की क्या स्थिति थी?, राज्य ने किस प्रकार से इन विद्यालयों को अधिकृत किया?, किन नीतियों ने इन विद्यालयों पर राज्य के स्वामित्व को स्थापित किया? इस विषय में आगे दिए जा रहे नीतिगत दस्तावेज को पढ़े तथा विश्लेषण करें।

प्रारम्भिक शिक्षा से संबंधित अधिनियम, नियम आदि
बिहार गैर–सरकारी प्रारम्भिक विद्यालय (नियन्त्रण–ग्रहण) अधिनियम, 1976
(बिहार अधिनियम संख्या 30ए 1976)

बिहार राज्य में प्रारम्भिक शिक्षा के बेहतर संघटन और विकास के लिए गैर–सरकारी प्रारम्भिक विद्यालयों पर राज्य सरकार द्वारा नियन्त्रण –ग्रहण किए जाने का उपबंध करने के लिए अधिनियम।

भारत गणराज्य के सताईसवें वर्ष में बिहार राज्य विधान –मंडल द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित होः–

1. संक्षिप्त नाम, प्रसार और प्रारम्भ।–

(1) यह अधिनियम बिहार गैर–सरकारी प्रारम्भिक विद्यालयों (नियन्त्रण–ग्रहण) अधिनियम, 1976 कहा जायेगा।

(2)इसका प्रसार संपूर्ण बिहार राज्य में है।

(3)यह 1 जनवरी 1971 से प्रवृत हुआ समझा जायेगा।

2. परिभाषायेंः–जब तक कोई बात विषय अथवा संदर्भ के विरूद्ध न हो, इस अधिनियम में –

(क) "प्रारम्भिक विद्यालय" से अभिप्रेत है, सांतवे वर्ग तक के विभिन्न श्रेणियों के विद्यालय और इनके अन्तर्गत निम्नलिखित भी हैः–

(i) बिहार और उड़ीसा स्थानीय शासन अधिनियम, 1885 (बंगाल अधिनियम 3, 1885) के उपबन्धों के अधीन जिला बोर्ड एवं जिला पर्षद द्वारा स्थापित और प्रशासित विद्यालय।

(ii) बिहार और उड़ीसा नगरपालिका अधिनियम, 1992 (बिहार और उड़ीसा अधिनियम 7,1922) के उपबन्धों के अधीन जिला बोर्ड एवं जिला पर्षद द्वारा स्थापित और प्रशासित विद्यालय।

(iii) पटना नगर निगम अधिनियम, 1951 (बिहार अधिनियम 13, 1952) के उपबन्धों के अधीन पटना नगर निगम द्वारा स्थापित और प्रशासित विद्यालय।

(ख)"अल्पसंख्यक प्रारम्भिक विद्यालयों" से अभिप्रेत है ऐसा विद्यालय, जो राज्य सरकार द्वारा ग्रहण किए जाने के पूर्व संविधान के अनुच्छेद 30 के खण्ड (1) में यथा परिकल्पित किसी भाषा मूलक या धर्ममूलक अल्पसंख्यक द्वारा प्रशासित हो तथा जिसे सरकारी अनुदान प्राप्त हुआ हो;

(ग)"सहायता प्राप्त प्रारम्भिक विद्यालयों" से अभिप्रेत है ऐसा प्राइवेट विद्यालय, जिसे राज्य सरकार द्वारा ग्रहण किए जाने के पूर्व सरकारी अनुदान प्राप्त हुआ हो और जो प्रबंध समिति द्वारा प्रशासित हो;

(घ)"बिना सहायता प्राप्त प्रारम्भिक विद्यालय" से अभिप्रेत है ऐसा कोई प्राइवेट विद्यालय, जो सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हो और जिसे सरकार द्वारा अनुदान प्राप्त नहीं हुआ हो।

3. राज्य सरकार द्वारा गैर–सरकारी प्रारम्भिक विद्यालयों का ग्रहण किया जाना।–

(1) जिला बोर्ड, जिला परिषद्, नगरपालिका बोर्ड और पटना नगर निगम द्वारा प्रबन्धित प्रारम्भिक विद्यालय तथा विस्तार एवं सुधार स्कीम के अधीन खोले गये प्रारंभिक विद्यालय 1 जनवरी 1971 से राज्य सरकार द्वारा ग्रहण कर लिए गये समझे जायेंगे।

(2)सहायता प्राप्त प्रारम्भिक विद्यालय, जिनकी प्रबंध समिति ने बिना किसी शर्त के स्वेच्छापूर्वक विद्यालय का नियंत्रण सरकार को सौंप दिया है, उस तारीख से राज्य सरकार द्वारा ग्रहण किये जायेंगे जो इस प्रयोजनार्थ उप–धारा (4) में निर्दिष्ट जिला समिति द्वारा अवधारित की जायगी।

(3) लोक या प्राइवेट उपक्रमों द्वारा प्रशासित प्रारम्भिक विद्यालय, राज्य–सरकार द्वारा राजपत्र में अधिसूचना प्रकाशित करके उस तारीख से ग्रहण किये जायेंगे जो अधिसूचना में विर्निदिष्ट की जाय।

(4) (क) उप–धारा (1) और (3) में उल्लिखित प्रारम्भिक विद्यालयों को छोड़कर अन्य प्रारम्भिक विद्यालयों के ग्रहण किये जाने के बारे में प्रत्येक जिले में एक जिला समिति होगी, जो राज्य सरकार द्वारा ऐसे विद्यालयों के ग्रहण किये जाने की संभाव्यता की जांच करेगी । उक्त जिला समिति में निम्नलिखित सदस्य रहेंगेः (i)उप विकास आयुक्त/प्रशासक, जिला पर्षद–अध्यक्ष, (ii) जिला शिक्षा अधीक्षक –सचिव, (iii)जिला शिक्षा पदाधिकारी, (iv)जिला विद्यालय निरीक्षिका, (v)संबंद्ध अनुमंडल का अनुमंडल शिक्षा पदाधिकारी और (vi) संबंद्ध विद्यालय उप –निरीक्षक ।

(ख) राज्य सरकार इस प्रकार गठित जिला समिति के कार्मिक में समय–समय पर परिवर्त्तन कर सकेगी।

4. ग्रहण किए जाने के परिणाम :–

(1) धारा 3 के अधीन राज्य सरकार ग्रहण किये गये विद्यालयों के स्वामित्व या कब्जे की सभी चल या अचल आस्तियां या सम्पतियां, जिनके अन्तर्गत विद्यालय से संबंधित भूमि, भवन, दस्तावेज, पुस्तक और रजिस्टर भी है, राज्य सरकार को अन्तरित रहेंगी और उनके स्वामित्व या कब्जे में आ गई समझी जायेगी।

(2) राज्य सरकार द्वारा ग्रहण किये गये विद्यालय में पद धारण करने वाला प्रत्येक पदाधिकारी, शिक्षक या अन्य कर्मचारी, राज्य सरकार को अन्तरित हो गया समझा जायेगा तथा वह राज्य सरकार द्वारा यथा अवधारित पदनाम से राज्य सरकार का पदाधिकारी, शिक्षक या कर्मचारी हो जायेगा । उसकी पदावधि, पारिश्रमिक और सेवा–शर्त एवं निबन्धन वहीं होंगे, जो उक्त विद्यालय के ग्रहण किए जाने के पूर्व थे तथा वह उसी रूप में तब तक कार्य करता रहेगा, जब तक कि राज्य सरकार उसकी पदावधि, पारिश्रमिक, सेवाशर्त एवं निबन्धन में सम्यक परिवर्त्तन न कर दे।

(3) जिला शिक्षा अधीक्षक, अनुमंडल शिक्षा पदाधिकारी –सह–नगरपालिका शिक्षा पदाधिकारी के कार्यालय में कार्य करने के प्रतिनियुक्त स्थानीय निकायों के कर्मचारियों तथा पटना नगर निगम की शिक्षा प्रशाखा में काम करने वाले कर्मचारियों की सेवाएँ राज्य सरकार को अन्तरित और उसके द्वारा ग्रहण की गई समझी जायेगी तथा ऐसे कर्मचारी सेवा के लिए अपना विकल्प देने पर इस अधिनियम के प्रवर्त्तन की तारीख से सरकारी सेवक समझे जायेंगे।

(स्रोत : बिहार प्राथमिक शिक्षा कम्पेंडियम)

बिहार प्राथमिक शिक्षा कम्पोडियम से लिए गए उपरोक्त अंश के विश्लेषण से यह आप समझ सकते हैं कि उन विद्यालयों का इतिहास क्या रहा है जिन्हें 'राजकीयकृत' विद्यालय के नाम से जाना जाता है। साथ ही आप यह भी समझ गए होंगे कि उन नीतियों को कब बनाया गया था जो उन विद्यालयों पर 'राजकीकृत' होने से पहले लागू थीं। आप उपरोक्त अधिनियम का गहन विश्लेषण करें और यह देखें कि उसमें किस प्रकार के विद्यालयों को अधिग्रहित करने की बात की गई है और कौन–कौन सी शर्तें रखी गई हैं। इससे उनके पहले के नाम और अधिग्रहण के बाद के नाम में क्या फर्क आया होगा, तथा इससे उन विद्यालयों की स्थिति में क्या बदलाव आए होंगे।

बिहार सरकार ने 1976 में प्राथमिक एवं मध्य विद्यालयों का औपचारिक अधिग्रहण कर लिया। यह अधिग्रहण 1 जनवरी 1971 से ही प्रभावी माना गया। परिणामस्वरूप बिहार मे सभी प्राथमिक और मध्य विद्यालयों का नियंत्रण और प्रबंधन सरकार के शिक्षा विभाग को प्राप्त हो गया और इससे समाज की सीधी भागीदारी समाप्त हो गई। इस निर्णय ने जहाँ राज्य के प्राथमिक और माध्य विद्यालय को राजकीयकृत बना दिया। वहीं इसके कई अन्य महत्वपूर्ण परिणाम सामने आए। इससे एक ओर शिक्षकों को लाभ हुआ परन्तु सामाजिक नियंत्रण की समाप्ति से विद्यालय का प्रबंधन बुरी तरह प्रभावित हुआ। यह प्रक्रिया छात्र–छात्राओं को फायदा नहीं पहुंचा पायी । कालान्तर में इस कदम ने इस विद्यालयों द्वारा दी जा रही शिक्षा की गुणवत्ता को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया।

गतिविधि

- आप किसी राजकीय और राजकीयकृत विद्यालय का भ्रमण करें और वहां के शिक्षक व शिक्षिकाओं से बातचीत करें तथा यह विश्लेषण करें कि आज के संदर्भ में उनमें कोई अंतर है या नहीं।
- आपका अपना विद्यालय क्या है– राजकीय या राजकीयकृत। इसका कोई प्रभाव विद्यालय के कार्य संचालन पर पड़ता है।

विद्यालय पर स्वामित्व के कारण उसके नाम पर पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा के बाद अब हम विद्यालय के विभिन्न प्रकारों एवं स्वरूपों का विश्लेषण करेंगे जिनका प्रभाव भी विद्यालय के नाम पर पड़ता है। प्रकार और स्वरूप के कारण भी हम सरकारी विद्यालयों के नामों में बहुत सारी विविधताओं को देख सकते हैं। यह देखा गया है कि ये विविधताएं केवल विद्यालयों के नाम तक ही सीमित नहीं है, बल्कि विद्यालय के नाम की विविधता उसके उद्देश्य, दर्शन और यहां तक की वहां शिक्षा की गुणवत्ता को भी प्रभावित करती हैं। सरकारी विद्यालयों के विविध प्रकारों व स्वरूपों की विविधता उसके नाम पर कितना प्रभाव डालती है, यह जानने से पहले सरकारी विद्यालयों के कुछ नामों की सूची से अवगत होते हैं तथा उनको जानने के लिए निम्नलिखित गतिविधि को करें।

गतिविधि

आगे सूची में कुछ सरकारी विद्यालयों के नाम दिए गए हैं। यदि आपके पास कुछ अन्य सरकारी विद्यालयों का नाम हो तो उसे भी इस सूची में शामिल कर लें। अब इन विद्यालयों की कोटि से संबंधित कम से कम किसी एक विद्यालय का भ्रमण करें या उसके विषय में कुछ महत्वपूर्ण जानकारी एकत्रित करें जैसे– उसकी स्थापना का वर्ष, कहां स्थित है, किस शैक्षिक स्तर तक का विद्यालय है, कहां से वित्तपोषित है (राज्य सरकार या केन्द्र सरकार या दोनों)।

सरकारी विद्यालय		किसी एक विद्यालय का उदाहरण	महत्वपूर्ण जानकारियां
1	बहुद्देशीय राजकीय उच्च विद्यालय / जिला स्कूल		
2	बुनियादी विद्यालय		
3	संस्कृत विद्यालय		
4	प्रोजेक्ट कन्या विद्यालय		
5	राजकीय विद्यालय		
6	राजकीयकृत विद्यालय		
7	राजकीय मध्य विद्यालय		
8	राजकीय मदरसा		
9	राजकीय उत्क्रमित उच्च विद्यालय		
10	राजकीय कन्या मध्य विद्यालय		
11	केन्द्रीय विद्यालय		
12	नवोदय विद्यालय		
13	सर्वोदय विद्यालय		
14	अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आवसीय कल्याण विद्यालय		
15	सैनिक विद्यालय		
16	नेतरहाट आवसीय विद्यालय		
17	सिमुलतला आवसीय विद्यालय		
18	अल्पसंख्यक विद्यालय		

दिए गए सरकारी विद्यालयों के नामों में जहां बहुत से अन्य नामों के जोड़े जाने का मार्ग खुला छोड़ा गया है। लेकिन अगर आपके सरकारी विद्यालयों के नामों के बारे में और सूचना देकर आपके आश्चर्य को और बढ़ा दिया जाए तो कैसा रहेगा? आपने निजी विद्यालयों के नामों में तो किसी व्यक्ति विशेष के नाम का समावेश देखा ही होगा मगर क्या आपने कभी सरकारी विद्यालयों के नामों में किसी व्यक्ति के नाम के प्रयोग पर ध्यान दिया है ? आइए हम आपको ऐसे कुछ नामों से अवगत करायें–

ऐसे नाम भी हैं सरकारी विद्यालयों का
• कस्तुरबा गाँधी कन्या विद्यालय • राजा राम मोहन राय सेमिनरी स्कूल • देवी पद चौधरी उच्च विद्यालय • हादी हासमी मध्य विद्यालय • टी के घोष एकेडेमी • कासमी मध्य विद्यालय

इन नामों का इतिहास विद्यालय के इतिहास और उसके साथ जुड़े व्यक्ति के इतिहास को जोड़ देता है । लेकिन इन इतिहासों के मिलन बिन्दु को पहचानना और उसके आधारों को समझने की चुनौती आपको एक प्रशिक्षु होने के साथ एक खोजकर्ता होने का भी अनुभव देगी। इस चुनौती का अगला चरण होगा उन सरकारी नियमों एवं नीतियों की पहचान करना जो ऐसे नामों के अस्तित्व में आने का कारण ही हैं अथवा उनका योगदान ऐसे नामों को किसी समय में परिवर्तित कर देने में रहा।

अभी आपने विद्यालय के नाम से व्यक्तियों के नाम के जुड़े होने को जाना। चलिए, अब कुछ और विद्यालयों के नामों को सूची में शामिल करें जिनके नाम में समूहवाचक संज्ञा अथवा विशेषणों का प्रयोग किया गया है। हलाकि ऐसे कुछ नाम पहली सूची में भी हैं परन्तु यहां संदर्भ, नामों की विविधता में भी समूहवाचक संज्ञा अथवा विशेषणों के प्रयोग को रेखांकित करना है । जरा याद कीजिए, क्या आपने ऐसा कोई सरकारी विद्यालय देखा है जिसके नाम में कोई समूहवाचक संज्ञा या कोई विशेषण जुड़ा हो? आइए, इसके भी कुछ उदाहरण देखें :

सरकारी विद्यालयों के नाम के कुछ और उदाहरण

- स्वतंत्रता सेनानी
- शहीद मध्य विद्यालय
- स्वतंत्र मध्य विद्यालय
- राष्ट्रीय मध्य विद्यालय
- शहीद आरक्षी मध्य विद्यालय
- लोको मध्य विद्यालय
- आर्य कन्या प्राथमिक विद्यालय

इनके अतिरिक्त बिहार के सरकारी विद्यालयों के नामों में एक और विशेष प्रकार भी है। ये ऐसे विद्यालय हैं जिनके नामों में जातियों के नाम शामिल हैं। उदाहरण के लिए ब्राह्मण–भूमिहार राजकीय विद्यालय, कायस्थ राजकीय विद्यालय आदि। जरा सोचिए, ये नाम सरकारी विद्यालयों के नाम का हिस्सा भला कैसे बने? वो कौन सी नीतियाँ हैं जिनके आलोक में सरकारी विद्यालयों में ऐसे नाम वाले विद्यालय अस्तित्व में आए?
सरकारी विद्यालय के नामों को सूची वस्तुतः कहीं आधिक लम्बी है परन्तु यहाँ दिए गए कुछ नाम भी सरकारी विद्यालयों की विविधता को रेखांकित करने के लिए पर्याप्त हैं। आशा है आप जहाँ एक ओर सरकारी विद्यालय की विविधता को जानकर आश्चर्य अथवा रोमांच महसूस कर रहे होंगे वहीं उनके बारे में और अधिक जानने को उत्सुक भी होंगे।

गतिविधि

शिक्षा के अधिकार अधिनियम–2009 में कुछ विद्यालयों के प्रकार का उल्लेख किया गया है, उनको सूचीबद्ध करें तथा उनके विषय में और जानकारी एकत्र करें।

अब तक आपने मुख्य्य रूप से तरह–तरह के विद्यालयों क नाम तथा उनसे संबंधित कुछ ऐतिहासिक जानकारियों से स्वयं को अवगत कराया। पर अभी यह समझना बाकि है कि इन विद्यालयों के बनने तथा उनके नामों को निर्धारित करने के पीछे शिक्षा नीतियों की क्या भूमिका रही। आगे के भाग मे कुछ प्रमुख विद्यालयों को उदाहरण लेते हुए उनका शिक्षा नीतियों से जुड़ाव की चर्चा की गई है। शिक्षा नीतियों से

जुड़ाव से तात्पर्य यह नहीं है कि वैसे विद्यालयों का अस्तित्व शिक्षा नीतियों की सफलता का द्योतक है। बल्कि, कई विद्यालय तो शिक्षा नीतियों के असफल प्रभाव को भी दिखलाते हैं।

उदाहरण के लिए 'नवोदय विद्यालय' की स्थापना का श्रेय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 को जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने ऐसे विशेष प्रतिभा या अभिरूचि वाले बालक–बालिकाओं को, जो आर्थिक रूप से पिछड़े परिवारों से आते हैं, ध्यान में रखकर देश के विभिन्न भागों में गति–निर्धारक (पेस सेटिंग) विद्यालयों के स्थापना की अनुशंसा की। आइए, इस अनुशंसा के कुछ मौलिक अंशों को पढ़े।

गति–निर्धारक स्कूल

5.14 यह सर्वमान्य धारणा है कि विशेष प्रतिभा या योग्यता वाले बच्चों को तेज गति से आगे बढ़ाने के अवसर दिये जाने चाहिए। इसके लिये उन्हें उच्च स्तर की शिक्षा उपलब्ध करानी चाहिए। वे उसकी कीमत दे सकें अथवा नहीं।

5.15 इस उद्देश्य को पूरा करने वाले गति–निर्धारक स्कूल एक निश्चित नमूने के अनुसर देश के विभिन्न भागों में खाले जायेंगे और इनमें नवाचार और प्रयोगों की पूरी गुंजाइश होगी। उनका मुख्य उद्देश्य उत्कृष्टता का लक्ष्य पूरा करना, समानता और सामाजिक न्याय (अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए आरक्षण सहित) लाना, देश के विभिन्न भागों, मुख्यतः ग्रामीण भागों के प्रतिभाशाली बच्चों को एक साथ रहने और सीखने का अवसर देकर राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देना, उनकी पूरी क्षमता को विकसित करना और सबसे महत्वपूर्ण–स्कूल सुधार के राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम में उत्प्रेरक होना है। ये स्कूल आवासी और निःशुल्क होंगे।

4.5.2 कार्य योजना में नवोदय विद्यालयों की योजना का ब्योरा इस प्रकार दिया गया है :

योग्य बच्चों के लिए कार्यक्रम के दो भाग हैं:–

यह विशेष रूप से उन प्रतिभाशाली बच्चों के लिए है जो मौजूदा प्रणाली के अन्दर नहीं आते।

इन प्रतिभाशाली बच्चों की आवश्यकता पूरी करने के लिए नवोदय विद्यालय योजना के अन्तर्गत सातवीं पंचवर्षीय योजना में प्रत्येक जिले में ऐसा एक स्कूल खोला जाएगा। बच्चों के माता–पिता की आर्थिक स्थिति और सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि का विचार किए बिना, यह स्कूल उच्च स्तर की शिक्षा प्रदार करेंगे। इन स्कूलों में ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों के लिए 75% स्थान सुरक्षित होंगे। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों के लिए जिले में उनकी जनसंख्या के मुताबिक आरक्षण होगा लेकिन राष्ट्रीय आरक्षण के अनुसार यह क्रमशः 15%, 7.5% से कम नहीं होगा। लड़कियों की संख्या, स्कूल के कुल विद्यार्थियों की संख्या का 1/3 रखने की कोशिश की जाएगी। इन स्कूलों में आवास और भोजन सहित शिक्षा निःशुल्क होगी। यें स्कूल केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से सम्बद्ध होंगे।

(स्रोत : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा समिति की रिपोर्ट 1990, पृष्ठ सं0 85)

यदि उपरोक्त अंश का विश्लेषण करें तो इससे नवोदय विद्यालय को शुरू करने के उद्दश्यों का पता चलता है और साथ में यह भी जानकारी मिलती है कि उन विद्यालयों का स्वरूप क्या होगा। लेकिन दो और महत्वपूर्ण बातों का पता चलता है। पहला यह कि कोई भी नीति अपने आप में पृथक रूप से पूर्ण नहीं होती, बल्कि यह अपनी विवरण में पहले के नीतियों को समाहित किए हुए होती है। दूसरा यह कि नीतियो

की भाषा को समझना भी अति महत्वपूर्ण है। यह आवश्यक नहीं है कि नीतियों में जो लिखा है, वह स्पष्ट और निरपेक्ष हो। नीतियों द्वारा सुझाए गए बिन्दुओं को उनके क्रियांवयन के संदर्भ में भी समझना जरूरी है।

निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार करें :

आप यह विश्लेषण करें कि नवोदय विद्यालयों की स्थापना जिन उद्देश्यों को पूर्ति के लिए किया गया, क्या वास्तव में उन उद्देश्यों को पूरा किया गया।

नवोदय विद्यालय से मिलती जुलती एक नई योजना का आरम्भ अभी हाल में ही हुआ है जिन्हें 'मॉडल स्कूल' के नाम से जाना जाएगा। ऐसे विद्यालयों का नाम 'मॉडल स्कूल' हाने के पीछे क्या नीतिगत कारण है, इसके लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय की वेबसाइट से लिया गया निम्नखित अंश को पढ़े :

मॉडल स्कूल

प्रधानमंत्री द्वारा 2007 के स्वतंत्रता दिवस के अपने भाषण में की गई घोषणा के अनुपालन में मॉडल स्कूल योजना का प्रारंभ नवम्बर, 2008 में किया गया था। योजना का उद्देश्य एक स्कूल प्रति ब्लॉक की दर से ब्लॉक स्तर पर उत्कृष्टता के बैंचमार्क के रूप में 6000 मॉडल स्कूलों की स्थापना के माध्यम से प्रतिभावान ग्रामीण बच्चों को गुणवत्तायुक्त शिक्षा उपलब्ध कराना है। इस योजना के निम्नलिखित उद्देश्य है :

- प्रत्येक ब्लॉक में अच्छे स्तर का कम–से–कम एक वरिष्ठ माध्यमिक स्कूल होना।
- प्रगति निर्धारण भूमिका।
- नवाचारी पाठ्यचर्या और शिक्षण का प्रयोग।
- अवसंरचना, पाठ्यचर्या, मूल्यांकन और स्कूल अभिशासन का आदर्श होना।

योजना के कार्यान्वयन के दो रूप हैं– अर्थात (1) राज्य/संघ राज्य सरकारों के माध्यम से शैक्षिक रूप से पिछड़े ब्लॉकों (ईबीबी) में 3,500 स्कूलों की स्थापना की जानी है तथा (2) शेष 2,500 स्कूल उन ब्लॉकों, जो शैक्षिक रूप से पिछड़े नहीं हैं, में सार्वजनिक–निजी भागीदारी (पीपीपी) पद्धति के तहत स्थापित किए जाएंगे। राज्य/संघ राज्य क्षेत्र सरकारों के माध्यम से ईबीबी में मॉडल स्कूलों की स्थापना के लिए राज्य क्षेत्र घटक 2009–10 से कार्यान्वित किया जा रहा है तथा उन ब्लॉकों, जो शैक्षिक रूप से पिछड़े नहीं हैं, में मॉडल स्कूलों की स्थापना के लिए पीपीपी घटक का कार्यान्वयन 2012–13 से शुरू किया गया है।

(स्रोत : मानव संसाधन विकास मंत्रालय का वेबसाइट, भारत सरकार)

आप जरा विमर्श करें कि जिस प्रकार की यह नए विद्यालयों की नीति बनाई गई है, उससे सरकारी विद्यालयों की स्थिति में कोई बदलाव आएगा या फिर नवोदय विद्यालय की तरह ही, ये विद्यालय भी अलग थलग पड़ जाएंगे तथा स्वयं को अन्य विद्यालयों से उपर मानेंगे।

यह कहना गलत नहीं होगा कि जिन नीतियों को समाज में समानता लाने के वास्ते विद्यालयों में शिक्षा की स्थिति को सुधारने के लिए तैयार किया गया था, उन्हीं नीतियों ने समाज में विषता को बरकरार रखने का

काम भी किया। उन नीतियों की मदद से समाज में ऐसे विद्यालयों को खोला गया जो गैर बराबरी को बढ़ावा देनेवाले थे। उन नीतियों के कारण विद्यालयों में ही एक गैर बराबरी का बहुपरतीय व्यवस्था बन गई। नेतरहाट विद्यालय, नवोदय विद्यालय, केन्द्रीय विद्यालय, आदि इसके उदाहरण हैं। इन विद्यालयों के बनाने के पीछे कुछ कल्याणकारी उद्देश्य थें, तो कुछ व्यवस्थामूलक, जिनकी ओट में सामाजिक असमानता का भाव भी उत्तरोत्तर बढ़ता गया। बिहार में भी कल्याण की अवधारणा पर आधारित कई विद्यालय खोले गए। आइए उनके विषय में जाने और यह विश्लेषण करें कि उनका स्वरूप क्या रहा। साथ ही यह भी विचार करें कि आज के समय में उनकी सार्थक उपयोगिता है, इस संदर्भ में समान स्कूल प्रणाली आयोग की निम्नलिखित टिप्पणी का विवेचन करें।

कल्याण की अवधारणा पर संचालित विद्यालय

बिहार में कल्याण विभाग अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के बच्चों के लिए विशेष रूप से स्थापित 73 आवासीय विद्यालयों का संचालन करता है। इनमें से 12 प्राथमिक विद्यालय हैं जो अनुसूचित जाति के बच्चों के लिए हैं। 8 मध्य विद्यालय हैं जिनमें से 1 अनुसूचित जाति तथा 7 अनुसूचित जनजाति के बच्चों के लिए हैं। 53 माध्यमिक विद्यालय हैं जिनमें से 38 अनुसूचित जाति तथा 8 अनुसूचित जनजाति के बच्चों तथा 7 अन्य पिछड़े वर्गों के बच्चों के लिए हैं ।

आयोग का यह विचार है कि जाति अथवा वर्ग पर आधारित विद्यालयों का संचालन उस अवधारणा के अनुरूप नहीं है जिसके अंतर्गत विद्यालय का बच्चों के समाजीकरण प्रधान केन्द्र माना जाता है, और न ही यह शिक्षा को समावेशी बनाने की दिशा में ले जाता है। विशेष आवश्यकता वाली शिक्षा का विचार अंतराष्ट्रीय स्तर पर यूनेस्को द्वारा सन् 1994 में आयोजित सलमांका सम्मेलन में ही त्याग दिया गया था।

उक्त सम्मेलन द्वारा स्वीकृत घोषणा में यह स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि विशिष्ट कोटि के बच्चों के लिए विशेष प्रकार के स्कूलों की कोई आवश्यकता नहीं है। बच्चों को उनकी जाति के आधार पर विभिन्न विद्यालयों में विभाजित करना राष्ट्रनिर्माण के हित में नहीं है। इससे राष्ट्रीय एकता की जगह अनेकता को बढ़ावा मिलता है। एक हद तक ऐसे स्कूलों का औचित्य उसी स्थिति में बनता है जब विद्यालयों का नितांत अभाव हो गया हो। लेकिन इस आयोग द्वारा अनुशंसित समान स्कूल प्रणाली के मुख्य उद्देश्यों में से एक उद्देश्य यह है कि शिक्षा के माध्यमिक स्तर तक सार्वजनीकरण तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर तक लगभग सार्वजनीकरण हेतु जरूरी समस्त विद्यालयों का निर्माण तथा विकास होना चाहिए। ऐसी स्थिति में विशिष्ट कोटि वाले किसी विशेष विद्यालयों की आवश्यकता नहीं रह जाती है, न किसी विशेष जाति अथवा समुदाय के बच्चों के लिए विशेष छात्रावासों की। समान स्कूल प्रणाली के अंतर्गत समस्त कोटि के बच्चों के लिए 1 कि.मी. के दायरे में प्रारम्भिक, 3 कि.मी के दायरे में मध्य तथा 5 कि.मी. के दायरे में माध्यमिक स्तर का विद्यालय रहेगा। इससे प्रत्येक विद्यार्थी के लिए घर से स्कूल जाना सहज संभव हो सकेगा तथा छात्रावास की जरूरत जाती रहेगी। यही बात केन्द्र सरकार के मंत्रालयों द्वारा संचालित विशेष आवश्यकता वाले विद्यालयों , जैसे कि केन्द्रीय श्रम मंत्रालय द्वारा संचालित बाल श्रम विद्यालय, के ऊपर भी लागू होती है। इसके अतिरिक्त, केन्द्र सरकार अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति से इतर समाज के अन्य वर्गों के लिए भी विशेष आवासीय विद्यालयों की स्थापना पर विचार कर रही है। यह भी आयोग द्वारा अनुशंसित समान स्कूल प्रणाली के अनुरूप नहीं होगी।

(स्रोतः समान स्कूल प्रणाली आयोग–2007, बिहार सरकार, पृष्ठ संख्या 112)

कल्याणकारी विद्यालयों के साथ–साथ विद्यालयों की एक और श्रेणी है जिसे वित्तरहित विद्यालय कहते हैं। समान स्कूल प्रणाली आयोग ने इनके विषय में कुछ नीतिगत विमर्शों को प्रस्तुत किया है। आइए उन्हें भी जानकर अपने विश्लेषण में शामिल करें :

वित्तरहित विद्यालय

वित्तरहित विद्यालयों में शामिल है : (क) वैसे विद्यालय जिन्हें स्थापना की अनुमति मिल चुकी हो लेकिन मान्यता प्राप्त न हो; और (ख) वैसे मान्यताप्राप्त विद्यालय जिन्हें सरकार ने अधिग्रहित नहीं किया हो । इनमें प्रारंभिक, माध्यमिक और उच्च माध्यमिक सभी स्तरों के विद्यालय हैं। बिहार में कई बालिका विद्यालय भी वित्तरहित श्रेणी में है। वित्तरहित मदरसा एवं संस्कृत विद्यालय भी इसी श्रेणी में हैं। आयोग ने इस तरह के कई विद्यालयों का भ्रमण किया और पाया कि इन विद्यालयों में विद्यमान स्थितियां अत्यंत असंतोषजनक हैं । इनमें से कई विद्यालयों में नियमित शिक्षण का कार्य नहीं होता है। उनका काम छात्र–छात्राओं के लिए परीक्षाओं की अनुमति लेने तक सीमित रहता है जिसका वे शुल्क वसूलते हैं। इन विद्यालयों के अधिकांश शिक्षकों की जीविका उनके निजी ट्यूशन से चलती है जिनकी परीक्षाओं की व्यवस्था ये विद्यालय करते हैं। इन विद्यालयों में औपचारिक रूप से नामांकित छात्रों का शिक्षण प्रायः निजी ट्यूशन द्वारा होता है। आयोग ने इस श्रेणी के जिन विद्यालयों का भ्रमण किया उनमें अधिकांश न तो कोई नामांकन पंजी दिखला सके और न ही उन्होंने प्रत्येक कक्षा में नामांकन व उपस्थिति के बारे में आंकड़े प्रस्तुत किए।

कई ऐसे उदाहरण भी हैं जहाँ जमीन और अन्य परिसंपित्तियों के स्वामित्व के मामले में इन विद्यालयों के दावे भी संदिग्ध दिखे। आयोग का यह भी मत है कि कई विद्यालयों की स्थापना प्रभावशाली व्यक्तियों ने अपने सगे संबंधियों तथा परिचितों को शिक्षक के रूप में बहाल करने और पैसा कमाने की खातिर की है।

(स्रोत : समान स्कूल प्रणाली आयोग–2007, बिहार सरकार, पृष्ठ संख्या 108)

उपरोक्त कल्याणकारी या फिर वित्तरहित विद्यालयों के संदर्भ को समझना भी अति आवश्यक है क्योंकि वे भी आज की शिक्षा व्यवस्था के अंग हैं और किसी नीतिगत फैसले का प्रतिफल हैं। उनके संदर्भ में कई सवाल निकलरकर आते हैं जैसे क्या ऐसे विद्यालयों को बने रहना चाहिए। यदि बने रहना चाहिए तो ऐसे विद्यालयों की उपेक्षा क्यों हो रही है? क्यों उनके संसाधनों पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा। क्या उनके नाम के कारण भी उन विद्यालयों को उपेक्षित स्थिति में छोड़ दिया जाता है।

गतिविधि

ऐसे कुछ कल्याणकारी विद्यालयों एवं वित्तरहित विद्यालयों का पता लगाएं तथा उनके विषय में जानकारी एकत्र करें। एकत्रित जानकारी के आधार पर उनकी स्थिति का विश्लेषण करें। यह भी विश्लेषण करें कि उनकी स्थिति और आपके विद्यालय की स्थिति में क्या अंतर है?

जब हम नीतियों के प्रभाव की बात करते हैं तो उसमें विद्यालय के विभिन्न स्तरों की चर्चा करनी आवश्यक है। आपने अपने आस–पास अलग–अलग स्तर वाले विद्यालयों को देखा होगा। एक प्रकार से विद्यालयों का स्तरीकरण शिक्षा की निरंतरता को भी प्रदर्शित करता है और दो स्तरों की शिक्षा के बीच में अंतर को भी। आइए विद्यालयों के कुछ स्तरों के उदाहरणों को देखें जो उनके नाम में भी शामिल होते हैं। इसमें आप अन्य उदाहरणों को भी जोड़ लें।

विद्यालय के विभिन्न स्तर		
स्तर		**कक्षा विवरण**
प्राथमिक स्तर	Primary Level	कक्षा–1 से 5
प्रारम्भिक स्तर	Elementary Level	कक्षा–1 से 8
उच्च प्राथमिक स्तर	Upper Primary Level	कक्षा–6 से 8
माध्यमिक स्तर	Secondary Level	कक्षा–9 से 10
उच्च माध्यमिक	Higher Secondary Level	कक्षा–11 से 12

उपरोक्त संदर्भ में 1968 की शिक्षा नीति के 10+2+3 मॉडल को समझना आवश्यक है। इसके अनुसार 10 वर्ष तक के प्राथमिक अवस्था की सामान्य शिक्षा, फिर दो साल की विशेष शिक्षा (व्यावसायिक पाठ्यक्रम भी) और फिर तीनवर्षीय विश्वविद्यालयी शिक्षा की बात की गई है। इस नीति के आगे अपनाया गया। 1965–66 में बिहार में शिक्षा की जो व्यवस्था थी उसे आगे दिया जा रहा है।

बिहार में शिक्षा का स्वरूप

I	II	III	IV	V	VI	VII
अवर प्राथमिक					**उच्चतर प्राथमिक**	

VIII	IX	X	XI	XII
अवर माध्यमिक				**पूर्व विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम/प्राक् डिग्री**

अथवा

VIII	IX	X	XI	XII
उच्चतर माध्यमिक				

1	2	3
बी.ए./बी.एस.सी./बी.कॉम.		

(स्रोत : शिक्षा आयोग की रिपोर्ट 1964–66)

शिक्षा के उपरोक्त व्यवस्था को बिहार मे आज की व्यवस्था से तुलना करें तो आप पाएंगे कि कई बदलाव हुए हैं तो कई स्थितियां अब भी बरकरार है। आगे शिक्षा आयोग 1964–66 से कुछ अंशों को दिया जा रहा है, जिसको पढ़ने से आज की स्कूली व्यवस्था का विश्लेषण करने मे मदद मिलेगी।

हम एक लचीली शैक्षिक संरचना की कल्पना करते हैं जिसमें निम्नलिखित वस्तुओं का समावेश हो :

- एक वर्ष से तीन वर्ष तक की पूर्व स्कूलीय अवस्था
- सात से आठ वर्ष तक की प्राथमिक अवस्था जिसके दो उप –भाग हों ; प्रथम चार से पांच वर्ष की अवर प्राथमिक अवस्था, द्वितीय 3 वर्ष की उच्चतर प्राथमिक व्यवस्था।
- अवर माध्यमिक अथवा हाई स्कूल अवस्था जिसमें 2 या 3 वर्ष की सामान्य शिक्षा हो अथवा 1 से 3 वर्ष की व्यावसायिक शिक्षा हो।
- उच्चतर माध्यमिक अवस्था, जिसमें 2 वर्ष की सामान्य शिक्षा हो अथवा जिसमें 1 से 3 वर्ष की व्यावसायिक शिक्षा हो।
- उच्चतर शिक्षा की अवस्था, जिसमें से 3 या उससे अधिक वर्षों का प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम हो तथा जिसके उपरांत द्वितीय डिग्री अथवा शोध डिग्रियों के पाठ्यक्रम हों जिनकी विभिन्न अवधियां हो।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा का गठन पृथक रूप से सातवें अध्याय में दिया हुआ है। यहाँ हम स्कूली तथा उच्चतर शिक्षा के पुनर्गठन का विशद विवेचन करेंगे।

हम सोचते हैं कि :

1. स्कूली शिक्षा के 10 वर्ष, जिसमें 7 या 8 वर्ष की प्राथमिक अवस्था तथा 2 या 3 वर्ष की अवर माध्यमिक अवस्था होगी, सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम की ही व्यवस्था करेंगे न कि विशेषीकरण की।
2. प्राथमिक अवस्था के पूर्व यथासंभव 1 से 3 वर्ष की पूर्व प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था होगी।
3. कक्षा एक की प्रवेश–आयु सामान्यतः 6+ वर्ष से कम की न होगी।
4. प्राथमिक अवस्था के अंत में लगभग 20 प्रतिशत छात्र स्कूल प्रणाली छोड़कर कार्मिक जीवन में प्रवेश करेंगे : अन्य 20 प्रतिशत छात्र सामान्य शिक्षा को छोड़कर एक से तीन वर्ष तक की व्यावसायिक शिक्षा में प्रवेश करेंगे और शेष 60 प्रतिशत सामान्य शिक्षा की धारा में अग्रसर रहेंगे।
5. 10 वर्ष की स्कूल शिक्षा के अंत में बाह्य परीक्षा होगी ।
6. 10 वर्ष के अंत में होने वाली परीक्षा का स्तर उस स्तर से तुलनीय होगा जो कि पाठ्यक्रम तथा उपलब्धियों दोनों की दृष्टि से इस अवस्था के लिए राष्ट्र ने निशचित किया हो।
7. 10 वर्ष की स्कूली शिक्षा के उपरांत लगभग 40 प्रतिशत छात्र स्कूल शिक्षा प्रणाली को छोड़कर कार्मिक जीवन में प्रवेश करेंगे, अन्य 30 प्रतिशत छात्र सामान्य शिक्षा को छोड़कर 1 से 3 वर्ष की व्यावसायिक शिक्षा में पदार्पण करेंगे, शेष 30 प्रतिशत छात्र सामान्य शिक्षा की धारा में अग्रसर रहेंगे जिसकी अवधि 1 से 2 वर्ष की होगी।

(स्रोत : शिक्षा आयोग, 1964–66)

साठ के दशक में एक ही स्तर के विद्यालय को भिन्न–भिन्न नामों से दर्शाया जाता था, साथ ही उनके स्तरों में भी कुछ कक्षाएं सुविधानुसार जुड़ती या घटती रहती थीं। इससे विद्यालयी व्यवस्था के एक सार्वभौमिक स्वरूप को गढ़ने और नीतियां बनाने में कई दिक्कतें आती थीं। इस संदर्भ में शिक्षा आयोग ने

अलग अलग नाम से चलनेवाले विभिन्न स्तरों के विद्यालयों के लिए कुछ समान नाम सूझाएं जिन्हे आगे सारणी में दिया जा रहा है।

शिक्षा आयोग–1964 द्वारा प्रस्तावित नाम पद्धति		उस समय चलन में विद्यालय नाम पद्धति
1. पूर्व प्राथमिक		• पूर्व प्राथमिक • पूर्व बेसिक (बुनियादी) • किंडरगार्टन • मांटेसरी आदि
2. प्राथमिक (कक्षाएँ 1–7 या 1–8)		
क	अवर प्राथमिक (कक्षाएँ 1–4 या 1–5)	• प्राथमिक (पंजाब आदि कतिपय राज्यों में) • अवर प्राथमिक (गुजरात आदि कतिपय राज्यों में) • जूनियर बेसिक • अवर आरम्भिक (मद्रास आदि कतिपय राज्यों में)
ख	उच्चतर प्राथमिक कक्षाएँ (कक्षाएँ 5–8 या 6– 8)	• मिडिल (पंजाब आदि कतिपय राज्यों में) • जूनियर हाई स्कूल (जैसे उत्तर प्रदेश में) • अपर प्राइमरी (गुजरात आदि कतिपय राज्यों में) • सीनियर बेसिक • हायर एलिमेन्टरी (मद्रास आदि कुछेक राज्यों में) • हाई स्कूल, उच्चतर –माध्यमिक स्कूल
3. माध्यमिक कक्षाएँ (कक्षाएँ 8–12 या 9–12)		
क	अवर माध्यमिक शिक्षा (कक्षाएँ 8–10 या 9–10)	• हाई स्कूल
ख	उच्चतर माध्यमिक शिक्षा (कक्षाएँ 11–12)	• इसमें (राजस्थान आदि की) कक्षा–11 तथा पी०यू०सी० भी सम्मिलित हैं । इसमें केरल के जूनियर कॉलेज भी सम्मिलित होंगे • उत्तर प्रदेश की इंटर कक्षाएँ भी इसमें सम्मिलित होंगी। • इसमें पूर्व वृत्तिक, प्री–मेडिकल तथा प्री–इंजीनियरी के सत्र भी सम्मिलित होंगे।

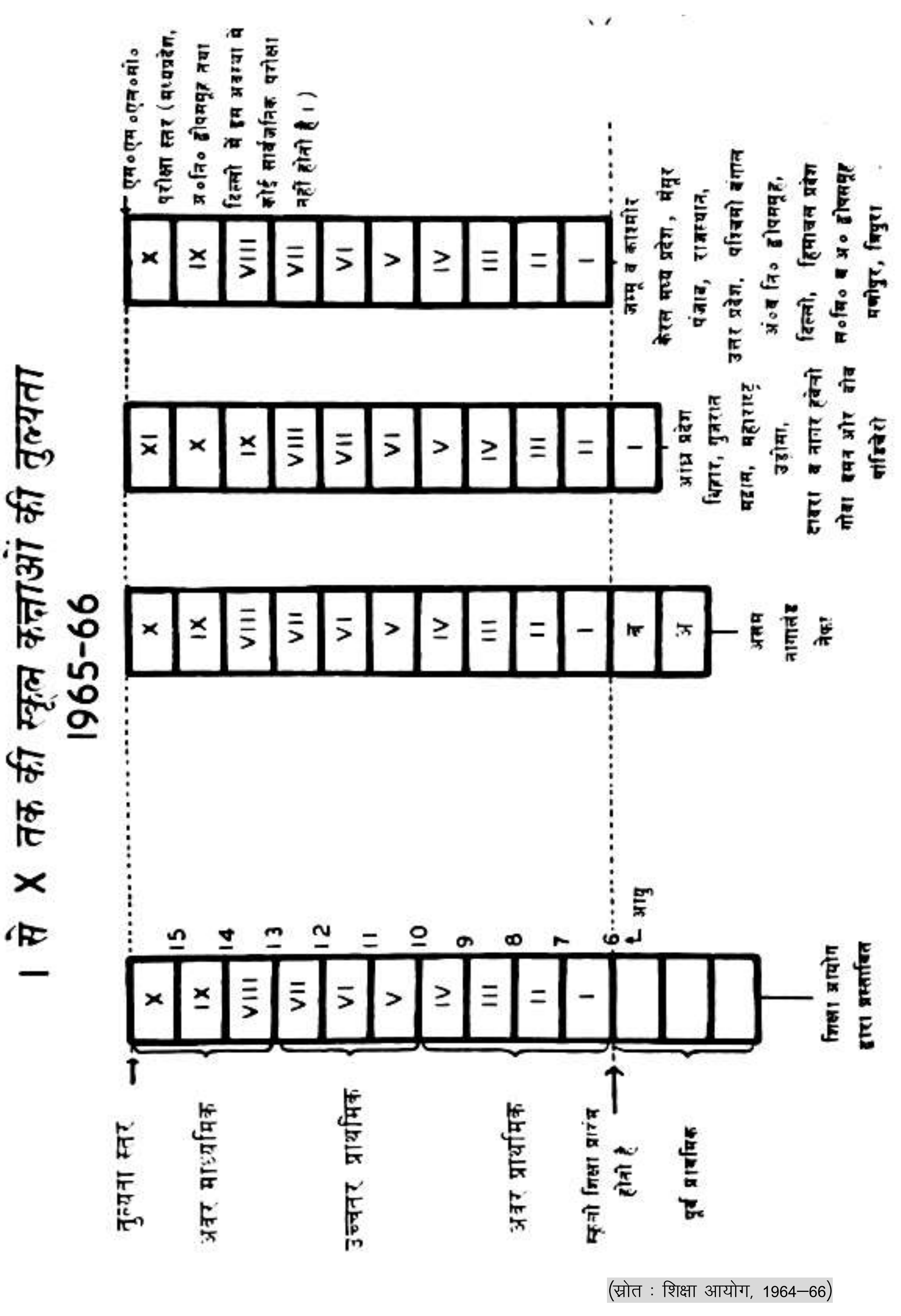

(स्रोत : शिक्षा आयोग, 1964–66)

शिक्षा आयोग 1964 की रिपोर्ट ले लिए गए उपरोक्त अंशों से उस समय के विद्यालयी शिक्षा के स्वरूप को आप देख सकते हैं। इसके साथ ही, आयोग ने जिस प्रकार की आगामी शिक्षा व्यवस्था की बात की उसका भी आपने विश्लेषण कर लिया होगा। साथ ही, उस समय के राज्यों में किस प्रकार की स्थिति थी, इसको भी उपरोक्त सारणी में दर्शाया गया है। इन अंशों के माध्यम से 1964 के पहले की विद्यालयी स्वरूप के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है जो व्यवस्था अंग्रेजी शासन के द्वारा शुरू की गई व्यवस्था थी।

यदि विद्यालयों के स्तरीकरण के इतिहास में और पीछे जाएं तो हम पाएंगे कि इस प्रकार के कक्षावार स्तरीकरण का पहली झलक 1854 के वुड्स डिसपैच नीति में मिलती है। इससे पहले के देशज स्कूलों में ज्ञान का कक्षावार स्पष्ट वर्गीकरण नहीं मिलता है।

गतिविधि

आपके विद्यालय का भी एक स्तर (Level) होगा। जरा विश्लेषण करें कि इसके कारण आपके विद्यालय की व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है।

स्वतंत्रतापूर्व के विद्यालयों के नाम एवं स्वरूप की पड़ताल

अब तक हमने आज के संदर्भ में जो विद्यालय हैं उनके विषय में चर्चा की। परन्तु भारतीय शिक्षा के अतीत में देखें तो यह पाएंगे कि जिस बात ने शिक्षा व्यवस्था को सदा के लिए परिवर्तित करते हुए वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की नींव डाली वह थी भारत में अंग्रेजों का आगमन एवं सत्ता पर अधिकार जमा लेना। विद्यालय व्यवस्था का जो स्वरूप आज हम भारत में देख रहे हैं वह अंग्रेजों द्वारा ही इस देश में लागू की गई। अंग्रेजों की नीतियों ने न केवल अपने द्वारा लायी गयी विद्यालय व्यवस्था को संरक्षित एवं प्रोत्साहित करने का कार्य किया बल्कि उस समय की देशी शिक्षा व्यवस्था को नष्ट करने के भी उपाय किये। उसी दौरान अंग्रेजी विद्यालयों के बहिष्कार स्वरूप राष्ट्रीय विद्यालयों को भी खोला गया। आइए इन विद्यालयों के नाम, प्रकार एवं स्वरूप से भी एक संक्षिप्त परिचय करते हैं।

यदि आजादी से लगभग एक दशक पहले जाते हैं तो बुनियादी विद्यालयों के नाम से स्थापित राष्ट्रीय विद्यालयों से संदर्भ से आप परिचित हो सकेंगे। इन विद्यालय के पीछे के इतिहास को समझना जरूरी है तभी हम यह समझ पाएंगे कि इसका नाम या स्वरूप उस समय के अन्य विद्यालयों से अलग क्यों था। ये विद्यालय यह भी इंगित करते है कि विद्यालयों का चरित्र सिर्फ शैक्षिक न होकर राजनैतिक भी होता है। इन विद्यालयों ने आजादी के आंदोलन में देश की शिक्षा के राष्ट्रीय चरित्र को स्थापित करने में विशेष भूमिका निभाई। इसकी शुरूआत अक्तूबर, 1937 में गांधी जी के सभापतित्व में वर्धा में शिक्षा–क्षेत्र के राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें नई तालीम के मसौदे को तैयार किया गया। इसमें यह प्रस्तावित किया गया कि राष्ट्र भर में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा होनी चाहिए जिसकी अवधि सात वर्ष हो, यह शिक्षा मातृ–भाषा के माध्यम से दी जाए और इस पूरी अवधि की शिक्षा का केन्द्र एक ऐसा शिल्प हो जो उत्पादक एवं बच्चे के वातावरण के अनुकूल हो। सम्मेलन ने डॉ0 जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में शिक्षा–विशेषज्ञों की एक समिति बनाई जिसे बुनियादी शिक्षा का एक पूरा पाठ्यक्रम बनाने का काम सौंपा गया। इस समिति की रिपोर्ट 'वर्धा शिक्षा योजना' के नाम से मार्च, 1938 में प्रकाशित हुई। साथ ही अप्रैल, 1938 में 'हिन्दुस्तानी तालीमी संघ' के नाम से एक बोर्ड की स्थापना हुई, जिसे बुनियादी विद्यालयों को खोलने तथा उनके लिए शिक्षाकर्मियों को तैयार करने का जिम्मा दिया गया। फिर, तात्कालीन बिहार,

उड़ीसा, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, बम्बई, आसाम, आदि प्रांतों में बुनियादी विद्यालयों को सामुदायिक सहयोग से प्रयोगात्मक रूप में खोला गया।

इन विद्यालयों ने औपनिवेशिक मानसिकता की गुलामी से मुग्ध तात्कालीन समाज को यह आईना दिखाया कि हमारे देश की हमारी शिक्षा और उस शिक्षा के लिए हमारे विद्यालय भी हो सकते हैं। उस समय, बुनियादी विद्यालयों ने भारतीय जनता के समक्ष विद्यालयी शिक्षा के लिए एक नया विकल्प प्रस्तुत किया, जिसमें खुद का इज़ाद किया हुआ पढ़ने–लिखने का अपना एक अनुठा तरीका था। एक प्रकार से, इन विद्यालयों के द्वारा शिक्षा के राष्ट्रीय चरित्र को प्रस्तुत किया गया, जिसने देश के गांवों को केन्द्र में रखा और गांव के हर कारीगर व्यक्ति के हुनर को विद्यालय से जोड़ने का प्रयास किया। बुनियादी विद्यालयों के संदर्भ में बिहार की अपनी एक महत्वपूर्ण स्थिति थी, जिसे आगे दिया जा रहा है।

सन् 1939–1957 के काल को बुनियादी शिक्षा काल की संज्ञा दी जा सकती है। इस अवधि में बिहार के विभिन्न जिलों में सैकड़ों बुनियादी स्कूल खुले। कुछ सक्षम प्राथमिक एवं मध्य विद्यालयों को उत्क्रमित कर मध्य विद्यालय बना दिया गया तथा कुछ बुनियादी स्कूलों को प्रोत्साहन मिला। लोगों ने जी खोलकर विद्यालय के लिए जमीन उपलब्ध कराई। ग्रामीण परिवेश में राष्ट्रीय मूल्यों पर आधारित इन स्कूलों के प्रति लोगों का आकर्षण बढ़ा। बिहार में बुनियादी विद्यालय के निम्नलिखित स्तर थे–

1. जूनियर बेसिक स्कूल : इस स्कूल में 1–5 वर्ग तक पढ़ाई होती थी।
2. सीनियर बेसिक स्कूल : यहां 6 से 8 कक्षा तक की पढ़ाई होती थी।
3. पोस्ट बेसिक स्कूल : पोस्ट बेसिक स्कूल उच्च विद्यालय के समकक्ष थे। यहां 9–11 वर्ग तक के बच्चों की पढ़ाई होती थी। इन्हें सर्वोदय विद्यालय की संज्ञा दी गई।
4. जूनियर ट्रेनिंग स्कूल : यहां जूनियर बेसिक स्कूल में अध्यापनरत शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाता था।
5. बेसिक ट्रेनिंग स्कूल : यहां सीनियर बेसिक स्कूल में पढ़ाने वाले शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाता था।

सिर्फ बिहार ही ऐसा राज्य था जहां जूनियर से लेकर पोस्ट बेसिक स्कूल चल रहे थे। अन्य सभी राज्यों में जूनियर बेसिक स्तर की ही पढ़ाई होती थी। ये स्कूल डिस्ट्रिक्ट इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स के द्वारा नियंत्रित होते थे। इनका निरीक्षण डिस्ट्रिक्ट सुपरिंटेंडेंट ऑफ बेसिक एजुकेशन करते थे।

(स्रोत : शिक्षा के सौ वर्ष, स्कूली शिक्षा का इतिहास, बिहार विधान परिषद् प्रकाशन)

स्वतंत्रता पश्चात कुछ दशकों तक बुनियादी विद्यालयों का प्रभावी अस्तित्व कायम रहा लेकिन बाद की शिक्षा नीतियों में इन विद्यालयों के महत्व को नजरंदाज कर दिया गया। आज भी कुछ बुनियादी विद्यालय अस्तित्व में हैं। बिहार की बात करें तो यहां फिलहाल 391 बुनियादी विद्यालय हैं लेकिन इन विद्यालयों का स्वरूप बहुत बदल चुका है। शायद अभी इनका नाम ही सिर्फ यह प्रदर्शित करता है कि ये बुनियादी विद्यालय हैं। नाम के अलावा, इनके स्वरूप से किसी खास शिक्षणशास्त्र या शिक्षा प्रक्रिया की झलक अब नहीं मिलती है।

गतिविधि

बुनियादी विद्यालयों के अतीत से लेकर अब तक के हाल के लिए किस प्रकार की शिक्षा नीतियां जिम्मेवार रही हैं, इसका विश्लेषण करें।

बुनियादी विद्यालयों के पहले भी कई प्रकार के राष्ट्रीय विद्यालयों को खोला गया। जिसमें राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लेनेवाले स्वतंतत्रा सेनाानियों के अहम भूमिका रही। आगे के काल में उनके नाम को उन विद्यालयों के नाम के साथ जोड़ दिया गया। इसके कुछ उदाहरण आप पहले पढ़ चुके हैं।
अब यदि ब्रिटिशकालीन विद्यालयों की बात करें तो उसमें भी कई विविधताएं मिलती हैं जिसमें से उस समय के कई नीतिगत फैसलों की छवि आज के विद्यालयों में दिखती है। यदि प्राथमिक शिक्षा की बात करें तो इसमें हंटर कमीशन 1882 का महत्व इस बात को लेकर है कि इसने प्राथमिक विद्यालयों के संचालन एवं प्रबंधन का पूरा भार जिला बोर्ड जैसी स्वायत संस्थाओं के सौंप दिया। इसके आठ साल बाद 1890 में नेशनल काउंसिल आफ एजुकेशन नामक संस्था को राष्ट्रीय एक्ट 1860 के अंतर्गत कायम की गई तथा योजना के अनुसार पूरी 14 वर्ष की शैक्षणिक अवधि को चार भागों में बांटा गया :

प्राथमिक स्तर : तीन वर्ष	निम्न प्राथमिक स्तर : पांच वर्ष
उच्च माध्यमिक स्तर : दो वर्ष	कॉलेजियट स्तर : चार वर्ष

बुड्स डिसपैच के बाद विद्यालयों के औपचारिक चरित्र एवं कक्षागत स्तरीकरण का यह एक और प्रयास था। आज विद्यालयों में जिस प्रकार से कक्षाओं का स्तर है, उससे उपरोक्त स्तरों की तुलना करें।
वुड्य डिस्पैच से थोड़ा और पीछे चलें तो भाषा के आधार पर देशी विद्यालयों के प्रमाण मिलते हैं जिसे एडम्स रिपोर्ट में दर्ज किया गया। आगे दी गई सारणी को देखें।

उपयोग की भाषा	दक्षिण बिहार (कुल जनसंख्या 13,4,610)		तिरहुत (कुल जनसंख्या 13,40,610)	
	स्कूलों की संख्या	पढ़ने वालों की संख्या	स्कूलों की संख्या	पढ़ने वालों की संख्या
हिंदी	286	3090	80	507
संस्कृत	27	437	56	214
पर्सियन	279	1424	234	569
अरबी	12	62	4	29
अंग्रेजी	1	—	0	0
कुल	605	5013	374	1319

स्रोत : रिर्पोट्स ऑन दि स्टेट ऑफ एडुकेशन इन बंगाल–एडम, विलियम. (एडिटेड बाय ए. एन. बालु, 1941) कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्कूलों की अंग्रेजी व्यवस्था से पहले भी कई प्रकार के देशी विद्यालय थें। इन विद्यालयों से पहले भी शिक्षा की मध्यकालीन और प्राचीन व्यवस्था थी, परन्तु उनके नामों के विषय में बहुत विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है। शिक्षा के मध्ययुगीन ज्ञात संस्थाओं में संस्कृत चतुष्पदी या टोल, मदरसा तथा प्रारंभिक रूप में पाठशालाएं व मकतब प्रमुख हैं। यहां हम मकतब और मदरसों की शिक्षा के क्षेत्र में भूमिका को इनके नाम का अर्थ जानकर भी समझा जा सकता है। मकतब में शामिल कुतुब का अर्थ होता है लिखना पढ़ना वहीं मदरसा में शामिल दरस का अर्थ भाषण से लिया जाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जहां मकतब आरंभिक शिक्षा के केन्द्र थे वहीं मदरसों द्वारा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में योगदान दिया जा रहा था।

यदि प्राचीन काल के विद्यालयों की बात करें तो मैसूर के खुदे हुए शिलालेख में प्राचीन काल में तीन प्रकार के विद्यालयों के होने का उल्लेख मिलता है– घटिका, अग्रहार तथा ब्रह्मपुरी। घटिका ज्ञान एवं धर्म के केन्द्र थे। इनका आकार बहुत सीमित होता था। अग्रहार का स्वरूप काफी विस्तृत होता था। ये वस्तुतः ऐसे गाँव थे जहाँ विद्वान ब्रह्मणों का निवास होता था और सैकडों छात्र दूर दूर से वहाँ आकर शिक्षा प्राप्त करते थे। ब्रह्मपुरी ऐसे शिक्षा केन्द्र थे जो आकार के आधार पर घटिका एवं अग्रहार से बड़े थे। शिक्षा के प्राचीन व्यवस्था में गुरूकुल व्यवस्था अति महत्वपूर्ण है। इस व्यवस्था से प्रभावित कई विद्यालय आज के संदर्भ में भी हैं। कई विद्यालय अपने नाम में 'गुरूकूल' शब्द को जोड़े हुए भी हैं।

1.6 समेकन

इस इकाई में हमने यह जाना कि किसी विद्यालय का नाम उसके अतीत को किस प्रकार से समेटे हुए है तथा उसके नाम का हरेक शब्द किसी न किसी नीतिगत या ऐतिहासिक परिवर्तन की ओर इशारा करते हैं। हमने यह भी समझा कि किसी विद्यालय का नाम तथा उसकी स्थापना से लेकर वर्तमान समय तक उसके नाम एवं स्वरूप में किया गया परिवर्तन, अपने आप में देश की शिक्षा नीति के विकास क्रम का संकेत है। अपने विद्यालय के नाम से संबंधित सूचनाओं को एकत्र करके उनके विश्लेषण के दौरान हमने विभिन्न नीतियों के प्रभावों का भी विश्लेषण किया। नीतियों के कुछ मौलिक अंशों के माध्यम से हमने विद्यालय के विकास में उनकी भूमिका को समझा। साथ ही, हमने इस इकाई में विद्यालय के तरह–तरह के नामों को जाना तथा कुछ हद तक उनके पीछे की नीतियों का विश्लेषण भी किया।

1.7 मूल्यांकन के प्रश्न

1. पिछले साठ दशक की उन नीतियों की सूची बनाए जिनके कारण विद्यालय के नामों में बदलाव आए या फिर नए नाम वाले विद्यालय अस्तित्व में आए।
2. विद्यालय के नाम को राष्ट्रीय नीतियों का अधिक प्रभाव पड़ा या फिर राजकीय नीतियों का या फिर दोनों का। कुछ उदाहरणों को देकर समझाएं।
3. किन्हीं पांच विद्यालय के नामों को लेकर उनका विश्लेषण करें और यह बताएं कि उनके नाम के आधार पर क्या–क्या अनुमान लगाया जा सकता है।
4. आज के विद्यालयों पर किन नीतियों का उलटा असर पड़ा है, विश्लेषण करें।

इकाई–2
विद्यालय का भवन

2.1 परिचय
2.2 सीखने के उद्देश्य
2.3 पूर्व अनुभव
2.4 अपने विद्यालय के भवन से संबंधित ऐतिहासिक सूचनाओं का संग्रह
2.5 विद्यालय भवन के निर्माण के ऐतिहासिक एवं नीतिगत संदर्भों की समझ
2.6 समेकन
2.7 मूल्यांकन के प्रश्न

2.1 परिचय

किसी भी विद्यालय के प्रति कोई धारणा बनाने में उस विद्यालय के भौतिक अवसंरचना की अहम भूमिका होती है। प्रत्यक्ष दिखनेवाला विद्यालय का भवन, कक्षाओं की स्थिति तथा अन्य ढ़ांचागत सुविधाओं के आधार पर हमें यह अनुमान लगाने में आसानी होती है कि उस विद्यालय में शिक्षा की क्या गुणवत्ता होगी। कई बार तो हम विद्यालय के भवन को देखकर हीं यह फैसला कर लेते हैं कि यह कैसा विद्यालय होगा। यहां 'विद्यालय के भवन' से तात्पर्य है–विद्यालय की भौतिक अवसंरचना के सभी तत्व, यथा–विद्यालय की भूमि, इमारत, कमरे, शौचालय, खेल परिसर आदि।

यदि आज के संदर्भ को देखें तो हमें अपने आस–पास विद्यालय भवन के कई स्वरूप नज़र आएंगे। कुछ भवनों में भरपूर व्यवस्था होगी तो कुछ भवनों में सुविधाओं की कमी। कुछ पक्के भवन होंगे तो कुछ कच्चे। कुछ नए भवन होंगे तो कुछ बहुत पुराने। कई विद्यालयों के भवनों की स्थिति, डिजाइन, बनाने में इस्तेमाल की गई सामग्री, आदि को देखकर हीं हम यह कह सकते हैं कि उन विद्यालयों का ऐतिहासिक विकास क्या रहा होगा। इस प्रकार, विद्यालय का भवन स्वयं में विद्यालय के विकास की कहानी समेटे रहता है। विद्यालय की भूमि का स्वामित्व, विद्यालय की इमारत का शिल्प विन्यास, कमरों की संख्या, पेयजल की व्यवस्था, शौचालय, खेल का मैदान, प्रार्थना स्थल, बगीचा, भण्डार गृह, चारदीवारी, रसोईघर, आदि ऐसे कई तथ्य है जिनपर गौर किया जाना चाहिए। निर्माण कब हुआ, उसे कब जोड़ा गया, ऐसे काल–संदर्भ भवन के विकास को शिक्षा–नीति के इतिहास से जोड़ने में मदद कर सकते हैं। विद्यालय भवन निर्माण में प्रयुक्त वित्तीय योगदान आदि को भी जाना जाना चाहिए। विद्यालय भवनों के बदलते हुए स्वरूप, उनमें उपलब्ध होने वाली भौतिक सुविधाएँ और उनके स्वामित्व में होने वाले परिवर्तन किन शिक्षा नीतियों और सामाजिक बदलाव से प्रभावित हुए हैं। विद्यालय भवनों के रख–रखाव की जिम्मेवारी किसकी है? इस इकाई में आप अपने विद्यालय भवन को एक आधार बनाते हुए उसके विकास से संबंधित विभिन्न शिक्षा नीतियों की समझ बनाएंगे। इस इकाई में हम उन नीतियों और परिस्थितियों को समझने की कोशिश करेंगे जिन्होंने स्वतंत्रता के पूर्व से लेकर आज तक की यात्रा में विद्यालय के संरचनात्मक स्वरूप को प्रभावित किया है।

2.2 सीखने के उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- यह जान पाएंगे कि किसी विद्यालय का भवन कैसे उस विद्यालय के इतिहास को जानने का माध्यम हो सकता है।
- विद्यालय के भवन द्वारा देश/राज्य में विद्यालय व्यवस्था के विकास के विभिन्न चरणों से परिचित हो पाएंगे।
- विद्यालय भवन के निर्माण संबंधी समकालीन नियमों को समझ सकेंगे।
- विभिन्न दस्तावेजों एवं शिक्षा नीतियों की विद्यालय भवन के ढांचे से संबंधित अनुशंसाओं व उनके प्रभावों की समीक्षा कर सकेंगे।

2.3 पूर्व अनुभव

आपने कई प्रकार के विद्यायलों के भवनों को देखा होगा। आप अपने उन विद्यालयों के भवनों को भी याद कर सकते हैं जिसमें आप पढ़ा करते थे। अभी आप जिस विद्यालय में अध्यापन करते हैं, उसका भी अपना एक भवन होगा। इस प्रकार आपने छोटे–बड़े तथा विभिन्न स्तरों के विद्यालय भवनों की संरचना को देख रखा है। इस इकाई में आपको अपने अनुभवों के आधार पर विश्लेषण करने में मदद मिलेगी।

2.4 अपने विद्यालय के भवन से संबंधित ऐतिहासिक सूचनाओं का संग्रह

किसी विद्यालय का वर्तमान भवन उस विद्यालय के अतीत का भी द्योतक है और साथ ही साथ विद्यालय भवनों में हुए आज तक के बदलावों का। इसलिए, किसी विद्यालय के भवन से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारियों के माध्यम से उस विद्यालय के विकास की कड़ियों को जोड़ा जा सकता है। इसके माध्यम से आप विद्यालय के भवनों के क्रमिक विकास का विश्लेषण तो कर ही पायेंगे, बल्कि साथ में अपने विद्यालय के कई और ऐतिहासिक तथ्यों को जान पाएंगे।

अतः इस इकाई की शुरूआत हम किसी एक विद्यालय को चुनकर उसके भवन से संबंधित आंकड़ों को एकत्र करने से करेंगें। इसके लिए आप उस विद्यालय को चुन सकते हैं जहां आप वर्तमान में शिक्षण करते हैं। चूंकि आप स्वयं उस विद्यालय में अध्यापक या अध्यापिका हैं अतः विद्यालय भवन से संबंधी तमाम जानकारियों को संग्रहित करने में आपको आसानी होगी। इसके साथ–साथ, आप अपने आस–पास के किसी अन्य विद्यालय को भी चुन सकते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि विद्यालय के भवन से संबंधित सूचनाओं को इकट्ठा करना हो तो इसके लिए किस प्रकार की योजना बनाई जानी चाहिए। क्योंकि उपयोगी व प्रचुर सूचनाओं को इकट्ठा करने पर ही विद्यालय के भवन से संबधित इतिहास को बेहतर तरीके से समझने में मदद मिलेगी।

आगे एक गतिविधि के तौर पर विद्यालय के भवन से जुड़ी सूचनाओं को एकत्रित करने की योजना दी गई है। आप इस योजना में अपेक्षित संशोधन करके अपने विद्यालय के भवन संबंधी सूचनाओं को जमा करने में इसका इस्तेमाल कर सकते हैं।

गतिविधि : अपने विद्यालय के भवन को समझना			
अपने विद्यालय का पूरा नाम लिखें	....		
विद्यालय के भवन संबंधी निम्नलिखित सूचनाओं को एकत्र करें। यहां विद्यालय के भवन से तात्पर्य है विद्यालय के अंतर्गत आनेवाले सभी अचल भौतिक संसाधन।			
क0सं0	**सूचनार्थ प्रश्न**	**प्राप्त सूचना**	**सूचना का स्रोत**
1.	विद्यालय की स्थापना का वर्ष		
2.	भवन को बने हुए कितने वर्ष हो गए		
3.	विद्यालय की भूमि का स्वामित्व		
4.	विद्यालय के पास कुल कितनी भूमि है		
5.	विद्यालय की भूमि का किस–किस रूप में प्रयोग किया गया है।		
6.	विद्यालय भूमि के लगभग कितने अनुपात हिस्से पर भवन बना हुआ है।		
7.	विद्यालय भूमि का लगभग कितना अनुपात हिस्सा खाली है।		
8.	क्या विद्यालय भवन के शिल्प विन्यास में उसे बनने के बाद कोई परिवर्तन या संशोधन किया गया।		
9.	यदि हां तो कब–कब और क्यों किया गया।		
10.	विद्यालय भवन में कमरों की कुल संख्या कितनी है।		
11.	किस–किस प्रकार के कमरें है तथा उनकी संख्या कितनी है।		
12.	विद्यालय में पेयजल की व्यवस्था कैसी है, क्या यह व्यवस्था शुरू से है		
13.	विद्यालय में शौचालय की व्यवस्था कैसी है। क्या यह व्यवस्था शुरू से है या बाद में इसका निर्माण किया गया।		
14.	विद्यालय में खेल का मैदान कैसा है। उसमें कौन कौन से खेल खेले जा सकते हैं। यह खाली मैदान है या विशेष रूप से खेल के मैदान।		
15.	विद्यालय में प्रार्थना के लिए कौन सा स्थान है।		
16.	क्या विद्यालय में बाग–बगीचा भी है।		
17.	क्या विद्यालय में भण्डार गृह या कक्ष की व्यवस्था है।		
18.	क्या विद्यालय की चारदीवारी हुई है। कब हुई।		
19.	क्या विद्यालय में रसोईघर की व्यवस्था है। कैसी व्यवस्था है और यह व्यवस्था कब की गई ।		
20.	विद्यालय के भवन का प्रयोग किन–किन कार्यों के लिए किया जाता रहा है।		

आपने विद्यालय के भवन से संबंधित जिन सूचनाओं का संग्रह उपरोक्त गतिविधि के माध्यम से किया है, उन सूचनाओं के विश्लेषण में विभिन्न शिक्षा नीतियों के प्रभावों की छवि देखी जा सकती है। आप उन सूचनाओं को व्यवस्थित रूप में संग्रहित कर लें। आगे जब हम शिक्षा नीतियों की चर्चा करेंगे तो आपको उन सूचनाओं का संदर्भ लेना होगा।

फिलहाल, आपके द्वारा एकत्र की गई सूचनाओं के विश्लेषण को रोचक बनाने के लिए, आज के संदर्भ में विद्यालय भवन से संबंधित कुछ नीतिगत आंकड़ों को देखा जा सकता है। हम यह समझते हैं कि बदलते नीतियों के साथ–साथ विद्यालय भवन सें संबंधित अपेक्षित मापदण्डों में भी कई बदलाव आए हैं। उन्हीं बदलावों का एक उदाहरण समान स्कूल प्रणाली आयोग–2007 की रिपोर्ट में दी गई है जिसने प्राथमिक एवं मध्य विद्यालयों के भवनों के संदर्भ में कुछ मानक एवं मापदंड निर्धारित किए, जिन्हें आगे दिया जा रहा है। आपके अपने विद्यालय ने भवन निर्माण के जिन मानदण्डों का पालन किया है, उनकी तुलना निम्नलिखित सारणी में दिए गए मानदण्डों से करें।

प्राथमिक विद्यालय के भवन के लिए	
प्रा० वि० के लिए न्यूनतम 500 वर्ग मीटर (0.12 एकड़) भूमि की आवश्यकता	
प्रा० वि० का प्रति वर्ग कक्ष @40 वर्ग मीटर x 5	200 वर्ग मीटर
बरामदा	50 वर्ग मीटर
कर्मचारी कक्ष	50 वर्ग मीटर
संसाधन कक्ष	10 वर्ग मीटर
प्रसाधन कक्ष	05 वर्ग मीटर
रसोईघर, अन्य	100 वर्ग मीटर
कुल	**415 वर्ग मीटर**
मध्यमिक विद्यालय के भवन के लिए	
म० वि० में न्यूनतम 800 वर्ग मीटर (0.20 एकड़) भूमि की आवश्यकता, भूमि बचाने के लिए म० वि० को दो मंजिला बनाया जाए।	
म०वि० में वर्ग कक्ष के लिए 40 वर्ग मीटर x 11 कमरा	400 वर्ग मीटर
बरामदा	125 वर्ग मीटर
कर्मचारी कक्ष	50 वर्ग मीटर
पुस्तकालय	20 वर्ग मीटर
कार्यालय	15 वर्ग मीटर
प्रसाधन कक्ष	05 वर्ग मीटर
कुल	**655 वर्ग मीटर**

उपरोक्त मानकों के साथ अपने विद्यालय के भवन संबंधी विभिन्न आंकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर आपने क्या पाया। क्या आपका विद्यालय अपने न्यूनतम अपेक्षित मानदण्ड से उपर है या नीचे? ऐसा होने का क्या कारण हैं? वे मानदण्ड कितने पुराने हैं और क्या अब आपके विद्यालय के लिए नए मानदण्ड बनाने की आवश्यकता है? इन सब बिन्दुओं पर विचार करने पर आपको अपने विद्यालय की संरचनात्मक आवश्यकताओं की एक मोटी–मोटी समझ बन पाएगी।

लेकिन अपने विद्यालय के भवन संबंधी सूचनाओं का राज्य स्तर या राष्ट्रीय स्तर के आंकड़ों से तुलना करनेपर आपकी समझ और पुख्ता होगी। आगे विद्यालय भवन में सुविधाओं से संबंधित एक तुलनात्मक सारणी दी गई है। इसके आधार पर आप वर्ष 2009 के समय तक में बिहार के विद्यालय भवनों में उपलब्ध सुविधाओं का राष्ट्रीय स्थिति के साथ तुलना कर सकते हैं।

विद्यालय / सुविधाएं (% में)	प्राथमिक		उच्च प्राथमिक		माध्यमिक		उच्चतर माध्यमिक	
	भारत	बिहार	भारत	बिहार	भारत	बिहार	भारत	बिहार
भवनरहित विद्यालय	1.72	15.45	0.50	0.80	0.65	0.33	0.28	0.55
विद्यालय परिसर में पेयजल की सुविधा	80.42	75.06	86.35	91.41	91.38	93.22	96.41	95.16
विद्यालय परिसर में प्रयोग में आने वाले शौचालय की उपलब्धता	70.33	31.46	79.07	48.72	84.48	66.85	93.55	72.02
खेल के मैदान की उपलब्धता	47.49	31.15	59.15	46.98	75.34	72.37	80.43	77.09

स्रोत : ऑल इंडिया स्कूल एजूकेशन सर्वे, 2009, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

उपरोक्त आंकड़ों के आधार पर आप भवन संबंधित सुविधाओं में बिहार की स्थिति देख सकते हैं। आप अपने विद्यालय का संदर्भ लेकर विश्लेषण करें कि सारणी में उल्लेखित सुविधाएं क्या आपके विद्यालय में है। उन सुविधाओं को विद्यालय में लाने के लिए कितना समय लगा और क्या–क्या करना पड़ा।

गतिविधि

- किसी ऐसे विद्यालय में जाएं जिसका भवन अभी हाल में हीं बना हो या बन रहा हो और वहां यह पता करें कि भवन को बनाने के लिए संसाधनों की व्यवस्था कहां से होती है और इसमें क्या चुनौतियां आती हैं
- अपने अध्ययन केन्द्र पर अपने–अपने विद्यालय भवन से संबंधित आंकड़ों को साझा करें तथा उनपर चर्चा करें।

2.5 विद्यालय भवन के निर्माण के ऐतिहासिक एवं नीतिगत संदर्भों की समझ

इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में ही बच्चों की शिक्षा के संदर्भ कई नीतिगत दस्तावेजों को लाया गया जिसमें महत्वपूर्ण है– निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिनियम–2009 तथा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005। इन दोनों दस्तावेजों ने आज की अपेक्षाओं के अनुसार विद्यालय की अवसंरचना में परिवर्तनों की जरूरत पर जोर दिया। शिक्षा को हर बच्चे का अधिकार बन जाने के कारण अब सभी बच्चों के लिए संसाधनपूर्ण विद्यालय मुहैया कराना अनिवार्य हो गया। इसलिए, सरकार ने विद्यालयों की संख्या को बढ़ाने तथा कई विद्यालयों को उत्क्रमिक करने पर जोर दिया। यदि बिहार की स्थिति का जायजा लें तो यहां पर विद्यालयों की अपेक्षित मांग को निम्नलिखित सारणी की मदद से समझा जा सकता है। यहां यह समझना आवश्यक है कि इस मांग के पीछे शिक्षा के अधिकार अधिनियम–2009 की नीति की अहम भूमिका है।

नए विद्यालय भवनों (प्राथमिक विद्यालयों) के निर्माण का वर्षवार लक्ष्य (2007–08 से 2016–17)

वर्ष	प्राथमिक विद्यालय भवनों की संख्या ('000)								
	वर्ष के आरंभ में			नए विद्यालय भवनों के निर्माण का लक्ष्य			वर्ष के अंत में		
	स्व. प्रा. वि.	म. वि. अं.	कुल	स्व.प्रा. वि.	म.वि. अं.	कुल	स्व.प्रा. वि.	म.वि. अं.	कुल
2007-08	34.8	15.5	50.3	9.1	-	9.1	43.9	15.5	59.4
2008-09	43.9	15.5	59.4	9.0	3.5	1.5	52.9	19.0	71.9
2009-10	52.9	19	71.9	2.5	3.6	6.1	55.4	22.6	78.0
2010-11	55.4	22.6	78	2.3	3.7	6.0	57.7	26.3	84.0
2011-12	57.7	26.3	84.0	2.2	3.7	5.9	59.9	30.0	89.9
2012-13	59.9	30.0	89.9	0.8	1.0	1.8	60.7	31.0	91.7
2013-14	60.7	31	91.7	1.3	0.6	1.9	62	31.6	93.6
2014-15	62.0	31.6	93.6	1.7	0.7	2.4	63.7	32.3	96.0
2015-16	63.7	32.3	96.0	0.4	1.1	1.5	64.1	33.4	97.5
2016-17	64.1	33.4	97.5	0.4	0.6	1	64.5	34	98.5

(स्रोत : समान स्कूल प्रणाली आयोग, 2007 बिहार सरकार)

शिक्षा के अधिकार अधिनियम नीति के कारण न सिर्फ विद्यालय भवनों के बनने में तेजी आई बल्कि इस नियम के कारण विद्यालय भवनों की किसी क्षेत्र में सघनता पर भी प्रभाव पड़ा। यह कई अध्ययनों जैसे –प्रोब रिपोर्ट में निकल कर आया कि विद्यालय से दूरी के कारण भी कई बच्चे विद्यालय नहीं जाते हैं। अतः, अधिनियम के मानकों में विद्यालय भवन की स्थिति का भी जिक्र किया। अधिनियम के कुछ अंशों को नीचे दिया जा रहा है जिन्होंने विद्यालय के संदर्भ में विशेष प्रावधान किए :

निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिनियम–2009

भाग 1–प्रारंभिक :

(छ) ''विद्यालय योजना निर्माण'' से सामाजिक अवरोधों और भौगोलिक अंतर को कम करने के लिए अधिनियम की धारा 6 के प्रयोजन के लिए विद्यालय स्थान की योजना बनाना अभिप्रेत है।

भाग 2–विद्यालय प्रबंध समिति :

4. विद्यालय विकास योजना तैयार करना–(1) विद्यालय प्रबंध समिति उस वित्तीय वर्ष के, जिसमें अधिनियम के अधीन उसका पहली बार गठन किया गया है, अंत से कम से कम तीन मास पूर्व एक विद्यालय विकास योजना तैयार करेगी।

(2) विद्यालय विकास योजना तीन वर्षीय योजना होगी, जिसमें तीन वार्षिक उपयोजनाएं होंगी।

(3) विद्यालय विकास योजना में निम्नलिखित ब्यौरे होंगे, अर्थात :–(क) प्रत्येक वर्ष के लिए कक्षावार नामांकन के प्राक्कलन ; (ग) अनुसूची में विनिर्दिष्ट सन्नियमों और मानकों के प्रति निर्देश से परिकलित, अतिरिक्त अवसंरचना और उपस्करों की भौतिक अपेक्षा ;

भाग 4– केन्द्रीय सरकार, समुचित सरकार और स्थानीय प्राधिकारी के कर्तव्य और उतरदायित्व :
6. आसपास का क्षेत्र या सीमाएं–

(1) आसपास के क्षेत्र या सीमाएं, जिनके भीतर समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी द्वारा कोई विद्यालय स्थापित किया जाना है, निम्नलिखित होंगी,–

(क) कक्षा 1 से कक्षा 5 के बालकों के संबंध में, विद्यालय आसपास की एक किलोमीटर की पैदल दूरी के भीतर स्थापित किया जाएगा ;

(ख) कक्षा 6 से कक्षा 8 के बालकों के संबंध में, विद्यालय आसपास की तीन किलोमीटर की पैदल दूरी के भीतर स्थापित किया जाएगा।

उपरोक्त अधिनियम के कारण विद्यालय भवनों के निर्माण पर विशेष प्रभाव पड़ा। विद्यालय निर्माण की योजना, उनकी स्थिति और ढांचागत अपेक्षाओं से संबंधित कई पूर्ववर्ती प्रावधानों को पुनःनिर्धारित किया गया। विद्यालयों में सीढ़ियों के साथ रैम्प का निर्माण आवश्यक हो गया। विद्यालयों के दरवाजों को चौड़ा किया गया ताकि निःशक्त छात्र आपनी साईकिल लेकर कक्षा तक पहुँच सके, शौचालय छोटे और हैंडिलयुक्त होने जरूरी हो गए। मध्याहन भोजन योजना के कारण स्कूल परिसर में किचन शेड भी दिखाई पड़ने लगे।

शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 ने विद्यालय भवन में आवश्यक सुविधाएँ जरूरी कर दिया, शिक्षा अधिकार अधिनियम ने स्कूलों को हर मौसम के अनुकूल बनाने का निर्देश तय कर दिया। वर्गवार कमरे और प्रधानाध्यापक कक्ष का अस्तित्व आवश्यक कर दिया लिहाजा विद्यालय भवन में परिवर्त्तन दिखने लगे। किचेनशेड, रसोईघर का निर्माण विद्यालय परिसर में आवश्यक हो गया। बढ़ते नामांकन से विद्यालय के कमरों में भीड़ हो गई अतः अतिरिक्त कमरों का निर्माण जरूरी हो गया। सर्व शिक्षा अभियान के द्वारा नामांकन के आधार पर विद्यालयों का अतिरिक्त कमरों के लिए राशि भी आवंटित की।

गतिविधि

- आप किसी ऐसे विद्यालय का भ्रमण करें जिसे शिक्षा के अधिकार अधिनियम–2009 के लागू होने के बाद बनाया गया हो। उस विद्यालय के निर्माण से संबंधित सूचनाओं को एकत्र करें और उनका विश्लेषण करें।
- आप अपने विद्यालय के विद्यार्थियों से यह चर्चा करें कि उनके अनुसार विद्यालय भवन में क्या–क्या परिवर्तन किए जाने चाहिए।

इसके साथ ही, दूसरी समस्या विद्यालय में जमीन की कमी को लेकर आने लगी। अधिनियम के आने से पूर्व एक और समस्या षट्कोणीय भवनों के छतों के सपाट नहीं होने के कारण उत्पन्न होती रही, जिससे उन कमरों के उपर कमरों का निर्माण नहीं हो पाता था। 2006–07 में इस नीति में बदलाव लाया गया जिससे दो मंजिले भवन के लिए स्कूलों के छत सपाट बनने लगे। इससे कम जमीन में कई तल्ले बन सकते थे। आपने अपने आस पास कुछ ऐसे ही विद्यालयों को अवश्य देखा होगा।

गतिविधि

आपने कई सरकारी विद्यालयों या संकुल संसाधन केन्द्र में षटकोणीय कमरों को देखा होगा। इस प्रकार के कमरों को बनाने के पीछे क्या प्रयोजन रहा होगा? पता करें।

ऐसे कमरों के होने से क्या लाभ है? इनमें कैसी गतिविधियों को बेहतर तरीके से किया जा सकता है?

विद्यालय भवन को लेकर समान स्कूल प्रणाली आयोग 2007 ने भी कुछ महत्वपूर्ण अनुशंसाएं की :

विद्यालयों के लिए मानक एवं मापदंड

समान स्कूल प्रणाली की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि तमाम बच्चों को उचित गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रणाली के अंतर्गत आने वाले तमाम विद्यालयों को न्यूनतम मानक एवं मापदंड अपनाने होंगे। इन न्यूनतम मानकों एवं मापदंडों का संबंध मुख्यतः भौतिक अधिसंरचना (जमीन, भवन, फर्नीचर, उपस्कर), शैक्षिक जनबल (शिक्षक तथा शिक्षकेत्तर कर्मचारी) तथा पाठ्यचर्या एवं उसके संव्यवहार से है। नीचे उन मानकों एवं मापदंडों की सूची पेश है, जिन्हें हमारे निर्णय के मुताबिक, सभी विद्यालयों पर लागू होना ही चाहिए।

प्रारंभिक शिक्षा वाले विद्यालय

(क) पहुंच

1. प्राथमिक विद्यालय को वासस्थान के अंदर अथवा उससे अधिकतम 1 किलोमीटर दूर स्थित होना चाहिए।
2. 2 प्राथमिक विद्यालयों पर 1 मध्य विद्यालय होना चाहिए। हालांकि यह सुनिश्चित करने के लिए कि मध्य विद्यालय को वासस्थान के अंदर अथवा उससे अधिकतम 3 किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित होना चाहिए, अतिरिक्त मध्य विद्यालय भी खोले जा सकते हैं।

(ख) विद्यालय भूमि

1. किसी भी प्राथमिक विद्यालय के पास न्यूनतम 500 वर्गमीटर (0.12 एकड़) जमीन होनी चाहिए।
2. किसी भी मध्य विद्यालय के पास न्यूनतम 800 वर्गमीटर (0.20 एकड़) जमीन भवन के लिए होनी चाहिए। इसके अलावा, उसके पास खेल के मैदान के रूप में 1 एकड़ जमीन होनी चाहिए।

(स्रोत :समान स्कूल प्रणाली आयोग 2007, पृष्ठ सं0 205)

उपरोक्त प्रावधानों की झलक आप अपने विद्यालय के भवन में भी देख सकते हैं यदि उसका निर्माण हाल के वर्षों में हुआ है। साथ ही पहले के विद्यालयों में भी कई संशोधन करके उन्हें आज के मानकों के अनुरूप बनाने का भी प्रयास आप देख सकते हैं। जिन विद्यालयों में शौचालय नहीं थे, उनमें शौचालयों को बनाया जा रहा है। जिनमें मानकों के अनुसार कमरें नहीं थे, उनमें कमरों को जोड़ा जा रहा है। लेकिन, साथ ही हमें यह भी समझना होगा कि इन नीतियों के कारण सभी विद्यालयों की दशा में अपेक्षित परिवर्तन नहीं आए हैं। अभी भी विद्यालयों में आधारभूत संरचनाओं की कमी है। कई विद्यालय तो भवनरहित हैं। इसका उदाहरण आप प्रतिवर्ष निकलनेवाले ऑल इंडिया स्कूल एजूकेशन सर्वे की रिपोर्ट में देख सकते हैं।

यह हम समझते हैं कि स्तर के बढ़ने के साथ–साथ विद्यालय भवनों के स्वरूप एवं आवश्यकताओं में भी कई परिवर्तन आते हैं। अतः प्राथमिक विद्यालय के भौतिक अधिसंरचना में कई संशोधनों की अपेक्षा होगी यदि इसे माध्यमिक स्तर का बनाना हो। इस संदर्भ में समान स्कूल प्रणाली आयोग–2007 द्वारा सूझाए गए निम्नलिखित आंकड़ों का विश्लेषण करें और यह बताएं कि प्राथमिक स्तर की अधिसंरचना और माध्यमिक स्तर की अधिसंरचना में कौन–कौन से फर्क हैं और क्यों हैं?

(ग) भौतिक अधिसंरचना

(i) किसी प्राथमिक विद्यालय का फर्श क्षेत्रफल 415 वर्गमीटर होना चाहिए जिसका विवरण इस प्रकार है:

वर्गकक्ष (40 वर्गमीटर के 5 वर्गकक्ष)	200 मीटर
कर्मचारी कक्ष (1)	50 वर्गमीटर
संसाधन कक्ष (1)	10 वर्गमीटर
पूर्व–प्रारंभिक बच्चों के लिए हॉल (1)	50 वर्गमीटर
रसोईघर तथा भोजनहॉल (1)	50 वर्गमीटर
बरामदा	50 वर्गमीटर
प्रसाधन (2.5 वर्गमीटर के 2)	5 वर्गमीटर
योग	415 वर्गमीटर

(ii) किसी मध्य विद्यालय का फर्श क्षेत्रफल 790 वर्गमीटर होना चाहिए जिसका विवरण इस प्रकार है:

प्रधानाध्यापक कक्ष (1)	30 वर्गमीटर
कर्मचारी कक्ष (1)	50 वर्गमीटर
वर्गकक्ष (40 वर्गमीटर के 11 वर्गकक्ष)	440 वर्गमीटर
पूर्व–प्रारंभिक बच्चों के लिए हॉल (1)	50 वर्गमीटर
रसोईघर तथा भोजनहॉल (1)	50 वर्गमीटर
कार्यालय कक्ष (1)	15 वर्गमीटर
पुस्तकालय (1)	20 वर्गमीटर
बरामदा	125 वर्गमीटर
प्रसाधन (2.5 वर्गमीटर के 2)	5 वर्गमीटर
योग	790 वर्गमीटर

(iii) जगह बचाने के लिए सभी मध्य विद्यालयों के भवनों को दो मंजिला होना चाहिए।

(iv) सभी विद्यालयों में उपर वर्णित भवनों के अलावा चहारदीवारी (पक्की), विकलांक बच्चों की पहुंच के लिए रैंप, उपर बनी पानी टंकी से युक्त दो नलकूप, जलमल निकासी तथा स्वच्छता सुविधाएँ, बिजली तथा आग से सुरक्षा के उपाय भी होने चाहिए।

(स्रोत : समान स्कूल प्रणाली आयोग, 2007 बिहार सरकार)

जहां शिक्षा अधिकार अधिनियम–2009 और समान विद्यालय प्रणाली आयोग–2007 ने विद्यालय भवन से संबंधित भौतिक सुविधाओं के संवर्द्धन पर जोर दिया वहीं राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005(एन.सी. एफ. 2005) तथा बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008 ने विद्यालय भवन के शैक्षिक उपयोगिता को रेखांकित करते हुए इसमें परिवर्तन पर जोर दिया। एन.सी.एफ 2005 ने विद्यालय भवन को लेकर कई महत्वपूर्ण और आवश्यक दिशा निर्देश तय किए।

विद्यालय का भवन उसकी सबसे मँहगी भौतिक संपत्ति होता है। उससे सर्वाधिक शैक्षिक मूल्य निकालना चाहिए। भवन के नवीनीकरण या निर्माण के समय सृजनात्मक एवं व्यावहारिक समाधानों का प्रयोग करके भवन के शैक्षिक मूल्यों को अधिकतम तक बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार भौतिक वातावरण में बदलाव न केवल सौंदर्य परिवर्तन है बल्कि एक स्वाभाविक रूपांतरण है जिसमें भौतिक स्थान शिक्षाशास्त्र और बच्चे से जुड़ जाता है। देश के विभिन्न भागों में विद्यालय एवं कक्षाओं में बड़े–बड़े चित्र स्थायी रूप से लगे रहते हैं या पुते रहते हैं। इस प्रकार के दृश्य होते तो अधिक आकर्षक हैं परंतु कुछ समय बाद नीरस लगने लगते हैं, और उस स्थान के आकर्षण को कम कर देते हैं। उसकी जगह छोटे आकार के ध्यान से चुने गए भित्ति–चित्र स्कूल को आकर्षक बनाने के लिए बेहतर हो सकते हैं। विद्यालयों की दीवार का प्रयोग बच्चों द्वारा बनाई गई कलाकृतियों या शिक्षकों द्वारा बनाई गई कृतियों के लिए होना चाहिये जो हर महीने बदल जाएँ। इस प्रकार दीवारों को सजाना और कलाकृतियों को लगाने में सहयोग करना भी बच्चों के लिए एक मूल्यवान शैक्षिक प्रक्रिया है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा–2005 (पृष्ठ संख्या 89)

एन.सी.एफ. 2005 दस्तावेज ने स्वच्छता और सुरक्षा मानकों को लेकर विद्यालय भवन के साथ समझौता नहीं करने की बात कही। एन.सी.एफ में कहा गया की ढाँचागत सुविधा में खेल मैदान से समझौता नहीं होना चाहिए। कक्षाकक्षों में पर्याप्त प्राकृतिक रौशनी हो। बच्चों द्वारा की गई चित्रकारी, हस्तकर्म के लिए स्कूल की दीवारें सुरक्षित रखी जा सके ताकि उनके सृजनशीलता को सराहा जा सके। स्कूल की दीवारों पर छोटे आकार के भित्तीचित्र हों, जिनपर बच्चों और शिक्षकों द्वारा निर्मित कला कृति लगे हों।

सच तो यह है कि ढाँचागत सुविधाएँ शिक्षार्थियों के लिए अनुकूल स्थितियाँ बनाने व गतिविधि–केंद्रित संदर्भ उपलब्ध करवाने के लिए ज़रूरी हैं। स्थान, भवन तथा फर्नीचर संबंधी नियम व मानक तय करने से गुणवत्ता की समझ भी पुष्ट होगी।

- **स्थान** – इन मानकों का संबंध आयु, समूह के आकार, शिक्षक–विद्यार्थी अनुपात और जिस प्रकार की गतिविधियाँ चलानी हैं, उनसे है।
- **भवन** – भवन–निर्माण सामग्री, वास्तुशैली और कारीगरी, स्थानीय जलवायु, भूगोल, उपलब्धता के आधार पर स्थल–विशिष्ट और संस्कृति–विशिष्ट होते हैं, जबकि जिसमें सुरक्षा और स्वच्छता पर किसी प्रकार का समझौता नहीं किया जा सकता। शौचघर के कई प्रकार के कम–खर्चीले डिजाइन उपलब्ध हैं और यह आवश्यक नहीं कि समूचे भारत में एक ही प्रकार के मानकीकृत स्कूल भवन हों।
- **कुर्सी–मेज़** – इसके मानक आयु और गतिविधियों की प्रकृति के आधार पर तय किए जाएँ जिसमें प्रयोगशालाओं तथा अन्य विशिष्ट गतिविधियों को छोड़कर ऐसे फर्नीचर को प्राथमिकता दी जाए जिन्हें आवश्यकतानुसार अलग–अलग जगहों पर अलग तरह से उपयोग में लिया जा सके।
- **उपकरण** – आवश्यक और वांछनीय उपकरणों (पुस्तकों सहित) की सूची बनाई जानी चाहिये जिसमें ऐसी स्थानीय सामग्रियों और उत्पादों के प्रयोग पर ज़ोर हो जो संस्कृति–विशिष्ट, कम खर्चीली और आसानी से उपलब्ध हों।
- **समय** – स्थान और आयु विशिष्ट मानकों और मौसम के अनुसार समय–सारिणी बनाए जाने की आवश्यकता है। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा–2005* (पृष्ठ संख्या 91–92)

एन.सी.एफ.2005 ने कक्षा के भौतिक स्थान को सीखने के माध्यम के रूप में परिवर्तित करने पर बल दिया। विद्यालय भवन का कितना सृजनात्मक उपयोग हो सकता है, इसको बढ़ावा देने के लिए विद्यालय भवन के पारम्परिक ढ़ांचे में बदलाव लाने की अपेक्षा की गई।

भौतिक स्थान से सीखना

बच्चे अपने संसार को बहु इंद्रियों से महसूस करते हैं विशेषकर दृष्टि और स्पर्श इंद्रियों से । एक त्रिआयामी स्थान बच्चों को सीखने के लिए एक विशेष व्यवस्था दे सकता है क्योंकि यह पाठ्यपुस्तकों तथा ब्लैकबोर्ड का साथ देते हुए बच्चों के लिए बहु इंद्रिय अनुभव प्रस्तुत कर सकता है। स्थानिक आयामों, संरचनाओं, आकाशों, कोणों, गति तथा स्थानिक विशेषताओं; जैसे– अंदर–बाहर, सममिति, ऊपर–नीचे का उपयोग, भाषा, विज्ञान, गणित तथा पर्यावरण की मूल अवधारणाओं को संप्रेषित करने के लिए किया जा सकता है । इन अवधारणाओं को उपलब्ध तथा नए बनाए जाने वाले स्थानों पर लागू किया जा सकता हैं।

कक्षागत स्थान– खिडकी सुरक्षा जाली को इस प्रकार बनाया जा सकता है जिसपर बच्चे लेखन–पूर्व कौशलों का तथा भिन्नों को समझने का अभ्यास कर सकें, कोणों के प्रसार को दरवाजों के नीचे चिह्नित किया जा सकता है, जिससे बच्चों को कोण की अवधारणा समझने में मदद मिले, या कक्षा की अलमारी को पुस्तकालय का रूप दिया जा सकता है, या ऊपर लगे पंखों को विभिन्न रंगों में रँगा जा सकता है ताकि बच्चे विभिन्न रंगों के बदलते चक्रों का आनंद ले सकें।

अर्द्ध खुल्ला या बाहर का स्थान– खंभे की घटती–बढ़ती परछाइयाँ जो धूप घड़ी की तरह समय मापने के विभिन्न तरीके समझा सकती हैं, शीत के मौसम के लिए उपयुक्त पर्णपाती पौधों को लगाना जो शीतऋतु में पत्तियाँ गिराते हैं और ग्रीष्म में हरे–भरे रहते हैं, ताकि बाहर भी सीखने के लिए आरामदायक जगह हो, पुराने टायरों का उपयोग करते हुए एक रोमांचक खेल का मैदान बनाना; एक ऐसा स्थान जहाँ बस/ट्रेन/पोस्ट ऑफिस/दुकान का आभास दिया जा सकता है; जहाँ बच्चे मिट्टी और बालू के साथ खेलते हुए भारत के रेखांकित नक्शे में अपने पहाड़, नदियाँ तथा घाटी बनाएँ; स्थान की छानबीन एवं खोज तथा तीनों आयामों के छानबीन का स्थान; या बाहर प्राकृतिक वातावरण पेड़–पौधों के साथ जो बच्चों को छानबीन करने का तथा स्वयं की अधिगम सामग्री खुद बना लेने का मौका दे; रंगों, एकांत और कोनों को खोजने का मौका दें, जहाँ बच्चे जड़ी–बूटी का बागीचा लगा सकें और बरसाती पानी का एकत्रीकरण देखें और उसे व्यवहार में भी लाएँ।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा–2005 (पृष्ठ संख्या 90)

पाठ्यचर्या द्वारा सुझाए गए कुछ परिवर्तनों को कई विद्यालयों में शामिल भी किया गया, जिसके कारण उनके विद्यालय भवन निरस न रहकर आकर्षक हो गये और उससे बच्चों के सीखने के अवसरों में भी बढ़ोतरी हुई। इसकी कुछ कुछ छाप आप अपने विद्यालय में भी देख सकते हैं। समावेशी शिक्षा और आपदा प्रबंधन के दृष्टिकोण से भी विद्यालय भवन में अपेक्षित बदलाव लाने पर जोर दिया गया।

गतिविधि

- अपने आसपास के वैसे विद्यालयों को चिन्हित करें जिन्होंने अपने भवन का सृजनात्मक प्रयोग किया हो। यह भी विश्लेषण करें कि विद्यालय के भवन में आए परिवर्तन का वहां के सीखने–सिखाने की प्रक्रिया से क्या संबंध है।
- इस संदर्भ में आप वहां के विद्यार्थियों से भी बातचीत कर सकते हैं। साथ ही वहां पर यह अवलोकन करें कि बच्चे सृजनात्मक भवन का उपयोग सीखने में कैसे कर रहे हैं।

यदि विद्यालय को एक अंतः क्रियात्मक भौतिक स्थल के तौर पर देखा जाता है तो यह आवश्यक है उसके भौतिक चरित्रलक्षणों की जाँच–पड़ताल, खोज–बीन की जाए तथा समृद्ध बनाया जाए। बच्चे अपने विद्यालयों के भौतिक पर्यावरण के साथ निरंतर अंतः क्रिया करते हैं तथापि इसके महत्व पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है। बिहार में वर्गकक्षों की अत्यंत कमी है और कभी–कभी तो दूसरे विकल्प के अभाव में वर्गकक्षों में विद्यार्थी ठसे पड़े होते हैं। सरकारी विद्यालयों में वर्गकक्ष न तो आकर्षक होते है और न ही बच्चों की जरूरतों को ख्याल रखकर उन्हें बनाया जाता है। ज्यादातर सरकारी विद्यालयों में भवन के अलावा कोई सुविधा नहीं होती और खुद भवन का ढांचा भी खराब ढंग से या बगैर किसी योजना के बना होता है। शुरूआत में, वास्तुकार और नीति निर्माता उपयुक्त ढांचे के लिये काम कर सकते है, लेकिन यदि किसी निर्दिष्ट भवन में ढांचागत परिवर्तन नहीं किया जा सकता, पर उसकी अच्छे ढंग से मरम्मत तो की ही जा सकती है। संभवतः इसे अनुरक्षित रखने से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है सीखने–सीखाने के उद्देश्य से भवन, मैदान, परिसर, दीवार या विद्यालय अथवा उसके इर्द–गिर्द उपलब्ध कोई अन्य जगह का सृजनात्मक उपयोग।

बिहार पाठ्यचर्या की रुपरेखा–2008

यदि बिहार की बात करें तो नई सदी में सरकार स्कूल भवनों के निर्माण को लेकर ज्यादा सक्रिय दिखी। ''मुख्यमंत्री विद्यालय समग्र विकास योजना'' के तहत विद्यालयों के लिए चाहरदिवारी के लिए राशि का बजटीय प्रावधान किया गया। विद्यालयों को बाल सुलभ बनाने हेतु स्थायी निर्माण यथा झूला, फिसलनपट्टी, शी–शी, त्रिभुजीय, षट्कोणीय चबूतरे का निर्माण करवाया गया। ''विद्यालय जीर्णोद्धार विकास राशि'' द्वारा विद्यालय में समुदाय की भूमिका को पुरर्स्थापित करने की कोशिश की गई, जिसमें समुदाय द्वारा 10 प्रतिशत राशि दी जाने पर 90 प्रतिशन राशि की सहायता सरकार देती थी। वर्त्तमान में यह राशि सरकार की ओर से 50 प्रतिशत है।

गतिविधि

पिछले दस वर्षों के दौरान, केन्द्र सरकार या बिहार सरकार द्वारा चलाई गई विद्यालय भवन से संबंधित दस प्रमुख योजनाओं का पता लगाएं तथा उन्हें सूचीबद्ध करें। साथ ही, उन योजनाओं का मुख्य प्रयोजन क्या था, इसको भी चिन्हित करें। वे योजनाएं कितनी सफल रहीं, इसपर भी टिप्पणी करें।

योजना का नाम	प्रारम्भ वर्ष	मुख्य प्रयोजन	आपकी टिप्पणी
मध्याह्न भोजन योजना		विद्यालय मे मिड–डे मिल की व्यवस्था एवं संचालन	इसके कारण विद्यालय में किचन शेड का निर्माण हुआ

राज्य में विद्यालय भवनों की कमी को देखते हुए सरकार ने स्कूलों के लिए जमीन का मानक क्षेत्रफल निर्धारित किया है और भूमिधारकों से भूमि दान करने की अपील इस घोषणा के साथ की है कि जमीनदाता के नाम पर विद्यालय का नामकरण किया जाएगा या निर्धारित मानक से कम जमीन देने पर दानादाता का नाम विद्यालय भवन में शिलापट्ट पर लिखा जाएगा। सरकार ने निर्धारित राशि पर भूखंडों को खरीदने के लिए भी बजट में राशि का प्रावधान किया है ताकि विद्यालय भवनयुक्त हो सकें। बिहार शैक्षणिक आधारभूत संरचना विकास निगम जैसी संस्था की स्थापना उच्च एवं उच्चतर विद्यालयों के भवन निर्माण हेतु ही की गई है।

गतिविधि

शिक्षा का अधिकार अधिनियम के कारण विद्यालयों की संख्या बढ़ी है लेकिन भूखंड कम हो रहे हैं। कृषि कार्य के भू–खंड आवासीय भूखंडों में बदल गए हैं। सरकारी, गैरसरकारी भू–खंड भी अतिक्रमण के शिकार हो रहे हैं। ऐसे माहौल में विद्यालय भवनों के प्रति समाज का नजरिया बहुत उत्साहजनक नहीं है।

उपरोक्त समस्या पर अपने अध्ययन केन्द्र पर एक परिचर्चा का आयोजन करें

यदि पिछली सदी के अंतिम दशक की बात करें तो विद्यालय भवन को लेकर प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में डी.पी.ई.पी योजना का विशेष हस्तक्षेप रहा। डी.पी.ई.पी ने शिक्षाशासत्रीय तकनीक में बदलाव के तहत कक्षा कक्ष का भौतिक खाका बदला। विद्यालय भवनों के निर्माण की शैली 1997 से बदल गई जो 2005 तक अपनाई जाती रही। दो कमरों और बरामदे का शिल्प षट्कोणीय (Hexagonal) हो गया। इन कमरों में वृत्ताकार बैठने की ऐसी व्यवस्था थी कि सब को सामने खड़े शिक्षक बराबरी से दिखाई पड़े (U आकार में बैठने पर)। साथ ही कक्षा की दीवारों पर आकर्षक चित्रों, अंकों, स्वर– व्यंजनों आदि से उकेरा गया। कक्षा के निचले हिस्से पर लेखनपट बनाए गए ताकि छात्रों की पहुंच हो सके। इन कमरों के फर्श पर रेखागणित की आकृतियाँ फर्श पर बनी होती। बच्चों को रंग–रंगीला, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे वाले शांत कक्षा चाहिए जहाँ वह मन के मुताबिक गतिविधि कर सके। कम जगह घेरना एवं कम लागत के लिए खोखली दीवारें 'रैट ट्रैप बॉन्ड' तकनीक से बनने लगीं, छते गुम्बदनुमा होती थीं हाँ उसके निर्माण की सम्पूर्ण जिम्मेवारी ग्रामीण शिक्षा समिति को दी गई जो स्थानीय समुदाय था। षट्कोणीय भवन में कम लम्बाई–चौड़ाई के बावजूद ज्यादा क्षेत्रफल उभरता था। ऐसे भवनों में गर्मी के दिनों में ताप कम और जाड़े में तापमान थोड़ा ज्यादा महसूस होता था। लेकिन, ऐसे विद्यालयों की सबसे बड़ी समस्या यह रही कि उनमें कमरों के कमी की समस्या बनी रही। एक ही कमरे में अपेक्षा से कई गुणा अधिक बच्चों को बैठाया जाता था जिसके कारण षट्कोणीय कमरें में बच्चों के बैठने की आदर्श स्थिति मुश्किल से हीं कही बन पाती थी।

इसी दौरान किसी–किसी विद्यालय भवन के साथ एक कमरे का एक नया भवन भी दिखाई पड़ने लगा था जिसे संकूल कहा गया। 10–15 स्कूल के एक समूह की शैक्षिक गतिविधियों के आपसी विमर्श के लिए यह भवन अस्तित्व में आ गया था। नई शिक्षा नीति ने ऐसे संकूलों की स्थापना पर जोर भी दिया था। प्रारंम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के प्रयास में बालिका शिक्षा की हिस्सेदारी बढ़ी फलतः स्कूलों में शौचालयों की माँग बढ़ती चली गई। विद्यालय स्वच्छता एवं स्वास्थ शिक्षा योजना के तहत स्कूलों में शौचालय, मुत्रालय एवं पेयजल की उपलब्धता सुनिश्चित की जाने लगी। कई गैरसरकारी संस्थाएं जैसे– यूनिसेफ ने भी इस कार्य में अपनी भागीदारी निभाई। उल्लेखनीय यह रहा कि बालिकाओं और बालकों के लिए अलग–अलग शौचालय एवं मुत्रालय की व्यवस्था होने लगी। विद्यालय भवनों के रख–रखाव के लिए प्रतिवर्ष एक निश्चित राशि विद्यालय को प्राप्त होने लगी। इसके कारण विद्यालय भवन के स्वरूप में कई संशोधन हुए।

पिछली शताब्दी के नब्बे के दशक में चलें तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 द्वारा भी विद्यालय भवन के संदर्भ में कुछ प्रावधानों को सुझाया गया। उसके कुछ अंशों को आगे दिया जा रहा है :

ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड

6.6.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने अलग–अलग चरणों में एक आंदोलन आरंभ करने की सिफारिश की है जिसे ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड कहा गया है। केन्द्र द्वारा समर्थित इस योजना का उद्देश्य सरकार, स्थानीय संस्थाओं और पंचायत राज तथा मान्यता प्राप्त और सहायता प्राप्त संस्थाओं द्वारा चलाए जा रहे प्राथमिक स्कूलों में उपलब्ध सुविधाओं मे सुधार करना है। इसके एक दूसरे पर निर्भर निम्नलिखित तीन घटक हो

- एक इमारत की व्यवस्था, जिसमें दो बड़े कमरे हो, जो परू वर्ष काम आ सके, एक बरामदा और बालकों तथा बालिकाओं के लिये पृथक शौचालय हो ;
- प्रत्येक स्कूल में कम से कम दो शिक्षक हो और जहां तक संभव हो, उनमें एक महिला हो ;
- ब्लैक बोर्ड, नक्शे, चार्ट, खिलौने आदि कार्य–अनुभव के उपस्कर आदि आवश्यक शिक्षण–सामग्री की व्यवस्था हो।

(वार्षिक रिपोर्ट, 1989–90, भाग–1, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग)

6.6.2 एक शिक्षक वाले स्कूलों में दूसरे शिक्षक की नियुक्ति करने और शिक्षण सामग्री को खरीदने के लिये 100% केन्द्रीय सहायता दी जाती है किन्तु इमारत की व्यवस्था राज्य सरकारों को अपने स्रोतों से करनी होगी। इमारतों के निर्माण में होनेवाले व्यय के बारे में कार्य योजना में सिफारिश की है, इसके लिये राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना (एन.आर.ई.पी.) और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी योजना (आर.एल.ई.जी.पी.) जिसे अब जवाहर रोजगार योजना (जे.आर.वाई.) कहते हैं, के लिये उपलब्ध निधि का इस्तेमाल किया जाय।

(स्रोत : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा समिति की रिपोर्ट, 1990)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के द्वारा सुझाए गए उपरोक्त प्रावधानों के आलोक में कच्चे भवनवाले विद्यालयों को दो कमरेवाले पक्के भवन के रूप में निर्मित किया जाने लगा। विद्यालय में शौचालयों की व्यवस्था पर भी ध्यान देना शुरू हुआ। लेकिन इसके प्रावधानों को गौर से पढ़ने पर परोक्ष रूप से यह भी स्पष्ट होता है कि इस नीति ने सामान्य विद्यालयों के आधारभूत आवश्यकता में पूरी कटौती की और पांच कक्षाओं के शिक्षण के लिए सिर्फ दो कमरों की व्यवस्था की सिफारिश की। आगे चलकर उसने कमरों की संख्या तीन कर दिया गया। इसके उलट इसी नीति ने नवोदय विद्यालय के नाम से संसाधनयुक्त विद्यालयों को खोलने की भी सिफारिश की। इन दानों सिफारिशों के आधार पर आप नीतियों के चरित्र के विषय में कई विश्लेषण कर सकते हैं। साफ तौर पर आप यह कर सकते हैं कि नीतियां निरपेक्ष नहीं होती हैं बल्कि अपने समय के सामाजिक–राजनीतिक–आर्थिक संदर्भ से बहुत प्रभावित होती हैं।

गतिविधि

आप विद्यालय से संबंधित कुछ नीतियों का चयन करें और उनका इस आधार पर विश्लेषण करें कि क्या वे समानता के संवैधानिक नीति के अनुकूल हैं? अपने विश्लेषण को अध्ययन केन्द्र पर प्रस्तुत करें।

पिछली शताब्दी के सत्तर के दशक में हम पाते हैं कि विद्यालय में भवन को भारत के शिक्षा आयोग–1964 ने उस समय के विद्यालय भवनो की स्थिति की समीक्षा की तथा उनकी दशाओं को पर चिंता जाहिर की। शिक्षा आयोग 1964 के कुछ अंशों को आगे दिया जा रहा है, इसे पढ़े और स्वतंत्रता के लगभग दो दशक बाद विद्यालयों की क्या स्थिति थी, उसकी समझ बनाएं।

कक्षा का आकार

9.26 यदि अध्यापक को नित्यचर्या के रूप में बहुत विशाल कक्षाओं को पढ़ाना पड़े तो हम सब समान्यतया इस बात पर सहमत होंगे कि शिक्षण पद्धति में विशेष सुधार की अपेक्षा करना व्यर्थ है। पिछले कुछ वर्षों में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के विलक्षण विस्तार से स्कूलों में काफी भीड़ हो गई है, विशेषकर उन शहरी क्षेत्रों में जहां स्कूल की इमारत को बढ़ाने अथवा कक्षाओं के नए सैक्शन खोलने के लिए जगह आसानी से नहीं मिलती। कभी–कभी कक्षा का आकार असामान्य अनुपात में बढ़ जाता है। शहर में साठ छात्रों की कक्षा एक सामान्य बात है। अपने दौरे में हमने भी कुछ माध्यमिक स्कूलों में 60 और 65 छात्रों वाली कक्षाएं देखी हैं। बहुधा अध्ययन कक्ष में इतने छात्रों के लिए आसानी से जगह भी नहीं होती और इस समस्या का हल अध्यापक की कुर्सी को एक ओर ढकेल कर–अध्यापक की मेज के लिए जगह का तो सवाल ही नहीं– तथा आगे वाली बैचों को श्यामपट्ट के एकदम निकट लाकर किया जाता है। ऐसी स्थितियों में सृजनशील अध्यापक की बात करने का कोई महत्व नहीं रह जाता।

9.28 **विशाल कक्षाओं को पढ़ाने की कठिनाइयां–** पचास या इससे अधिक छात्रों की कक्षाओं में शिक्षण–पद्धति कभी संतोषजनक नहीं हो सकती। एक अध्यापक चाहे कितना भी सुयोग्य हो, उसके लिए संभव नहीं कि वह सब छात्रों की क्षमताओं के अधिकतम विकास के साथ–साथ कक्षा के अधिकांश छात्रों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दे सके, कमजोर छात्रों की विशेष सहायता कर सके और तीव्रतर गति पर बढ़ने के लिए प्रतिभासम्पन्न छात्रों का मार्ग निर्देशन कर सके। इन परिस्थितियों में एक औषत अध्यापक रटाने की प्रक्रिया का ही सहारा लेता है। सामान्यतया गृह–कार्यों को जांचा नहीं जाता और निबंधों पर यदाकदा सामर्थ्य होने पर ही अंक दिए जा सकेंगे। शहरी क्षेत्रों में सामान्य माध्यमिक स्कूल में शिक्षण–स्तर की गिराटवट के लिए छात्रों की अतिसंख्य आंशिक रूप से उत्तरदायी है।

9.29 लेकिन हम उन शिक्षाशास्त्रियों से सहमत नहीं जिनका आग्रह है कि एक कक्षा में बीस या पच्चीस से अधिक नहीं होने चाहिए। इस प्रकार का सोचना नितांत अवास्तविक है। वास्तव में आदर्श–कक्षा–आकार नाम की ऐसी कोई वस्तु नहीं और न ही पच्चीस या बीस की संख्या में ऐसी कोई विशेषता है। सही अर्थो में वांछित आकार से किसी कदर बड़ी कक्षाओं के बिना काफी समय तक हमारे देश का गुजारा नहीं चल सकता। शैक्षिक रूप से उन्न्त कुछ देशों को भी इस समस्या का सामना करना पड़ रहा है।

....

स्कूल इमारतें

9.33 स्कूली इमारतों की वर्तमान अवस्था अति असंतोषजनक है। प्राथमिक स्तर पर केवल लगभग 30 प्रतिशत स्कूलों के लिए संतोषप्रद भवनों की व्यवस्था होना कहा जाता है। माध्यमिक स्तर पर तद्नुरूप अनुपात लगभग 50 है। इससे मालूम पड़ता है कि आगामी कुछ वर्षों में हमें कितनी ही अधबनी इमारतों को पूरा करना है। इसके अतिरिक्त शीघ्रगति से बढ़ने वाले अतिरिक्त नामांकन के लिए भी स्कूली इमारतों की व्यवस्था करनी है। इसलिए इस समस्या के तीन पहलू हैः (1) आवश्यक धन राशि की व्यवस्था! (2) इमारतों की लागत को न्यूनतम स्तर पर लाना! (30) एक ऐसे संगठना की प्रकल्पना जिससे यह कार्य शीघ्रता और किफायत से सम्पन्न हो।

9.34 **स्कूली इमारतों के लिए धनराशि–** हम सिफारिश करते हैं कि केन्द्रीय और राज्य के बजट में स्कूली इमारतों के निर्माण के लिए दी जाने वाली रकम में वृद्धि की जाय। यह एक क्षेत्र हैजिसमें स्थानीय समुदाय महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। अतः सहायक अनुदान की ऐसी योजना तैयार की जाए जिनके अंतर्गत स्कूली इमारतों के निर्माण के लिए बराबरी के आधार पर स्थानीय समुदाय को राज्य–सहायता उपलब्ध हो। जहां संभव हो स्कूली इमारतों के निर्माण के लिए ऋण–व्यवस्था को

प्रोत्साहित किया जाए। गैर–सरकारी स्कूलों को भी स्कूली इमारतों के लिए पर्याप्त उदारपूर्वक सहायक अनुदान एवं ऋण प्राप्त होने चाहिए।

9.35 **लागत में कमी**–केन्द्रीय तथा राज्य दोनों ही सरकारों के लिए शिक्षा मंत्रालय, निर्माण मंत्रालय तथा योजना आयोग की ओर से कई समितियां इस प्रश्न पर विचार–विमर्श कर चुकी है। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के छात्रावास, कर्मचारियों के आवास, तथा पुस्तकालय आदि के लिए विस्तृत मानक तैयार ए़ि है और रूड़की की केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्था तथा भारतीय मानक संस्था ने भी इस क्षेत्र में कुछ सुझाव दिए है। इन सबका परिणाम यह हुआ कि आज लगभग सब प्रकार के स्कूल–कॉलेजों के लिए स्थान एवं आयोजना मानक और आदर्श नक्शे तथा लागत में कमी करने के विषय में पर्याप्त उपयुक्त सलाह उपलब्ध है। अब तक ऐसे साधन की आवश्यकता है जो इस उपलब्ध सूचना को क्रिया रूप दे सके।

9.36 परंपरागत चिर प्रतिष्ठित इमारती समान के और आवास के अभाव के कारण बहुत–से–स्कूल ऐसी इमारतों में परिचालित है जिन्हें सार्वजनिक निर्माण विभाग अस्थाई इमारतें मानता है और कुछ तो झोपड़ियों में कार्य कर रहे हैं। हमारे विचार में ऐसी इमारतों और झोपड़ियों के प्रति यह पूर्वाग्रह नितांत अनुचित है। यदि इनमें उठे हुए फर्श तथा पर्याप्त वायु संचारण के लिए उंचि खिड़कियाँ एवं दरवाजे हों तो ये कच्ची इमारतें स्कूली इमारत के रूप में पर्याप्त उपयोगी सिद्ध होगी। तथापि इस बात का यह गलत अर्थ न लगाया जाए कि कच्ची इमारतें सदा ही अच्छी होती है। क्योंकि वास्तव में ऐसा नहीं है, कुछ कच्ची इमारतें देखभाल की भारी लागत के कारण अंततः महंगी बैठती हैं। हमारा उद्‌देश्य तो सुनियोजित कच्ची इमारतों को अपनी शिक्षा प्रणाली का अंग मानने पर बल देना तथा इमारतों के निर्माण में आडम्बरपूर्ण प्रदर्शन की अपेक्षा सादगी एवं उपयोगिता को प्रमुखता देना है।

9.37 **ग्राम्य क्षेत्रों में इमारतें**–शहरी तथा ग्राम्य क्षेत्रों के लिए स्कूल इमारतों की समस्या पर अलग–अलग विचार विमर्श करने की आवश्यकता है। शहरी क्षेत्रों में जमीनों की कीमतें बहुत अधिक है और बहुधा पर्याप्त जमीन बिल्कुल ही उपलब्ध नहीं है। अतः नए ढंग की इमारतें आवश्यकत है! सन्निकट वातावरण से अनुकूलता की दृष्टि से भी। दूसरी ओर ग्राम्य क्षेत्रों में जमीन सस्ती तथा सहज–सुलभ है तथा नए ढंग की इमारतें ग्राम्य वातावरण में प्रायः हास्याप्रद प्रतीत होती है।

9.38 हमारी सिफारिश है कि स्कूली इमारतों के निर्माण के लिए स्थानीय लोगों की पहल एवं धन माल अथवा श्रम के रूप में स्थानीय योगदान को प्रोत्साहित करने के लिए हर प्रयत्न किया जाए। ऐसी विशिष्ट योजना बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती है जिसके अंतर्गत सरकार केवल पहले से तैयार ढांचे दे और कुर्सी उठाने और दीवारें भरने का कार्य स्थानीय जनता करे। शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रस्तावित 'न्यूक्लिअस' तरीका इस दिशा में बड़ी सहायक है और यह आमतौर पर अपनाने के लायक है।

9.39 **शहरी क्षेत्रों में इमारतें**–शहरी क्षेत्रों में शैक्षिक इमारतों के निर्माण में किफायती करने के लिए निम्नलिखित तरीके अपनाने चाहिएः

- *विशिष्टियों और स्थानीय सामग्री का समझ के साथ चुनाव*– जोखिम से बचने के लिए अर्से से अमल में आ रही विशिष्टियों को अपनाने की वर्तमान पद्धति द्वारा कम लागत से इमारतें खड़ी करना संभव नहीं। स्थानीय उपलब्ध सामग्री के चुनाव, सस्ते सामान के उपयोग, कुछ आज संवार को नजरअंदाज कर देने, तथा निर्माण में हलके स्तर से काम चला लेने से किफायत की जा सकती है। तथापि समान की उपलब्धि, जलवायु संबंधी अवस्थाओं, इमारतों की सुरक्षा तथा आवर्तो अनुरक्षण व्यय के आधार पर ही इन सब बातों को अंतिम क्रिया रूप दिया जा सकेगा।
- *निर्माण की तकनीकें*– विचारपूर्ण आयोजन और डिजाइन करने से तथाकथित 'अस्थायी' ढांचे भी स्कूलों द्वारा प्रयुक्त बहुत सी किराये की इमारतों से अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।...........

(स्रोत : शिक्षा आयोग 1964–66)

उपरोक्त उद्दरणों को पढ़कर आप यह विश्लेषण कर सकते हैं कि आज की विद्यालयी नीतियों और 1964 की शिक्षा नीति द्वारा सुझाइ गई नीतियों में किस प्रकार से निरंतरता है और किस प्रकार से अंतर। आप यह भी विश्लेषण कर सकते हैं कि आयोग ने शिक्षण को विद्यालय भवन से किस प्रकार जोड़ा है। कई ऐसी भी बातें हैं जिनको आयोग ने न्यायोचित ठहराया है जो समान शिक्षा की व्यवस्था के उलट हैं। आप उन नीतियों की पड़ताल करें। हालाकि यह इस आयोग की उपलब्धि रही कि इने विद्यालय के ढ़ांचागत स्थिति के विकास पर सरकार का ध्यानाकर्षण किया। विद्यालय भवन को लेकर सरकारी नीतियों में उल्लेख की शुरूआत यहीं से होने लगी। लेकिन, दूसरी ओर सरकारी हस्तक्षेप का तरीका ऐसा रहा कि जिसके प्रतिक्रियास्वरूप समुदाय विद्यालय के प्रति उदासीन होने लगा। आप ने 1976 के बिहार राज्य द्वारा जारी विद्यालय अधिग्रहण अधिनियम के कुछ अंशों को पहली इकाई में पढ़ चुके हैं। उसे फिर से पढ़कर जरा समीक्षा करें कि उस स्थिति के आने के बाद विद्यालय में समुदाय की भूमिका को किस प्रकार से देखा जाने लगा।

गतिविधि

विद्यालय भवन का समुदाय द्वारा विविध कार्यों के लिए इस्तेमाल करने पर अब रोक लगा दी गई है। पर कुछ दशक पहले देखें तो समुदाय द्वारा अपने सामुहिक आयोजनों को इन्हीं विद्यालय भवनों में किया जाता था। इसके क्या कारण हो सकते हैं।

यदि विद्यालय भवन को संसाधनयुक्त बनाने की बात होती है तो उसके भवन के निर्माण पर खर्च हानेवाली राशि की व्यवस्था का भी सवाल उठता है। आप इकाई–1 में वित्तरहित विद्यालयों के विषय में पढ़ चुके हैं। आज के संदर्भ में सरकारी विद्यालयों के निर्माण में योजना से प्राप्त अनुदान राशि के अलावा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से प्राप्त राशियों को भी लगाया जा रहा है। उन राशियों से राज्य की शिक्षा व्यवस्था में कितना बड़ा बदलाव आ रहा है, यह विचारणीय प्रश्न है।

एक विद्यालय के भवन पर कितना व्यय होना चाहिए, इस बारे में समान विद्यालय प्रणाली आयोग ने एक नए प्राथमिक विद्यालय भवन के निमार्ण पर अनुमानित इकाई लागत का ब्यौरा प्रस्तुत किया है :

एक नए प्राथमिक विद्यालय भवन के निर्माण पर अनुमानित इकाई लागत

संख्या	व्यय मद	व्यय (हजार रूपये में)	
		विकल्प–1	विकल्प–2
	1. भवन		
1	जमीन (0.12 एकड़) (रू. 5000 प्रति डिसमिल जमीन)	60.0	60.0
2	भवन का निर्माण (4470 वर्गफीट) (रू. 440 प्रति वर्गफीट)	196.0	1540.0
3	चहारदीवारी	100.0	100.0
4	चापाकल (2) (रू. 30.0 हजार/चापाकल	60.0	60.0
5	मलजल व्यवस्था/स्वच्छता	50.0	50.0
6	विद्युतीकरण	40.0	20.0
7	अग्निशामक उपाय	2.0	2.0
	उप–योग	2279.0	1832.0

गतिविधि

उपरोक्त विवरण के आधार पर आप अपने विद्यालय पर खर्च की गई राशि की तुलना करें। अभी नए विद्यालयों के निर्माण के लिए राज्य सरकार से कितनी राशि दी जाती हैं, इसका भी पता करें।

वित्त आवंटन के आधार पर विद्यालयों के विकास को विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से भी देखा जा सकता है। साथ ही राज्य अपनी शिक्षा व्यवस्था पर कितना खर्च करती है, इससे भी विद्यालयों के विकास को समझा जा सकता है। नीचे बिहारे संदर्भ में कुछ आंकड़ों को दिया जा रहा है, इससे राज्य में शिक्षा के विकास एवं उसकी चुनौतियों को समझने का प्रयास करें।

तालिका 4.18

बिहार में शिक्षा पर कुल राजस्व व्यय का प्रतिशत एवं प्रति व्यक्ति व्यय 1936–37 से 1972–73

वर्ष	राज्य का कुल राजस्व व्यय	शिक्षा पर कुल राजस्व व्यय का प्रतिशत खर्च	शिक्षा पर कुल राजस्व आबादी राजस्व व्यय का (करोड़ में)	शिक्षा पर प्रति व्यक्ति व्यय (रूपये में)	शिक्षा पर प्रतिशत व्यय (रूपये में)
1936-37	4.76	0.69	14.49	3.24	0.21
1941-42	6.00	0.79	13.16	3.52	0.22
1946-47	14.42	1.06	7.35	3.63	0.29
1947-48	16.8	0.24	7.38	3.64	0.34
1948-49	21.76	1.34	6.16	3.65	0.37
1949-50	25.76	4.37	16.96	3.84	1.11
1950-51	26.05	3.19	12.24	3.88	0.82
1951-52	32.82	3.58	10.90	4.06	0.88
1952-53	28.25	4.31	15.26	4.10	1.05
1953-54	31.67	5.41	17.08	4.14	1.30
1954-55	42.13	6.09	14.45	4.18	1.45
1955-56	54.45	7.74	14.21	4.22	1.83
1956-57	51.81	9.04	17.45	4.07	2.22
1957-58	59.69	8.24	13.80	4.15	1.99
1958-59	61.60	9.39	15.24	4.21	2.23
1959-60	69.12	11.43	16.54	4.25	2.69
1960-61	72.40	13.26	18.31	4.65	2.85
1961-62	81.04	15.07	18.59	4.68	3.22
1962-63	83.49	15.33	18.36	4.76	3.22
1963-64	88.17	15.77	17.99	4.87	3.22
1964-65	90.09	17.53	19.46	4.97	3.52
1965-66	125.21	19.20	15.33	5.09	4.12
1966-67	147.50	21.04	14.26	5.20	4.04
1967-68	170.60	22.42	14.90	5.30	4.79
1968-69	155.34	27.24	17.50	5.41	5.00
1969-70	216.96	42.11	19.41	5.52	7.62
1970-71	249.69	47.22	18.91	5.75	8.78
1971-72	261.76	50.51	19.29	5.75	8.78
1972-73	316.38	52.60	16.68	5.86	9.39

स्रोतः बिहार में शिक्षा की प्रगति 1947–48, सारणी 6.16 पृष्ठ–117

उपरोक्त सारणी में स्वतंत्रतापूर्व और स्वतंत्रता पश्चात, दोनो काल से कुछ आंकड़ों को दिया गया है। आप यह विश्लेषण करें कि उस दौरान देश की राजनैतिक स्थिति जो रही, उसका राज्य की शिक्षा पर किए जानेवाले खर्च पर क्या प्रभाव पड़ा।

गतिविधि

1973 से लेकर अभी तक, बिहार राज्य ने प्रतिवर्ष अपने कुल राजस्व का शिक्षा पर कितना प्रतिशत खर्च किया है, इसकी एक सारणी उपरोक्त उदाहरण के अनुसार बनाएं और उसका विश्लेषण करें।

नीतियों ने विद्यालयी शिक्षा के उपर खर्च की जाने वाली राशि को किसप्रकार निर्धारित किया तथा उस विषय में क्या सिफारिशें की, इससे विद्यालय के विकास की नियति बहुत हद तक तय होती है। आप ने उपरोक्त सारणी में उस समय के बिहार से संबंधित कुछ आंकड़ों को देखा। यह सिर्फ राज्य की स्थिति के विषय में थोड़ा अनुमान लगाने का अवसर देतें है। लेकिन देश की राष्ट्रीय योजना में शिक्षा को किस प्रकार से देखा जा रहा था और उसके विकास के लिए कितनी राशि को आवंटित किया जा रहा था, इसको समझने से राष्ट्रीय परिदृश्य की समझ बनेगी। स्वतंत्रता बाद के शिक्षा आयोग 1964 द्वारा प्रस्तुत किए गए रिपोर्ट से विद्यालयी वित्त व्यवस्था के राष्ट्रीय परिदृश्य को समझने में मदद मिलेगी। इस रिपोर्ट के कुछ आंकड़ों को नीचे दिया जा रहा है, ताकि हम उनका विश्लेषण करके अभी की शिक्षा के संदर्भ को समझ सकें।

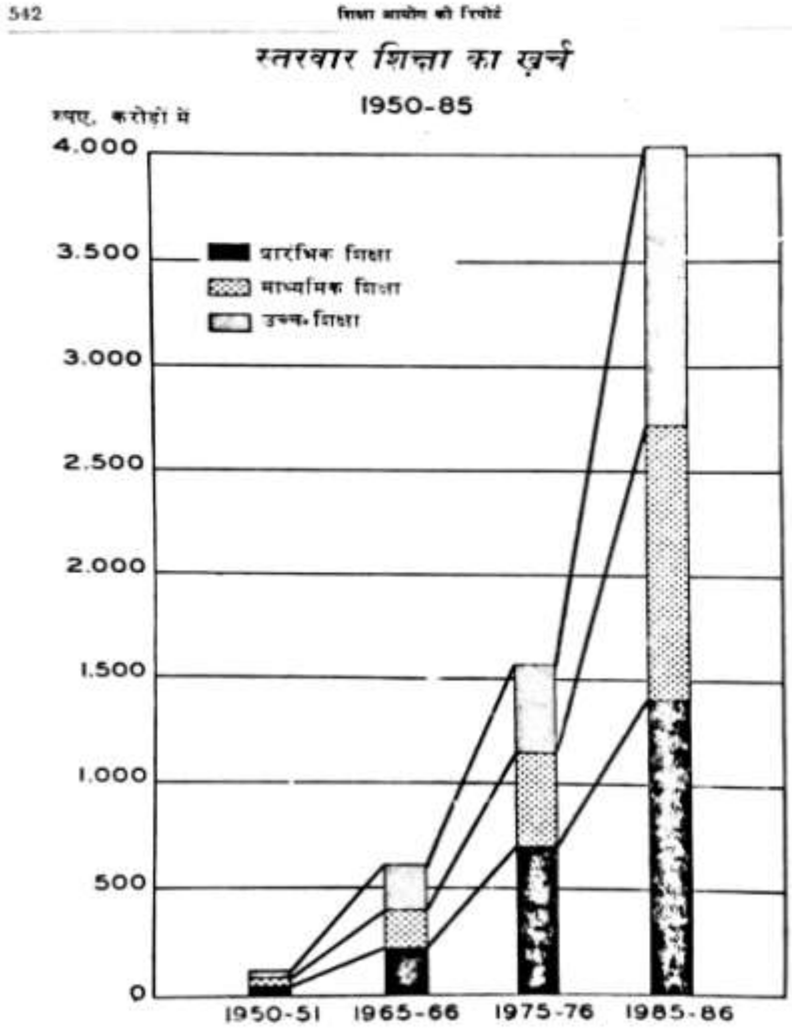

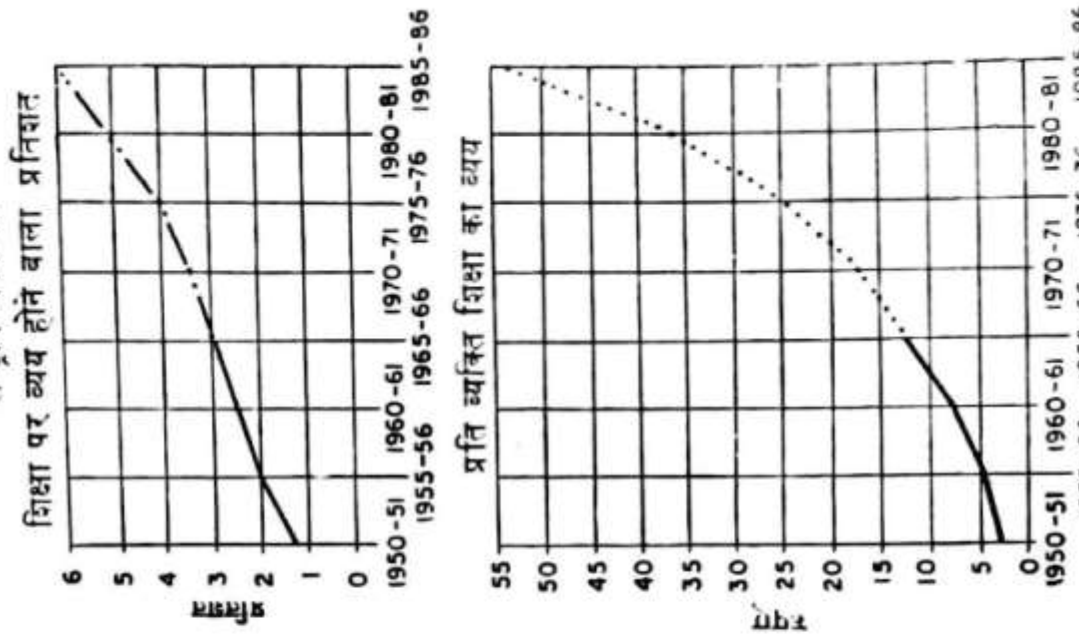

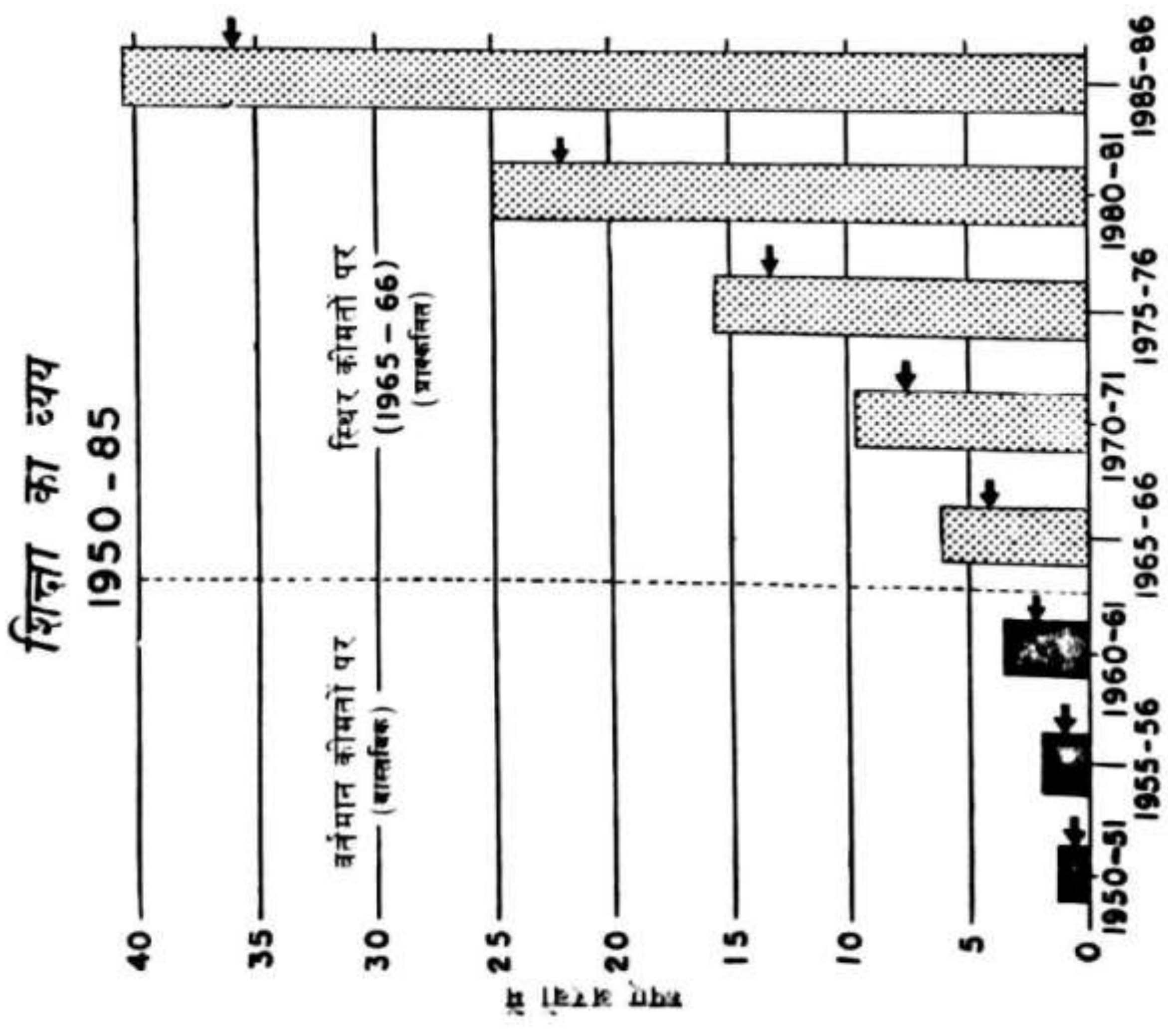

नोट :—1. तीर (←) के नीचे का भाग सरकारी निधियों से पूरे किए गए व्यय को दिखाता है और उसके ऊपर का भाग अन्य स्रोतों से पूरे किए गए व्यय को।

2. बुंदकियों वाले वण्ड 1965-66 की कीमतों को स्थिर मानकर प्राक्कलित व्यय बताते हैं।

उपरोक्त तालिकाओं के आधार पर आप आजादी के बाद की शिक्षा पर व्यय की स्थिति को समझ सकते हैं। उस स्थिति के बनने में राजनैतिक विकास व अस्थिता, दोनो की ही भूमिका बनी रही। आयोग द्वारा जो अनुशंसाएं की गई उसमें आप पाएंगे कि 1985 तक शिक्षा पर व्यय की एक रूपरेखा दी गई है। आपको क्या लगता है कि आयोग की उस रूपरेखा पर अमल किया गया होगा, विचार करें।

गतिविधि

यदि शिक्षा आयोग 1964 के शिक्षा पर राष्ट्रीय आय के 6 प्रतिशत व्यय की सिफारिश को मान लिया गया होता तो अनुमान लगाए कि आज की शिक्षा व्यवस्था कैसी होती। उसकी सिफारिशों को क्यों नहीं पूरी तरह से माना जा सका, कारणों की पड़ताल करें।

यदि स्वतंत्रता पूर्व की स्थिति को देखें तो 1882 में हंटर आयोग ने प्राथमिक शिक्षा को विधिवत समुदाय/पंचायतों को सौंपने की बात कही तो विद्यालय भवनों के निर्माण की बात सोची जाने लगी जिसकी बागडोर पंचायतों के हाथों में दायित्वपूर्ण ढंग में आने लगा। इसके पीछे के काल में जाएं तो 1854 के वुड्स डिसपैच नीति के तहत पहली बार अनुदान (Grant-in-Aid) के तहत विद्यालय भवनों के लिए कुछ राशि निर्धारित किया गया। इसके साथ ही भवन निर्माण के कुछ मानक भी तय किए गए।

यदि देशज शिक्षा के पाठशालाओं या मकतबों की चर्चा करें तो उनमें स्थायी और अस्थायी दोनो प्रकार के भवन होन की बात की जाती है। उसके विद्यालय का भवन समुदाय की ही सम्पत्ति थी। भवनों का कोई मानक होने का साक्ष्य नहीं मिलता है। समुदाय की प्राथमिक शाला में सिर्फ एक या दो कमरे और बरामदे मात्र ही हुआ करते थें जहाँ शौचालय, पेयजल की सुविधा, चाहर दीवारी, रसोईघर, भंडारगृह का अस्तित्व दूर–दूर तक नहीं था। क्रीड़ा स्थल भूमि की उपलब्धता के अनुसार छात्र शिक्षक जरूर बना लेते थे लेकिन इस दिशा में कोई विधिवत नीति नहीं थी जो विद्यालय भवनों को भौतिक संसाधनों से युक्त करता। इन विद्यालयों का निर्माण, रख–रखाव समुदाय के जिम्मे ही था।

गतिविधि

अपने अध्ययन केन्द पर यह चर्चा करें कि देशज शिक्षा के जो विद्यालय थे, वे आज के विद्यालयी व्यवस्था से किस प्रकार अलग थे।

2.6 समेकन

इस इकाई में हमने विद्यालय भवन के विकास से संबंधित विभिन्न स्थितियों का विश्लेषण किया। आपने अपने विद्यालय भवन के निर्माण से संबंधित विभिन्न सूचनाओं को एकत्र कर उसके इतिहास को भी समझा। इसी के साथ साथ विद्यालय भवनों पर शिक्षा नीतियों के पड़नेवाले कुछ प्रभावों का अध्ययन भी हमने किया। हमने यह समझा कि विभिन्न नीतियों जैसे शिक्षा के अधिकार अधिनियम–2009, बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008, समान स्कूल प्रणाली आयोग–2007, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005, सर्व शिक्षा अभियान, डी.पी.ई.पी, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986, आदि ने विद्यालय भवन के संदर्भ में क्या अपेक्षाएं की तथा उसमें किस प्रकार के बदलाव किए। नीतियों के विश्लेषण में ही हमने राज्य और समुदाय का विद्यालय के साथ संबंध किस प्रकार परिवर्तित हो गया, जिसका असर विद्यालय भवन के निर्माण व रख–रखाव पर भी पड़ा। पिछली सदी में अस्सी के दशक से सरकार की विद्यालय में भूमिक बढ़ती गई। विद्यालय भवन सहित विद्यालय के सभी संसाधन सरकारी नियंत्रण के अधीन आ गए और विद्यालय के प्रति समुदाय उदासीन होता चला। विद्यालय भवनों का निर्माण पूर्णतः सरकारी निधियों पर आश्रित हो गया। यह सब अचानक नहीं हुआ बल्कि इनके पीछे कई नीतियों की भूमिका है, जिनमें से कुछ के विषय में आपने इस इकाई में अध्ययन किया।

2.7 मूल्यांकन के प्रश्न

1. विद्यालय के भवन की पड़ताल करके आप किसी विद्यालय के इतिहास के बारे में क्या–क्या पता लगा सकते हैं?
2. विद्यालय के भवन के अतीत को जानने के लिए आप कौन–कौन से प्रश्न पूछेंगे, उनकी एक सूची बनाएं।
3. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 के माध्यम से विद्यालय भवन में किस प्रकार के सृजनात्मक बदलाव करने की बात कहीं गयी है? कुछ की चर्चा करें।
4. शिक्षा के अधिकार अधिनियम का विद्यालयों के भवन निर्माण पर क्या प्रभाव पड़ा?
5. 1986 की शिक्षा नीति का विद्यालय के भवन निर्माण पर जो प्रभाव पड़ा, उसकी समीक्षा करें।
6. विद्यालय भवन की सामाजिक उपयोगिता को अब सीमित कर दिया गया है, इसके पीछे क्या कारण हो सकते हैं।
7. शिक्षा आयोग 1964 ने आगे के दशकों में शिक्षा पर राष्ट्रीय आय के कितने प्रतिशत व्यय की सिफारिश की? क्या उसे माना गया।
8. विद्यालयों के भवनों की खराब स्थिति के लिए नीतियां किस प्रकार जिम्मेवार हैं, चर्चा करें।
9. बिहार में भवनरहित विद्यालयों की अभी कितनी संख्या है, इस संबंध में ऑल इंडिया स्कूल एजूकेशन सर्वे के अद्यतन आंकड़ों को एकत्र करके विश्लेषण करें।
10. आज हमारे देश में प्राथमिक शिक्षा के कितने अंश को विद्यालय भवन के निर्माण पर खर्च किया जा रहा है, इस वर्ष के राष्ट्रीय योजना के आंकड़ों का विश्लेषण करके पता लगाएं।
11. आप शिक्षा के अधिकार अधिनियम–2009 के विद्यालय भवन के उपयोग संबंधी प्रावधानों को पढ़े और यह बताएं कि उसमे और शिक्षा आयोग–1964 के मतों में किस प्रकार से भिन्नता है।

इकाई–3
विद्यालय में शिक्षक

3.1 परिचय
3.2 सीखने के उद्देश्य
3.3 पूर्व अनुभव
3.4 अपने विद्यालय में शिक्षक व शिक्षिकाओं के वर्तमान संदर्भ को समझना
3.5 विद्यालय में शिक्षक की स्थिति : ऐतिहासिक एवं नीतिगत विमर्श
3.6 समेकन
3.7 मूल्यांकन के प्रश्न

3.1 परिचय

विद्यालय में आये परिवर्तनों के साथ–साथ शिक्षक की वृत्ति व अपेक्षित भूमिका में भी कई महत्वपूर्ण बदलाव होते रहे हैं। उदाहरण के तौर पर, शिक्षक की योग्यता, नियुक्ति, प्रशिक्षण व वृत्तिक विकास (सेवापूर्व व सेवाकालीन), पदोन्नति, स्थानांतरण, प्रधान–शिक्षक अथवा प्रधानाचार्य की व्यवस्था, विद्यार्थी–शिक्षक अनुपात, इत्यादि से संबंधित समय–समय पर निर्धारित नियमों, प्रावधानों व अनुशंसाओं ने विद्यालय में शिक्षक की भूमिका को बड़ी गहराई से प्रभावित किया है। अतः इस संदर्भ में शिक्षक के जीवन से संबंधित नीतिगत पहलूओं को भी समझना चाहिए। इस इकाई में शिक्षक संबंधी विभिन्न दस्तावेजों की मदद से विद्यालय में शिक्षक के विभिन्न आयामों को समझा जायेगा। आप समकालीन संदर्भ में शिक्षक संबंधित नीतियों से परिचित हो सकेंगे तथा यह समझ पायेंगे कि इन नीतियों ने आपके विद्यालय में शिक्षकों की भूमिका को कैसे प्रभावित किया है। साथ ही, अपने विद्यालय के आरम्भ होने से लेकर अभी तक शिक्षक से जुड़ी सूचनाओं संबंधी जो भी दस्तावेज़ उपलब्ध हैं, उनके आधार पर आप नीतियों के प्रभावों को समझने का प्रयास करेंगे। इस इकाई में हम देखेंगे कि शिक्षक की धारणा में किस प्रकार के बदलाव हुए। शिक्षक का सीखाने वाले से, समाज से और अपने कार्य से रिश्ता कैसे–कैसे बदलता गया, यह भी समझेंगे कि शिक्षक की भूमिका व उससे अपेक्षाएं कैसे बदली है और शिक्षा को ज्यादा व्यापक करने व फिर उसके सार्वजनीकरण के प्रयास से शिक्षक की धारणा में किस तरह के बदलाव हुए हैं।

3.2 सीखने के उद्देश्य

- अपने विद्यालय में शिक्षक व शिक्षिकाओं के समकालीन संदर्भ को समझना।
- विद्यालयों में शिक्षक की व्यवस्था से जुड़े ऐतिहासिक तथ्यों की समझ विकसित करना।
- विद्यालय में शिक्षकों की स्थिति में आनेवाले बदलाव एवं शिक्षा नीतियों से उनके जुड़ाव को समझना।
- शैक्षिक दस्तावेजों के माध्यम से शिक्षक से जुड़े विमर्शों को समझना।

3.3 पूर्व अनुभव

आप स्वयं किसी विद्यालय में शिक्षक या शिक्षिका हैं। इस पद पर कार्य करते हुए आपको कई अनुभव हुए होंगे। आपके विद्यालय में शिक्षकों की जो स्थिति है उससे आप भलिभांति परिचित होंगे। इस विषय में आप अपने सहकर्मी शिक्षक–शिक्षिकाओं से भी बात होती होगी। यह भी संभव हो सकता है कि आपके विद्यालय में कुछ बहुत पुराने शिक्षक या शिक्षिका होंगे जो आपको वैसे कई अनुभवों को चर्चा करते होंगे जो आज विद्यालयों में नहीं होता है। विद्यालय में शिक्षकों की कार्य संस्कृति किस प्रकार से है, इसका भी आपको प्रत्यक्ष अनुभव है। इसके अलावा आपने अपने विद्यालयी जीवन में कई शिक्षक व शिक्षिकाओं से पढ़ा होगा। उनकी छवि भी आपके ध्यान में होगी। इन सभी अनुभवों से आपको इस इकाई की चर्चाओं को समझने में मदद मिलेगी।

3.4 अपने विद्यालय में शिक्षक व शिक्षिकाओं के वर्तमान संदर्भ को समझना

हमारे विद्यालय में जिस प्रकार से अभी शिक्षक या शिक्षिकाओं की जो व्यवस्था चल रही है, उस प्रकार की व्यवस्था बनने के पीछे शिक्षा नीतियों एवं उनके क्रियांवयन की सफलता व असफलता का एक पूरा इतिहास है। लेकिन उस इतिहास को समझने के लिए आज की व्यवस्था को गहराई से जानना आवश्यक है तभी उसके विभिन्न पहलूओं को हम ऐतिहासिक एवं नीतिगत विमर्शों के माध्यम से विश्लेषित कर पाएंगे।

विद्यालय में शिक्षक व शिक्षिकाओं की समकालीन स्थिति को समझने के लिए आपका अपना विद्यालय एक महत्वपूर्ण स्रोत है, जहां आप स्वयं एक शिक्षक या शिक्षिका हैं। अतः यह बेहतर होगा कि आप सबसे पहले अपने विद्यालय में ही शिक्षकों की स्थिति का विश्लेषण करें। इसमें आपको सहुलियत भी होगी और आप अधिक से अधिक उपयोगी आंकड़ों को संग्रहित कर पाएंगे।

उदाहरण के लिए, एक गतिविधि के रूप में एक सूझावात्मक योजना की रूपरेखा आगे दी जा रही है, जिससे आप अपने विद्यालय के शिक्षक व शिक्षिकाओं के संदर्भ में विश्लेषण योग्य आंकड़ों को एकत्रित कर पाएंगे। आप इस योजना में अपने संदर्भ के सापेक्ष बदलाव करके तथा अन्य महत्वपूर्ण सूचनाओं के लिए प्रश्न जोड़कर अपने विद्यालय के शिक्षकों के विषय में आंकड़ों को एकत्र करने के लिए योजना बनाएं।

<table>
<tr><th colspan="6">गतिविधि : योजना की रूपरेखा की तैयारी</th></tr>
<tr><td colspan="2">विद्यालय का नाम</td><td colspan="4"></td></tr>
<tr><td colspan="2">स्थापना वर्ष :</td><td colspan="2">स्तर (कक्षाएं) :</td><td colspan="2">विद्यार्थियों की कुल संख्या :</td></tr>
<tr><td colspan="3">शिक्षक / शिक्षिकाओं की कुल संख्या :</td><td colspan="2">शिक्षकों की संख्या :</td><td>शिक्षिकाओं की संख्या :</td></tr>
<tr><td colspan="6">विद्यार्थी–शिक्षक अनुपात (Student-Teacher Ratio) :</td></tr>
<tr><td colspan="5">निर्धारित मानदण्डों के अनुसार क्या विद्यालय में शिक्षकों की पर्याप्त संख्या है</td><td></td></tr>
<tr><td colspan="5">मानदण्डों की पूर्ति के लिए और कितने शिक्षक / शिक्षिकाओं की अपेक्षा है</td><td></td></tr>
<tr><td colspan="6">अपने विद्यालय के शिक्षक / शिक्षिकाओं के विषय में अपेक्षित जानकारी को नीचे दिए गए सारणी के अनुसार भरें। आप सारणी में अपनी आवश्यकतानुसार किसी अन्य महत्वपूर्ण सूचना के लिए अतिरिक्त प्रश्न या कॉलम जोड़ सकते हैं।</td></tr>
</table>

शिक्षक / शिक्षिका का नाम एवं आयु		**इस विद्यालय में नियुक्ति का वर्ष**	**शैक्षिक पद का नाम**	**कोई पदोन्नति या स्थानान्तरण**	**प्रमुख शैक्षिक योग्यताएं**	**शिक्षक प्रशिक्षण**	
						कौन सा	**कब**
1							
2							
3							
4							
5							
6							
7							

उपरोक्त संग्रहित सूचनाओं के आधार पर आप यह विश्लेषण करें कि आपके विद्यालय में शिक्षकों की क्या स्थिति है। साथ ही निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार करें :

1. अक्सर आज के शिक्षक/शिक्षिकाओं की योग्यता व शिक्षण क्षमता को इससे पहले के शिक्षकों की योग्यता एवं क्षमता से तुलना करके देखा जाता है। यह धारणा बनी हुई है कि आज की शिक्षा की गुणवत्ता पहले की शिक्षा से कम है तथा इसके लिए आज के शिक्षकों के गुणवत्ताहीन व्यवस्था जिम्मेवार है। इस संदर्भ में आपके विद्यालय में क्या स्थिति है, विश्लेषण करें।

2. यह भी धारणा है कि सरकारी विद्यालयों की तुलना में निजी विद्यालयों में अच्छे शिक्षक या शिक्षिकाएं होते हैं। अपने विद्यालय के शिक्षकों के विषय में प्राप्त सूचना का आस पास के किसी अन्य निजी विद्यालय के शिक्षकों से तुलनात्मक विश्लेषण करें।

3. क्या आपको लगता है कि शिक्षक/शिक्षिकाओं की योग्यता, नियुक्ति, प्रशिक्षण, वेतन, आदि में कोई क्रमिक बदलाव हुए हैं।

उपरोक्त बिन्दुओं की चर्चा के लिए आप अपने विद्यालय के संदर्भ का उपयोग कर सकते हैं, इससे एक मोटी मोटी समझ बनेगी। लेकिन इन प्रश्नों को गहनता से समझने के लिए हमें शिक्षक से संबंधित नीतियों के ऐतिहासिक विमर्श की पड़ताल करनी होगी। आगे के खण्ड में शिक्षक की योग्यता, नियुक्ति, प्रशिक्षण आदि से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण दस्तावेजों के अंशों को लेते हुए चर्चा की जाएगी।

गतिविधि

आप शिक्षक कैसे बने? अपनी योग्यता, प्रशिक्षण, नियुक्ति, आदि से संबंधित सूचनाओं को एकत्र करें तथा आगे दी जानेवाली शिक्षा नीतियों के आलोक में उनका विश्लेषण करें।

3.5 विद्यालय में शिक्षक की स्थिति : ऐतिहासिक एवं नीतिगत विमर्श

शिक्षक किसी भी शिक्षायी व्यवस्था का एक मौलिक अंग है, जिसके माध्यम से शैक्षिक क्रियाकलापों का क्रियान्वयन होता है। पारम्परिक तौर पर, शिक्षक को समाज के भावी पीढ़ी का निर्माता भी कहा जाता रहा है, जो अपने शिक्षण के माध्यम से सामाजिक मुल्यों एवं उद्देश्य को आगे बढ़ाने का कार्य करता है। लेकिन शिक्षक के इस छवि में कई ऐतिहासिक परिवर्तन आए जिसमें विभिन्न शिक्षा नीतियों एवं बदलते समाज की अहम भूमिका रही। आज के परिदृश्य में शिक्षक के पारम्परिक स्वरूप एवं भूमिका में कई परिवर्तन हुए हैं जिनके विकास क्रम को हम शिक्षा नीतियों से जोड़कर समझने की कोशिश करेंगे।

आज जब शिक्षा की दशा को लेकर कोई बात होती है तो सबसे पहले शिक्षकों का ध्यान आता है जिसमें उनकी गुणवत्ता, शिक्षण पेशे के प्रति लगन, आदि मुद्दों पर सवाल खड़े किए जाते हैं और इन सबके उत्तर की अपेक्षा शिक्षक से ही की जाती है। इन बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षक समुदाय ने जानबुझकर शिक्षा की गुणवत्ता को गिराने की कोशिश की है। हालाकि यह संकुचित निष्कर्ष जायज नहीं है लेकिन उठाए गए सवाल बहुत महत्वपूर्ण हैं जिनकी गहन पड़ताल जरूरी है।

समकालीन संदर्भ में आपने शिक्षक से संबंधित कई मुद्दों को सुना होगा– अपने विद्यालय में सहकर्मी शिक्षकों के माध्यम से, अखबार के माध्यम से, टी.वी. के माध्यम से, शिक्षा से संबंधित पत्रिकाओं, रिपोर्टों के माध्यम से, अभिभावकों के माध्यम से, पंचायत सदस्यों के माध्यम से। आप उनमें से प्रमुख मुद्दों की एक सूची बनाएं। वे मुद्दे राष्ट्रीय स्तर, राज्य स्तर या स्थानीय, कोई भी हो सकते हैं। उनमें से कुछ मुद्दों को नीचे सारणी में दिया जा रहा है, आप इसमें अन्य मुद्दों को जोड़ लें।

शिक्षक से संबंधित समकालीन मुद्दे	
1.	शिक्षक प्रशिक्षण की गुणवत्ता में संवर्द्धन पर जोर
2.	केवल प्रशिक्षित शिक्षकों का विद्यालय में नियुक्ति
3.	शिक्षक दक्षता परीक्षा की अनिवार्यता
4.	नियोजित शिक्षक के वेतन को बढ़ाने की मांग
5.	शिक्षकों के असमान वेतन की आलोचना
6.	विद्यालयों में शिक्षकों के पदों की रिक्ति की भारी संख्या
7.	अनुबंधित शिक्षकों को नियमित करने का आंदोलन
8.	गुणवत्ताहीन शिक्षकों के कारण शिक्षण पर पड़ता प्रभाव
9.	बालकेन्द्रित शिक्षा के अनुरूप शिक्षकों की तैयारी का प्रश्न
10.	समावेशी शिक्षा के लिए शिक्षकों की तैयारी
11.	विद्यालय में शिक्षकों के गैरहाजिरी का मुद्दा
12.	
13.	

उपरोक्त मुद्दों के प्रति हम अक्सर बिना किसी ऐतिहासिक या नीतिगत विमर्श के एक सतही सी धारणा प्रस्तुत करते हैं। अतः आवश्यक है कि उस सतही धारणा से मुक्त होकर व्यापक नजरिए से उन मुद्दों को देखा जाए। आज शिक्षक की जो स्थिति है वह अचानक से उत्पन्न नहीं हुई है बल्कि उसके लिए कई दशकों की शैक्षिक नीतियां एवं राजनैतिक दशाएं जिम्मेवार हैं। इस खण्ड में हम शिक्षक से संबंधित कुछ प्रमुख मुद्दों के पीछे के कारणों को समझने की कोशिश करेंगे। आप अपने विद्यालय में शिक्षकों की स्थिति से संबंधित सूचनाओं को भी ध्यान में रखें तथा आगे किए जानेवाले विश्लेषण में उन्हें यथासम्भव शामिल करें।

सबसे पहले, आपके अपने प्रशिक्षण से संबंधित कुछ प्रश्नों से शुरू करते हैं। क्या आपने कभी यह सोंचा है कि यह प्रशिक्षण आपको क्यों दिया जा रहा है? बिना प्रशिक्षण के आप विद्यालय में क्यों नहीं पढ़ा सकते? इस प्रकार की बाध्यता क्यों की गई है? इन सवालों के उत्तर के संकेत आप अपने डी.एल.एड. पाठ्यचर्या–पाठ्यक्रम पुस्तिका की प्रस्तावना 'प्राथमिक विद्यालय के लिए अध्यापक शिक्षा का संदर्भ' में खोज सकते हैं। उसके साथ–साथ आपको कुछ नवीनतम नीतिगत दस्तावेजों को भी पढ़ना होगा जो आज की शिक्षा के लिए किस प्रकार के शिक्षक चाहिए, इसकी चर्चा करते हैं।

यदि अब से लेकर देश की आजादी तक की अवधि को देखें तो शिक्षकों के विषय में लगभग सभी नीतिगत शैक्षिक दस्तावेजों ने कुछ न कुछ जरूर कहा है। उनमें से कुछ प्रमुख राष्ट्रीय व राज्यस्तरीय दस्तावेजों की सूची नीचे दी जा रही है जिनके कुछ अंशों को लेकर आप अपने विद्यालय में शिक्षक की जो स्थिति है, उसका विश्लेषण करेंगे। सूची में दस्तावेजों के साथ–साथ उनका प्रकाशन वर्ष दिया जा रहा तथा एक और कॉलम 'प्रमुख बिन्दु' का दिया जा रहा है जिसे खाली छोड़ा गया है। आगे जब इन दस्तावेजों की चर्चा की जाएगी जो उसके आधार पर आपको इस अंतिम कॉलम को स्वयं ही भरना होगा। आपसे यह भी अपेक्षा है कि दस्तावेजों की सूची को अद्यतन करते रहें :

शिक्षक के मुद्दों सें संबंधित प्रमुख नीतिगत दस्तावेज		
चयनित दस्तावेज	**प्रकाशन वर्ष**	**शिक्षक से संबंधित प्रमुख बिन्दु**
Justice Verma Commission Report	2012	
National Curriculum Framework for Teacher Education (NCFTE)	2010	
निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिनियम	2009	
समान स्कूल प्रणाली आयोग रिपोर्ट	2007	
राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा	2005	
राष्ट्रीय शिक्षा नीति की रिपोर्ट	1986	
राष्ट्रीय शिक्षक आयोग की रिपोर्ट	1985	
शिक्षा आयोग की रिपोर्ट	1964	
बिहार प्राथमिक शिक्षा कम्पेंडियम	नवीनतम	

यदि जस्टिस वर्मा आयोग की बात करें तो इसने पूरी अध्यापक–शिक्षा व्यवस्था को पुनर्संरचित करने की बात कही है। शिक्षकों के गुणवत्ता के दृष्टिकोण से शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों और शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सुधार करने का सुझाव दिया गया है। इसके कारण शिक्षक प्रशिक्षण व्यवस्था में कई परिवर्तनों के होने की संभावना है। आगे इसके कुछ अंशों को दिया जा रहा है जिसमें शिक्षक से संबंधित कुछ नीतिगत सिफारिशों को सुझाया गया है।

A summary of recommendations

1. Around 90% of pre-service teacher education institutions are in the non-government sector, and most of the State of the Eastern and North-Eastern Region of the country are facing acute shortage of institutional capacity of teacher preparation in relation to the demand. The commission recommends that the Government should increase its investment for establishing teacher education institutions and increase the institutional capacity of teacher preparation, especially in the deficit Sates.
2. Government may explore the possibility of instituting a transparent procedure of pre-entry testing of candidates to the pre-service teacher education programmes, keeping in view the variation in local conditions.

3. Teacher education should be a part of the higher education system. The duration of programme of teacher education needs to be enhanced, in keeping with the recommendations of the Education Commission (1966), the implementation of which is long overdue.
4. Current teacher education programmes may be re-designed keeping in view the recommendations in the National Curriculum Framework for Teacher Education (NCFTE, 2009) and other relevant material.
5. In keeping with the recommendations of the Education Commission (1966), every pre-service teacher education institution may have a dedicated school attached to it as a laboratory where student teachers get opportunities to experiment with new ideas and hone their capacity and skills to become reflective practitioners.
6. As a matter of policy, the first professional degree/diploma in teacher education should be offered only in face-to-face mode. Distance Learning programmes and the use of blended learning material may be developed and used for continuing professional development of school teachers and teacher educators.
7. The institutional capacity should be increased for preparation of teacher educators. There is a need to make the Masters in Education programme of 2-year duration with the provision to branch out for specialization in curriculum and pedagogic studies, foundation studies, management, policy and finance, and other areas of emerging concerns in education.

(Source: JVC Report, Vol.1, Chapter-7, p.95-98)

यदि जस्टिस वर्मा आयोग के सिफारिशों का विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि उन सबका गहरा असर आगामी शिक्षकों पर पड़ने वाला है। जैसे एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह होगा कि शिक्षक बिना नियमित प्रशिक्षण के विद्यालय में नहीं पढ़ा पायेंगे, अर्थात शिक्षक की पहली तैयारी के लिए नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम करना अनिवार्य होगा। दूरस्थ शिक्षा से सिर्फ सेवाकालीन संवर्द्धन कार्यक्रमों को ही किया जा सकेगा। आयोग ने शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम की अवधि को भी बढ़ाने पर जोर दिया है। इस आयोग की पृष्ठभूमि को बनाने में 'अध्यापक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2010' (एन.सी.एफ.टी.ई. 2010) और 'निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिनियम–2009' की विशेष भूमिका रही है। इन दो नीतिगत दस्तावेजों के आलोक में इस आयोग को अपनी सिफारिशे देनी थीं जो एक रिपोर्ट के रूप में 2012 में प्रकाशित हुई।

गतिविधि

जस्टिस वर्मा आयोग ने शिक्षक से संबंधित जिन मुद्दों पर अपनी सिफारिशें दी हैं, यदि उन सिफारिशों को लागू कर दिया जाए और उसके बाद का तैयार कोई शिक्षक आपके विद्यालय में नियुक्त होता है तो आपके और उसके प्रशिक्षण में क्या–क्या अंतर होंगे। विश्लेषण करें।

जस्टिस वर्मा आयोग की पृष्ठभूमि बनानेवाले रिपोर्ट 'अध्यापक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2010' (एन.सी.एफ.टी.ई. 2010) ने भी भावी शिक्षकों की तैयारी के लिए प्रशिक्षण पाठ्यचर्या से संबंधित कई महत्वपूर्ण सिफारिशें की। उनमें शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यचर्या के पूर्ववर्ती स्वरूप को बदलने की बात कही गयी। साथ ही प्रशिक्षण के तरीके में नवाचारी परिवर्तन और अवधि में भी वृद्धि की अनुशंसा की

गई। आगे इस रिपोर्ट से कुछ अंशों को दिया जा रहा है जो शिक्षक की स्थिति और उससे अपेक्षाओं के बारे में है। आप नीचे दिए गए अंश को पढ़े तथा उसमें से महत्वपूर्ण बातों को रेखांकित करें :

Vision of Teacher and Teacher Education

As we engage in the act of envisioning the role of the teacher and the shape of teacher education unfolding in the coming years, it would do us well to take note of the movement of ideas, globally, that have led to current thinking on teacher education. While the search for a philosophy of teacher education that satisfies the needs of our times continues, we seem to be converging on certain broad principles that should inform the enterprise. First, our thinking on teacher education is *integrative* and *eclectic*. It is free from the hold of 'schools' of philosophy and psychology. We also do not think of teacher education as a prescriptive endeavour; we want it to be open and flexible. Our emphasis is on *changing contexts* and our aim is to empower the teacher to relate himself/herself to them. Second, modern teacher education functions under a global canvas created by the concepts of 'learning society', 'learning to learn' and 'inclusive education'. The concern is to make teacher education *liberal*, *humanistic* and responsive to the demands of *inclusive education*. The emphasis in teaching is not on didactic communication but on *non-didactic and dialogical explorations*. Third, modern pedagogy derives its inspiration more from *sociological and anthropological insights* on education. There is increasing recognition of the worth and potential of *social context* as a source for rejuvenating teaching and learning. *Multi-cultural education* and *teaching for diversity* are the needs of contemporary times. Fourth, we acknowledge the existence of a *diversity of learning spaces and curriculum sites* (farm, workplace, home, community and media), apart from the classroom. We also appreciate the diversity of learning styles that children exhibit and learning contexts in which teachers have to function – oversized classrooms, language, ethnic and social diversities, children suffering disadvantages of different kinds. Lastly, we have realized the tentative and fluid nature of the so-called knowledge-base of teacher education. This makes *reflective practice* the central aim of teacher education. Pedagogical knowledge has to constantly undergo adaptation to meet the needs of diverse contexts through critical reflection by the teacher on his/her practices. Teacher education needs to build capacities in the teacher to construct knowledge, to deal with different contexts and to develop the abilities to discern and judge in moments of uncertainty and fluidity, characteristic of teaching-learning environments.

Against this backdrop and keeping in view the vision of teacher education as articulated above, the following set of concluding statements relating to a teacher's role, and the philosophy, purpose and practice of teacher education can be made:

- Teachers need to be prepared to care for children, enjoy to be with them, seek knowledge, own responsibility towards society and work to build a better world, develop sensitivity to the problems of the learners, commitment to justice and zeal for social reconstruction.
- Teachers need to view learners as active participants in their own learning and not as mere recipients of knowledge; need to encourage their capacity to construct knowledge; ensure

that learning shifts away from rote methods. Learning is to be viewed as a search for meaning out of personal experiences and knowledge generation as a continuously evolving process of reflective learning.

- Teacher education must engage with theory along with field experiences to help trainees to view knowledge not as external to the learner but as something that is actively constructed during learning. Teacher education should integrate academic knowledge and professional learning into a meaningful whole.
- Teachers need to be trained in organizing learner-centred, activitybased, participatory learning experiences – play, projects, discussion, dialogue, observation, visits, integrating academic learning with productive work.
- Teacher education should engage teachers with the curriculum, syllabi and textbooks to critically examine them rather than taking them as 'given' and accepted without question.
- Teacher education should provide opportunity to student-teachers for reflection and independent study without packing the training schedule with teacher-directed activities alone.
- The programme should engage teachers with children in real contexts rather than teach them about children through theories alone. It should help them understand the psycho-social attributes and needs of learners, their special abilities and characteristics, their preferred mode of cognition, motivation and learning resulting from home and community socialization.
- The programme should help teachers or potential teachers to develop social sensitivity and consciousness and finer human sensibilities.
- Teacher education programmes need to broaden the curriculum (both school and teacher education) to include different traditions of knowledge; educate teachers to connect school knowledge with community knowledge and life outside the school.
- Teacher education programmes need to help teachers appreciate the potential of hands-on experience as a pedagogic medium both inside and outside the classroom; and work as integral to the process of education.
- Teachers need to re-conceptualize citizenship education in terms of human rights and approaches of critical pedagogy; emphasize environment and its protection, living in harmony within oneself and with natural and social environment; promote peace, democratic way of life, constitutional values of equality, justice, liberty, fraternity and secularism, and caring values.
- In view of the many-sided objectives of teacher education the evaluation protocol needs to be comprehensive and provide due place for the evaluation of attitudes, values, dispositions, habits and hobbies, in addition to the conceptual and pedagogical aspects through appropriate quantitative as well as qualitative parameters.

(Source: NCFTE 2010 (Sec. 1.14), pp. 19-21)

एन.सी.एफ.टी.ई. 2010 दस्तावेज से दिए गए उपरोक्त बिन्दुओं के आलोक में आप अपने डी.एल.एड. कोर्स के उद्देश्यों की समीक्षा करें। क्या आप इन बिन्दुओं को अपने कोर्स की विषयवस्तु और संदर्भ में पाते है। इसका विश्लेषण करें।

आपका कोर्स एन.सी.एफ.टी.ई. 2010 के आने के बाद निर्मित हुआ है अतः आपके लिए प्रशिक्षण पाठ्यचर्या के निर्माण के दौरान इस दस्तावेज को आधार के रूप में लिया गया है। इस प्रकार आप देखें तो यह दस्तावेज आपके शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के जरिए आपको लगातार प्रभावित कर रहा है। आप जिस प्रकार से अपने शिक्षण वृत्ति को समझ रहें हैं उसमें इस नीतिगत दस्तावेज की भी भूमिका है।

गतिविधि

अपने डी.एल.एड. पाठ्यक्रम के उद्देश्यों और एन.सी.एफ.टी.ई. 2010 के उद्देश्यों का तुलनात्मक अध्ययन करें। यह भी देखें कि आपके पाठ्यक्रम में एन.सी.एफ.टी.ई. 2010 के उद्देश्यों का जिक्र कहां प्रत्यक्ष रूप से है।

आपसे शुरूआत में एक प्रश्न किया गया था कि आखिर आपको प्रशिक्षण लेने की अनिवार्यता क्यों है? हालाकि सभी शिक्षकों को पूर्णतः प्रशिक्षित होने की बात लगभग सभी शिक्षा नीतियों में मिलती है, पर यदि इसकी अनिवार्यता होने की बात करें तो 2009 में आए 'निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिनियम' के प्रावधानों की अहम भूमिका होगी। साथ ही, शिक्षकों से संबंधित कई और प्रावधानों को इसमें दर्ज किया गया है जो शिक्षक के कार्य, उसकी प्रशिक्षण, आदि को अवश्य प्रभावित करेंगे। आइए इस दस्तावेज के शिक्षक से संबंधित प्रमुख अंशों को पढ़ते है।

भाग 6–अध्यापक

17. न्यूनतम अर्हताएं– (1) केन्द्रीय सरकार नियत तारीख के एक मास के भीतर अध्यापक के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र होने वाले व्यक्ति के लिए न्यूनतम अर्हताएं अधिकथित करने हेतु एक शैक्षणिक प्राधिकारी को अधिसूचित करेगी।

(2) उपनियम (1) के अधीन अधिसूचित शैक्षणिक प्राधिकारी ऐसी अधिसूचना के तीन मास के भीतर किसी प्राथमिक विद्यालय में अध्यापक के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र होने वाले व्यक्ति के लिए न्यूनतम अर्हताएं अधिकथित करेगा।

(3) उपनियम (1) में निर्दिष्ट शैक्षणिक प्राधिकारी द्वारा अधिकथित न्यनतम अर्हताएं धारा 2 के खंड (ढ) में निर्दिष्ट प्रत्येक विद्यालय के लिए लागू होगी।

---

18. न्यूनतम अर्हताओं का शिथिलीकरण– (1) राज्य सरकार और संघ राज्य क्षेत्र इस अधिनियम के प्रारंभ से छह मास के भीतर धारा 2 के खंड (ढ) में निर्दिष्ट सभी विद्यालयों के लिए अनुसूची में मानदंडों के अनुसार अध्यापकों की आवश्यकता का प्राक्कलन करेंगे।

(2) जहां किसी राज्य सरकार या संघ राज्यक्षेत्र के पास अध्यापक शिक्षण में पाठ्यक्रम या प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए पर्याप्त संस्थाएं नहीं हैं या नियम 17 के उपनियम (2) में यथाअधिसूचित न्यूनतम अर्हताएं रखने वाले व्यक्ति उपनियम (1) के अधीन प्राक्कलित अध्यापकों की आवश्यकता के अुनपात में पर्याप्त संख्या में उपलब्ध नहीं हैं, वहां राज्य सरकार या संघ राज्यक्षेत्र इस अधिनियम के प्रारंभ के एक वर्ष के भीतर केंद्रीय सरकार से विहित न्यूनतम अर्हताओं को शिथिल करने के लिए अनुरोध करेगा।

(3) केन्द्रीय सरकार उपनियम (2) में र्निदिष्ट अनुरोध प्राप्त होने पर राज्य सरकार या संघ राज्यक्षेत्र के अनुरोध की परीक्षा करेगी और अधिसूचना द्वारा, न्यूनतम अर्हताओं को शिथिल कर सकेगी।

(4) उपनियम (3) में र्निदिष्ट अधिसूचना में शिथिलीकरण की प्रकृति और तीन वर्ष से अनधिक की समयावधि किन्तु जो अधिनियम के प्रारंभ से पांच वर्ष के परे नहीं होगी, विनिर्दिष्ट की जाएगी, जिसके भीतर शिथिल की गई शर्तों के अधीन नियुक्त किए गए अध्यापक धारा 23 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचित शैक्षणिक प्राधिकारी द्वारा विर्निर्दिष्ट न्यूनतम अर्हताओं को अर्जित करेंगे।

(5) इस अधिनियम के प्रारंभ से छह माह के पश्चात् किसी विद्यालय के लिए अध्यापक की कोई नियुक्ति ऐसे किसी व्यक्ति के बाबत जिसके पास नियम 17 के उपनियम (2) में अधिसूचित न्यूनतम अर्हताएं नहीं हैं, उपनियम (3) में निर्दिष्ट शिथिलीकरण की अधिसूचना के बिना नहीं की जायेगी।

(6) अधिनियम के प्रारंभ के छह मास के भीतर अध्यापक के रूप में नियुक्त किसी व्यक्ति को कम से कम उच्च्तर माध्यमिक विद्यालय प्रमाणपत्र या उसके समतुल्य से अन्यून शैक्षणिक अर्हता धारण करनी चाहिए।

19. न्यूनतम अर्हताओं को अर्जित किया जाना– (1) राज्य सरकार और संघ राज्यक्षेत्र यह सुनिश्चित करने के लिए कि इस अधिनियम के प्रारंभ के समय, उपखंड (i) में निर्दिष्ट विद्यालयों में सभी अध्यापकों और धारा 2 के खंड (ढ) के उपखंड (iii) के अधीन केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या संघ राज्यक्षेत्र या स्थानीय प्राधिकारी के स्वामित्वाधीन और उनके द्वारा प्रबंधित विद्यालयों में सभी अध्यापकों द्वारा जिनके पास धारा 17 की उपधारा (2) में अधिकथित न्यूनतम अर्हताएं नहीं है, अधिनियम के प्रारंभ से पांच वर्ष की अवधि के भीतर ऐसी न्यूनतम अर्हताएं अर्जित करने के लिए पर्याप्त अध्यापक शिक्षण सुविधाएं उपलब्ध कराएंगे।

(2) धारा 2 के खंड (ढ) के उपखंड (ii) और (iv) में र्निर्दिष्ट विद्यालय का धारा 2 के खंड (ढ) के उपखंड (ii) में निर्दिष्ट विद्यालय, जो केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या संघ राज्यक्षेत्र या स्थानीय प्राधिकारी के स्वामित्वाधीन नहीं है और उनके द्वारा प्रबंधित नहीं है, मैं किसी ऐसे अध्यापक के लिए, जिनके पास अधिनियम प्रारंभ के समय धारा 17 की उपधारा (2) में अधिकथित न्यूनतम अर्हताएं नहीं है, ऐसे विद्यालय का प्रबंधन अधिनियम के प्रारंभ से पांच वर्ष की अवधि के भीतर ऐसी न्यूनतम अर्हताएं अर्जित करने में समर्थ बनाने के लिए पर्याप्त अध्यापक शिक्षण सुविधाएं उपलब्ध कराएंगे।

20. अध्यापकों के वेतन और भत्ते तथा सेवा की शर्तें– (1) यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या संघ राज्यक्षेत्र या स्थानीय प्राधिकारी अध्यापकों का वृतिक और स्थायी संवर्ग सृजित करने के क्रम में उनके स्वामित्वाधीन और उनके द्वारा प्रबंधित विद्यालयों के अध्यापकों की सेवा के निबंधन और शर्ते तथा वेतन और भत्ते अधिसूचित करेगा।

(2) विशिष्टया और उपनियम (1) पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना सेवा के निबंधनों और शर्तों में निम्नलिखित को ध्यान में रखा जाएगा, अर्थात्:–

(क) अध्यापकों की विद्यालय प्रबंध समिति को जबावदेही

(ख) शैक्षणिक वृत्ति में अध्यापकों के दीर्घावधि तक बने रहने के समर्थकारी उपबंध।

(3) सभी अध्यापकों के वेतनमान और भत्ते, चिकित्सीय सुविधाएं, पेंशन, उपदान, भविष्य निधि और अन्य विहित फायदे, वैसी ही अर्हता, कार्य और अनुभव के लिए बराबर होंगे।

गतिविधि

उपरोक्त विवरण में से ऐसे बिन्दुओं को निकालें जिनका प्रभाव आप शिक्षकों पर देखते हैं और ऐसे भी बिन्दुओं को चिन्हित करें जो बिहार के शिक्षकों के संदर्भ में पूर्णरूप से लागू नहीं हैं।

21. अध्यापकों द्वारा अनुपालन किए जाने वाले कर्तव्य– (1) अध्यापक एक फाइल रखेंगे जिसमें प्रत्येक बच्चे के लिए शिष्य संचयी अभिलेख होगा जो प्राथमिक शिक्षा के पूरा होने के लिए प्रमाणपत्र देने हेतु आधार होगा।

(2) अध्यापक, 24 की उपधारा (1) के खंड (क) से खंड (ड) तक में विर्निर्दिष्ट कृत्यों के अतिरिक्त निम्नलिखित कर्तव्यों का अनुपालन करेगाः

(क) प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लेना

(ख) पाठ्यचर्या निर्माण और पाठ्यक्रम विकास, प्रशिक्षण माड्यूल तथा पाठ्य पुस्तक विकास में भाग लेना।

22. शिष्य–अध्यापक अनुपात बनाए रखना– (1) किसी विद्यालय में अध्यापकों की स्वीकृत संख्या, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार, समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी द्वारा नियत तारीख के तीन मास की अवधि के भीतर अधिसूचित की जायेगीः

परंतु यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार, समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी द्वारा ऐसी अधिसूचना के तीन माव के भीतर उपनियम (1) में निर्दिष्ट अधिसूचना से पूर्व स्वीकृत संख्या से अधिक संख्या वाले विद्यालयों के अध्यापकों की पुनः तैनाती की जायेगी। (2) यदि केन्द्रीय सरकार, समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी का कोई व्यक्ति धारा 25 की उपधारा (2) का उल्लंघन करता है तो वह व्यक्तिगत रूप से अनुशासनिक कार्रवाई के लिए दायी होगा/होगी।

(स्रोत : शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009, भारत सरकार)

शिक्षा के अधिकार अधिनियम के उपरोक्त प्रावधानों को पढ़ने से आपको क्या लगता है। इससे शिक्षक की स्थिति को मजबूती मिलनी चाहिए या उसकी स्थिति और कमजोर होगी। इस अधिनियम के विश्लेषण करने पर दोनो प्रकार के निर्ष्कष निकाले जा सकते हैं। अधिनियम शिक्षक की अहर्ता से संबंधित शर्तें, अनुपालन किए जानेवाले कर्तव्यों, आदि की पर जोर देता है, जिससे शिक्षकों की कार्यसंस्कृति में कुछ साकारात्मक बदलावों की अपेक्षा की जा सकती है। लेकिन, शिक्षक के वेतन संबंधी प्रावधानों पर अधिनियम अस्पष्ट है। आप उपरोक्त अंश में उल्लिखित अन्य प्रावधानों को भी पढ़े और विश्लेषण करें कि उनमें किनती स्पष्टता है। हालाकि स्पष्टता या अस्पष्टता के बावजुद, इस अधिनियम का आज के शिक्षकों के कार्यों पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। इस विषय में आप अपने विद्यालय के संदर्भ को देख सकते हैं।

शिक्षा के अधिकार अधिनियम–2009 से थोड़ा पीछे चले तो बिहार के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण आयोग की अनुशंसाओं की चर्चा करनी होगी जिसे 'समान विद्यालय प्रणाली आयोग–2007' कहा जाता है। इस आयोग का गठन बिहार सरकार के द्वारा किया गया था ताकि बिहार की शिक्षा व्यवस्था में समान स्कूल प्रणाली को लागू करने की संभावनाओं का अध्ययन किया जा सके।

इस आयोग ने बिहार के शिक्षकों की स्थिति का भी अध्ययन किया और कई अनुशंसाओं को प्रस्तुत किया। हालाकि उन अनुशंसाओं पर पूरी तरह से अमल नहीं हो पाया है, फिर भी बिहार में शिक्षक की मौजूदा स्थिति को समझने उससे मदद मिलेगी। आगे उस रिपोर्ट के कुछ अंशों की चर्चा की जा रही है, जो शिक्षक से संबंधित हैं। उनका अध्ययन करने के साथ–साथ अपने विद्यालय में शिक्षकों की स्थिति का विचार भी करें।

इस रिपोर्ट के अनुसार, इस बात पर किसी को संदेह नहीं होगा कि भारत, खास कर बिहार में शिक्षक जिन परिस्थितियों में काम करते हैं, उसमें बहुत कुछ वांछित करने की गुंजाइश है। शिक्षकों के उंचे वेतनमान और नौकरी की सुरक्षा की बहुप्रचारित बातें तथ्यपरक छानबीन के सामने कहीं नहीं ठहरती हैं। शिक्षकों के बड़े हिस्से, खास कर पास–शिक्षकों तथा तदर्थ शिक्षकों को बहुत ही कम वेतन मिलता है। साथ ही, वे शायद ही किसी सामाजिक सुरक्षा के अंतर्गत आते हैं। इसके अलावा, भुगतान में विलंब तथा भुगतान पर रोक की घटनाएं उनके साथ अक्सर घटती रहती है। जिसकी परिणति उनकी जर्बदस्त परेशानी के रूप में होती है। फिर शिक्षकों का एक जगह से दूसरी जगह धड़ल्ले से तबादला होता रहता है। ऐसा होता तो साफ तौर से कुछ नियमों के आधार पर है लेकिन इसका वास्तविक कारण यह है कि बिहार में हाल के वर्षों में सरकारी कर्मचारियों का तबादला लाभकारी उद्योग का रूप ले चुका है। शुक्र है कि हाल में इस प्रचलन को संशोधित किया गया है। इसके अलावा, विद्यालयों का प्रबंधन बहुत ही बुरा है जो गंभीर शिक्षण को बहुत ही कम प्रोत्साहित कर पाता है। अधिकांश विद्यालय जीर्ण–शीर्ण अवस्था में है और उनकी मरम्मत की जरूरत दशको से महसूस की जा रही है। उनमें पुस्कालय तो नाम को भी नहीं है और लगभग सभी में प्रयोगशाला की कोई सुविधा नहीं है। बिहार में शिक्षकों की शिक्षा की तो बिल्कुल उपेक्षा की जाती है। 1990 के दशक के आरंभ से हाल–फिलहाल तक प्रशिक्षण को शिक्षकों की नियुक्ति के लिए वैध रूप से अनावश्यक घोषित कर दिया गया था। इस प्रक्रिया में राज्य में प्रशिक्षण की पूरी अधिसंरचना की घोर उपेक्षा हुई और इस कारण आज यह घिसट रही है। ऐसे माहौल में शिक्षकों के लिए नवाचार, प्रयोग या अपने नई अनुसंधान करने के वास्ते किसी प्रकार के प्रोत्साहन का कोई प्रश्न ही नहीं था, जबकि उनके विकास और पेशे की गरिमा, दोनों लिहाज से परमआवश्यक है। राज्य में शिक्षकों के कामकाज के मूल्यांकन तथा पर्यवेक्षण की प्रणाली ध्वस्त हो गई है। चूंकि समाज के प्रभावशाली तबकों, जिनमें वकील, डाक्टर, व्यवसायी, वरिष्ठ तथा मध्यमस्तरीय सरकारी सेवकों जैसे पेशवरों से लेकर राजनितिक तबका तक शामिल है, के माता–पिता सरकारी विद्यालयों में अपने बच्चों को नहीं भेजते। अतः इन विद्यालयों में क्या घटित हो रहा है, इसमें उनकी कोई रूचि नहीं होती। दूसरी ओर, देखने के बाद भी कि विद्यालय में सबकुछ गड़बड़ चल रहा है, इन विद्यालयों में अपने बच्चों को भेजने वाले गरीब तथा हाशिए पर खड़े माता–पिता के पास उतना प्रभाव–रसूख नहीं होता कि आवश्यक परिवर्तनों के लिए वे कोई हस्तक्षेप कर सकें। विद्यालय में शिक्षण की किमत पर गैर शिक्षाण कार्यों में शिक्षकों की तैनाती ने भी शिक्षकों के मनोबल पर विपरीत प्रभाव डाला है।

शिक्षक समुदाय को भी स्वीकार करना चाहिए कि इन हालात के लिए एक हद तक वे खुद भी जिम्मेवार हैं। निस्संदेह, उन्होंने अपने कर्त्तव्यों का पूरी ईमानदारी व लगन के साथ निर्वाह नहीं किया है। यह तथ्य कि समाज के दूसरे तबकों ने अपने अंतःकरण को गिरवी रख दिया है, उनके लिए भी ऐसा करने का बहाना नहीं हो सकता। लिहाजा शिक्षकों की स्थिति तथा विद्यालय में शिक्षण की स्थिति में सुधार के लिए जरूरी है कि दोनों पक्ष पहल करें। प्रथमतः, समाज को चाहिए कि वह शिक्षकों पर पूरी तरह विश्वास करना फिर शुरू करे और उनके काम के लिए सही माहौल पैदा करे। दूसरी तरफ, शिक्षक अपनी ओर से अपने शिष्यों, समाज और खुद अपने पेशे के प्रति पूर्ण रूप से उत्तरदायी हों। प्रोत्साहन की उम्मीद बांधते समय उन्हें इस बात के लिए भी तैयार रहना चाहिए कि खराब या न प्रदर्शन की स्थिति में दंड भुगतना पड़ सकता है। अपने पेशागत कार्यों के निपटारे में आजादी और लचीलेपन के वैधानिक अधिकार का दावा करते समय उन्हें अनुशासन के दायरे में रहने के लिए भी तैयार रहना चाहिए।

आयोग द्वारा अनुशंसित समान स्कूल प्रणाली को शिक्षकों के श्रेष्ठ प्रदर्शन के लिए अनुकूल माहौल बनाने का सुदीर्घ प्रयास करना चाहिए। समान स्कूल प्रणाली में शिक्षकों की स्थिति में सुधार कैसे होगा, यहां उसका संक्षिप्त विवरण देना अनावश्यक नहीं होगा।

पहला, यदि आयोग की अनुशंसाएं स्वीकार कर ली जाती हैं तो बिहार माध्यमिक स्तर तक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण और बालवर्ग से 8वीं कक्षा तक मुफ्त व अनिवार्य शिक्षा आरंभ करने वाला भारत का प्रथम राज्य होगा। इसके लिए अन्य चीजों के साथ–साथ शिक्षकों की भर्ती हेतु एक सघन अभियान चलाना होगा। जिन्होंने वर्षों से शिक्षण के महान पेशे से जुड़ने की तमन्ना दिल में पाल रखी है, यह उन लोगों के लिए अवसरों का पूर्वसूचक है। दूसरा, आयोग की अनुशंसा है कि विद्यालय में सभी तदर्थ, अनौपचारिक अथवा पारा–शिक्षकों के स्थान पर नियमित पूर्णकालिक शिक्षकों की बहाली होनी चाहिए। इससे शिक्षण के पेशे में प्रतिष्ठा, सुरक्षा और स्थायित्व आएगा। तीसरा, प्रारंभिक स्तर के शिक्षकों का पद स्थानांतरित नहीं होगा। यह भ्रष्टाचार सबसे जबर्दस्त स्रोत को, जो अभी हाल तक राज्य में व्याप्त है एवं शिक्षकों की बहुतेरी परेशानियों तथा हताशा का सबब बना हुआ है, एक झटके में उखाड़ फेंकेगा। यह शिक्षकों की अनेक कठिनाईयों को बहुत हद तक आसान कर देगा। शिक्षक अपने घरों में चैन से रह पाएंगे और विद्यालय जाने के लिए उन्हें बहुत थोड़ी दूरी तय करनी पड़ेगी। यह उन महिला शिक्षकों की समस्याओं को भी निदान करेगा जो अपने पतियों के पदस्थापन स्थल से कहीं दूर पदस्थापित हैं। वरिष्ठता क्रम के उंचे सोपान पर पहुंचने के बाद शिक्षकों को उनके विद्यालयों से स्थानांतरित किया जा सकेगा, लेकिन उसमें भी उसी जिले में उनके स्थानांतरण को बहुत अधिक प्राथमिकता दी जाएगी। इसके अलावा, पदोन्नति के कारण अपने पदस्थापन स्थल से स्थानांतरण के मामले में शिक्षकों को यह विकल्प चुनने की आजादी होगी कि वे पदोन्नति को नजरअंदाज कर उसी विद्यालय में बने रहेंगे।

समान स्कूल प्रणाली के मानकों में शिक्षकों के वेतन व भत्ता संबंधी मानक सबसे महत्वपूर्ण हैं। प्रथमतः शिक्षकों का वेतन व भत्ता उनकी शैक्षिक योग्यता एवं पेशागत दायित्व को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाना चाहिए। उन्हें इतना होना चाहिए कि इस पेशे के प्रति प्रतिभाओं को आकर्षित कर सकें और उनका ठहराव सुनिश्चित कर सकें। एक ऐसे देश में जहां अभी भी किसी व्यक्ति को उसके वेतन से आंका जाता है, शिक्षकों को दिया जाने वाला वेतन भत्ता उन पेशेवरों द्वारा अर्जित राशि के समतुल्य होना चाहिए जिनकी शैक्षिक योग्यताएं व प्रशिक्षण शिक्षकों के समकक्ष है। दूसरे, यह भी महत्वपूर्ण है कि वेतन भत्तों का समय पर भुगतान हो और किसी भी हालत में उन पर रोक न लगाई जाए।

बिहार में विद्यालय शिक्षकों के वेतन भत्तों का निर्धारण करते समय निम्नलिखित मानदंडों का अवश्य ही पालन करना चाहिएः

(क) मूल वेतन और भत्ता इतना तय करना चाहिए कि शिक्षक सम्मानपूर्वक जीवनयापन कर सकें।

(ख) वेतन ढांचा की संरचना इस तरह की होनी चाहिए कि वह मुद्रस्फीति के दबाव को समायोजित कर लें।

(ग) सेवा काल में सर्वस्वीकृत व समयबद्ध प्रोत्साहन राशि के रूप में वार्षि वेतन वृद्धि का प्रावधान होना चाहिए।

(घ) उच्चतर स्तर की ओर पेशेवर विकास और सेवा में पदोन्नति की संभावना भी होनी चहिए। इसके लिए एक शिक्षक के औसत 35–40 वर्षों के सेवाकाल में आरोही क्रम में! परिवीक्षा अवधि को छोड़कर, कम से कम तीन पदसोपानों का प्रावधान अपेक्षित होगा।

(स्रोत : समान स्कूल प्रणाली आयोग 2007)

इस आयोग में जिन मुद्दों पर ध्यान दिलाया गया है उनमें से कुछ मुद्दे आज भी अपनी यथास्थिति में कायम हैं। पर, आयोग द्वारा वर्णित कई मुद्दों के संदर्भ में शिक्षकों की स्थिति में परिवर्तन आया है, उदाहरण स्वरूप विद्यालयों की स्थिति में बहुत सुधार आया है, शिक्षकों के वेतन में भी तुलनात्मक दृष्टिकोण से थोड़ी बढ़ोतरी हुई है। आयोग ने शिक्षकों के प्रशिक्षण संबंधी तात्कालीन स्थिति की चर्चा की है और पारा–शिक्षकों की अस्तित्व को समाप्त करने की बात कही है। उस समय के पारा–शिक्षकों के प्रशिक्षणहीन व्यवस्था से आप अवश्य अवगत होंगे। शिक्षक के पेशेवर विकास से संबंधित कई और बिन्दुओं को आयोग ने सुझाया है। आपके विद्यालय में उपरोक्त बिन्दुओं में से किन–किन का अनुपालन हुआ है, विश्लेषण करें।

अब यदि 2007 से थोड़ा पीछे के काल में जाते हैं तो राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 ने शिक्षक की स्वायत्तता और व्यावसायिक स्वतंत्रता पर जोर देने की बात कही। इस दस्तावेज के कुछ अंशों को आगे दिया जा रहा है, जिसमें शिक्षके के कार्य संबंधी कुछ नीतियों को सुझाया गया है। आप अपने विद्यालय के संदर्भ में यह समीक्षा करें कि वहां पर आपकी स्वायत्तता और व्यावसायिक स्वतंत्रता की क्या स्थिति है।

4.8 शिक्षक की स्वायत्तता और व्यावसायिक स्वतंत्रता

शैक्षिक माहौल बनाने के लिए शिक्षकों की स्वायत्तता आवष्यक है ताकि वे बच्चों की विविध ज़रूरतों का ध्यान रख सकें। जितनी आज़ादी, इज्ज़त और लचीलापन शिक्षार्थी को चाहिए उतना ही शिक्षक को भी। फिलहाल तो प्रशासनिक ऊँच–नीच एवं नियंत्रण, परीक्षाएँ, पाठ्यचर्या सुधार का केंद्रीकृत नियोजन ये सभी शिक्षक और मुख्य शिक्षक की स्वायत्तता पर तमाम प्रतिबन्ध लगाते हैं। अगर कहीं पाठ्यचर्या में खुलेपन का अवसर मिलता भी है तब भी शिक्षक इतने आत्मविश्वासी नहीं हो पाते कि वे अपनी स्वायत्तता का ऐसे उपयोग कर लें कि प्रशासन भी अलग तरह से काम करने के कारण खफा न हो। इसीलिए यह ज़रूरी है कि उनको विकल्प चुनने में और स्वायत्तता को महसूस करने में समर्थन दिया जाए। जितनी कक्षा को एक

लोकतांत्रिक नम्य और स्वीकृति देने वाली संस्कृति को पोषण देने की ज़रूरत है, उतनी ही ज़रूरत स्कूल की संस्था और कार्यालयी संरचनाओं द्वारा ऐसी संस्कृति को बढ़ावा देने की है। शिक्षक न केवल आदेश और सूचना प्राप्त करें बल्कि ऊपर बैठे लोगों द्वारा उन निर्णयों को लेते समय शिक्षकों की आवाज़ भी सुनी जाए, जिनसे कक्षा का तात्कालिक जीवन और स्कूल की संस्कृति प्रभावित होते हैं।

शिक्षकों और प्रधानाध्यापकों के रिश्ते समानता और पारस्परिक सम्मान पर आधारित होने चाहिए और निर्णय बातचीत एवं चर्चा करके लिए जाने चाहिए। गतिविधियों के वार्षिक, मासिक और साप्ताहिक कैलेंडर में समीक्षा और योजना के लिए शिक्षकों के पारस्परिक संपर्क के लिए जगह होनी चाहिए। एक ऐसे वातावरण के विकास की ज़रूरत है जिसमें शिक्षकों में मिलजुल कर काम करने की भावना का विकास हो, साथ ही विवादों के निपटारे का भी कोई तरीका हो। अक्सर रेडियो और टी.वी. जैसी तकनीकों को शिक्षकों की कक्षा में पहुँचा दिया जाता है बिना उनसे पूछे कि उनकी ज़रूरत है भी कि नहीं और वे किसलिए उनका उपयोग करना चाहेंगे। एक बार उपकरण लग जाने पर उनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे उसका प्रयोग करें, इस बात पर उनका कोई नियंत्रण नहीं रहता कि उससे क्या प्रसारित होगा या उनकी अपनी शिक्षण योजनाओं से वह किस प्रकार जुड़ पाएगा।

(स्रोत : राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005, पृष्ठ संख्या 111–113)

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 में सूझाए गए उपरोक्त नीतियों एक आदर्श विद्यालय के आदर्श शिक्षक की कल्पना पर आधारित हैं। पर, इस नीति का इसके बाद आई शिक्षा के अधिकार अधिनियम–2009 के नीति से तुलना करें तो कई मामलों में आप विरोधाभास महसूस करेंगे। शिक्षक की स्वायत्तता और व्यावसायिक स्वतंत्रता के मुद्दे को उस दस्तावेज में विशेष महत्व नहीं दिया गया है।

विचार करें

आपके अनुसार, शिक्षक को कठोर नियमों के अंतर्गत रखने से अच्छी शिक्षा होगी या फिर उसे स्वायत्तता और स्वतंत्रता देने से। शिक्षकों से संबंधित बहुत सारे नियमों को लाने के पीछे क्या तर्क हो सकता है? क्या आज की शिक्षा व्यवस्था में शिक्षकों को स्वायत्तता देने की कोई संभावना है?

आज के संदर्भ में हम शिक्षक से संबंधित जिन मुद्दों की चर्चा कर रहे हैं, वे हमारी शिक्षा व्यवस्था में बहुत पहले से विद्यमान हैं। पिछली शताब्दी के नब्बे के दशक में आए शिक्षक आयोग की रिपोर्ट में शिक्षक से संबंधित कई ऐसी चुनौतियों का वर्णन किया गया है जो आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। आयोग ने शिक्षक की तात्कालीन स्थिति का भी चित्रण किया है। आगे उस रिपोर्ट के कुछ अंशों को दिया जा रहा है। आप इसे पढ़कर यह विश्लेषण करें कि शिक्षक से संबंधित विभिन्न आयामों पर आयोग ने किस प्रकार के अनुशंसाओं को प्रस्तुत किया है।

शिक्षकों की पूर्ति और भर्ती

6.01 किसी भी राष्ट्र में निश्चित अवधि के दौरान स्कूल शिक्षकों की मांग, सामान्यतः छात्रों की संख्या और छात्र–शिक्षक अनुपात के लिए स्वीकृत मानदण्डों, यथा कक्षा के औसत आकार से निर्धारित होती है। छात्रों की संख्या आंशिक रूप से जनसंख्या की जनांकीय विशेषताओं, शिक्षा की सामाजिक मांग, अनिवार्य स्कूल शिक्षा तथा स्कूल छोड़ने के आयु, प्रत्येक दिन छात्रों के शिक्षण के घंटे, पाठ्यचर्या में वैकल्पिक विषयों की संख्या और शिक्षकों के स्कूल दायित्वों पर निर्भर करता है। वर्तमान अध्ययन में हमें देश के विभिन्न भागों में विद्यमान शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में वृद्धि और कार्य प्रणाली की पृष्ठभूमि में, प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षकों की मांग और पूर्ति के संबंध में दृष्टिपात करना था। हमारे अध्ययन के निष्कर्षों को मोटे तौर पर छह सरल प्रस्तावों के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

प्रस्ताव–I

6.02 प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं की समग्र प्रशिक्षण क्षमता पर्याप्त है और इनमें अतिरिक्त शिक्षकों की आवश्यकता को और साथ ही साथ प्रारंभिक शिक्षा के पश्चात् की शिक्षा की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के की सन्निहित पर्याप्त नम्यता है।

प्रस्ताव–II

6.03 लेकिन उपर्युक्त कथन से इस तथ्य को नहीं भूल जाना चाहिए कि शिक्षक प्रशिक्षण सुविधाओं की संख्या और स्तर में पर्याप्त क्षेत्रीय भिन्नताएं है।

प्रस्ताव–III

6.04 दिल्ली जैसे कुछेक विशिष्ट महानगरों की स्थिति को छोड़कर भौतिकी, रसायन शास्त्र और गणित के शिक्षकों (विशेष रूप से महिलाओं) की अत्यधिक कमी है। कभी–कभी भूगोल और अंग्रेजी शिक्षकों जैसे अन्य वर्गों के शिक्षकों की क्षेत्रीय कमी महसूस की जाती है। यह और शिक्षकों की, विशेष रूप से महिलाओं की

ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने की अनिच्छा तथा अर्हता प्राप्त शिक्षकों के बहुत से वर्गों के बीच भौगोलिक गतिशीलता के अभाव के कारण राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसी विरोधाभाषी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें एक ही समय पर कहीं शिक्षकों का आधिपत्य होता है तो कहीं कमी होती है।

प्रस्ताव–IV

6.05 शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की अकादमिक पृष्ठभूमि सामान्यतः साधारण होती है।

प्रस्ताव–V

6.06 प्रशिक्षण संस्थाओं में ज्यादातर प्रशिक्षण अप्रभावी है और इसमें व्यापक राष्ट्रीय और शैक्षिक लक्ष्यों के दृष्टिकोण के अनुरूप वास्तविक कक्षा स्थिति की कम जानकारी और समझ परिलक्षित होती है।

प्रस्ताव–VI

6.07 जो लोग औपचारिक स्कूली शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते उनके लिए विकल्प के रूप में अनौपचारिक शिक्षा पर बल देने में जो अभिरूचि दिखाई जाती है, वह शिक्षक प्रशिक्षण के लिए एक नई चुनौती और अवसर प्रदान करती है। शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए अनौपचारिक शिक्षा राष्ट्रीय प्रशिक्षण पद्धति में सुधार करने के लिए प्रथम प्रमुख कदम साबित हो सकता है। यह कम–से–कम वर्तमान प्रशिक्षण पाठ्यचर्या में से अनावश्यक बातों की छटाईं करने में सहायक हो सकता है।

....

एक समान वेतनमान

5.22 वास्तव में, शिक्षकों के एक समान वेतनमानों की मांग धीरे–धीरे जोर पकड़ती जा रही है। आयोग द्वारा किए गए सर्वेक्षण में शिक्षक संगठनों के 92.2 प्रतिशत संगठनों ने प्रारंभिक एवं माध्यमिक स्कूल शिक्षकों के लिए एक समान वेतनमान के पक्ष में अपना मत व्यक्त किया है। हालांकि इस समर्थन करने वाले प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षकों का अनुपात बहुत अधिक नहीं था। फिर भी, उनकी संख्या पर्याप्त थीः 52.1 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षक और 63.5 प्रतिशत माध्यमिक शिक्षक एक समान वेतनमान के पक्ष में थे। 1962 में भावात्मक एकता समिति ने इस बात पर बल दिया था कि '' केन्द्रीय सरकार के लिए यह अत्यावश्यक है कि वह शिक्षकों की परिलब्धियों में सुधार करने के लिए राज्य सरकारों की सहायता पुरी तत्परता से करे और राष्ट्रीय वेतनमान बनाने पर जोर दें। हम पूर्णतया सहमत है कि देश के स्कूलों के लिए उपर्युक्त शिक्षकों की भर्ती सुनिश्चित करने के लिए उपरोक्त कदम उठाने के सिवा और कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ता। शैक्षिक संघों का अखिल भारतीय महासंघ भी इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है। एक समान कार्य निष्पादित करते हुए शिक्षकों के असमान वेतनमानों से उत्पन्न कठिनाईयों को स्वीकार करते हुए और राज्यों की आर्थिक एवं वित्तीय स्थितियों में अत्याधिक भिन्नताओं का ध्यान रखते हुए, महासंघ इस बात पर बल दे रहा है कि ''न्यूनतम राष्ट्रीय वेतनमानों का निर्माण एक तुरंत आवश्यकता है।''

शिक्षक की छवि को संवारना

5.44 जब कि उपर्युक्त उन्नत मौद्रिक पुरस्कार, पदोन्नति के अवसर, कार्य करने की परिस्थितियां और अन्य कल्याणकारी हितलाभों की स्वीकृति से भविष्य में शिक्षकों के रूप में आने वालों के लिए यह शिक्षण व्यवस्था और अधिक आकषर्ण बनेगा, वहीं दूसरी ओर कुछेक सरल पद्धतियों को प्रारंभ करने से शिक्षक की सामाजिक छवि में सुधार होगा। इस संबंध में कुछेक सुझाव इस प्रकार हैः

- शिक्षकों को महत्वपूर्ण जन समारोहों में आमंत्रित करना चाहिए और ऐसे अवसरों पर उन्हें उच्च अग्रताक्रम प्रदान किया जाना चाहिए!

- शैक्षिक आयोजना और प्रशासन के लिए नीति संबंधी निर्णयों में शिक्षकों और शिक्षक संगठनों को सम्मिलित करना चाहिए।
- स्थानीय और समुदाय विकास कार्यक्रमों की आयोजना और कार्यान्वयन में शिक्षकों और शिक्षक संगठनों को सम्मिलित करना चाहिए जिसके लिए वर्षों से सतत रूप से ठीक ही दबाव डाल रहे हैं।

....

विशेष विषय अध्यापक

5.32 हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया गया था कि बहुत से स्थानों में, कई वर्गों के शिक्षक, यथा– शारीरिक शिक्षा, भारतीय भाषाएं, संगीत, चित्रकला और इसी प्रकार के अन्य विषय समान स्तर पर शिक्षण कार्य करने वाले अन्य शिक्षकों की अपेक्षा पयाप्त रूप से कम वेतन पाते हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण बात है क्योंकि बच्चों के विकास के लिए सभी विषयों का समान महत्व एवं मूल्य होता है। इस विसंगति का चाहे जो स्रोत हो, हमारा दृढ़ विचार है कि उसी स्तर पर शिक्षण कार्य करने वाले शिक्षकों में वेतन या कार्य की अन्य दशाओं के संबंध में किसी प्रकार भेद–भाव को न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। हमने सुझाव दिया था कि अन्यायपूर्ण भेदभावों को तुरंत रोका जाना चाहिए।

....

वेतनमानों की आवधिक समीक्षा

5.33 उत्तरोत्तर बढ़ते निर्वाह खर्च सूचकांक की दृष्टि से हम यह महसूस करते हैं कि शिक्षकों के वेतन और वेतनमानों की समय–समय पर समीक्षा करने की आवश्यकता है ताकि उन्हें अत्यधिक स्फीति या अपरदन के प्रभावों से बचाया जा सके। जबकि यहां यह सुझाव देना संभव नहीं है कि निर्वाह खर्च सूचकांक के साथ वेतन के समायोजन का फार्मूला क्या हो, फिर भी यह कहा जा सकता है कि वेतन का अभिभावी आर्थिक वास्तविकता के अनुरूप बनाने के लिए प्रत्येक पांच वर्ष बाद वेतन की समीक्षा की जानी चाहिए।

6.51 महिला शिक्षकों की संख्या में इस अभूतपूर्व वृद्धि के बावजूद उनकी आपूर्ति मांग के अनुरूप होती है। अभी भी खास तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में महिला शिक्षकों की जरूरत है। सरकार के अभी हाल के इस निर्णय से कि उच्चतर माध्यमिक स्तर तक लड़कियों को मुफ्त शिक्षा दी जाए, यह जरूरत और भी बढ़ गई है।

6.52 महिलाएं अच्छी शिक्षक बन सकती है और वास्तव में खास तौर पर प्राथमिक ग्रेडों में उन्हें जहां वे बच्चों के साथ अच्छी तरह घुल मिल जाती है, पुरूषों की अपेक्षा तरजीह दी जाती है। संयुक्त स्कूलों की संख्या भी बढ़ रही है और उन में भी कुछ महिला शिक्षकों की जरूरत होती है। प्रागविद्यालय स्तर पर आंगनबाड़ियों और बालवाड़ियों में शिशु गृहों की देखभाल के लिए महिलाएं अत्यधिक उपयुक्त हैं। चूंकि शिक्षा के सार्वजनिकरण के साथ साथ शिक्षा की व्यवस्था में वृद्धि होगी अतः महिला शिक्षकों की अत्यंत आवश्यकता महसूस की जाएगी।

(स्रोत : शिक्षक आयोग 1983–85)

जैसा कि आप, उपरोक्त कई नीतियों की चर्चाओं में पाते हैं कि अप्रशिक्षित शिक्षकों की भारी संख्या लगातार बनी रही, जो गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा थी। स्वतंत्रता के बाद से अब तक की स्थिति में बिहार राज्य में कभी भी वैसा अवसर नहीं आया है, जब यह कहा जा सके कि यहां के विद्यालयों में सौ प्रतिशत प्रशिक्षित शिक्षक ही कार्यरत हैं। भविष्य में यह होना अनिवार्य है क्योंकि इसपर शिक्षा अधिकार अधिनियम–2009 का नीतिगत दबाव है।

आगे सारणी के माध्यम से, 1950 से लेकर 1977 तक बिहार में प्रशिक्षित शिक्षकों ओर शिक्षिकाओं की स्थिति को दर्शाया गया, इसका आधार पर आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि बिहार में समय के साथ

अप्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या घटती गयी है। रोचक तथ्य यह भी है कि प्रशिक्षित शिक्षकों की तुलना में प्रशिक्षित शिक्षिकाओं का प्रतिशत हरदम कम रहा है। ऐसा क्यों रहा है, और क्या आज यह स्थिति बदली है, इसपर विचार करें।

प्राथमिक एवं विद्यालयों में प्रशिक्षित पुरुष एवं स्त्री शिक्षकों का प्रतिशत (1951–1977)

प्राथमिक एवं विद्यालयों में प्रशिक्षित शिक्षकों का प्रतिशत				मध्य विद्यालय में प्रशिक्षित शिक्षकों का प्रतिशत		
वर्ष	पुरुष	स्त्री	योग	पुरुष	स्त्री	योग
1	2	3	4	5	6	7
1950–51	59.50	32.37	58.11	44.51	61.19	45.69
1955–56	64.43	32.35	62.19	58.50	70.89	50.06
1960–61	73.61	45.32	71.18	63.43	65.81	63.62
1965–66	80.14	56.28	77.66	77.24	68.86	76.33
1968–69	83.50	60.10	81.09	80.70	70.30	79.40
1970–71	88.00	72.50	86.30	87.60	78.30	86.50
1971–72	89.80	77.70	88.30	89.60	81.70	88.70
1972–73	92.33	83.11	91.23	91.51	84.18	90.61
1973–74	93.22	85.50	92.27	92.63	87.46	91.99
1974–75	93.82	88.51	93.15	91.66	88.14	91.31
1975–76	94.14	87.89	93.32	93.66	89.43	93.33
1976–77	93.43	87.29	92.53	82.31	93.05	

स्रोत : बिहार में शिक्षा की प्रगति 1947–78, बिहार सरकार, शिक्षा विभाग, पटना

गतिविधि

यह ज्ञातव्य है कि 1993 के बाद बिहार राज्य में सेवापूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रमों को बंद कर दिया गया तथा आगे के काल में अप्रशिक्षित शिक्षक व शिक्षिकाओं को नियमित एवं अनुबंध पर रखने का चलन चला।

आप उस दौरान के आंकड़ों का पता करें और उसका उपरोक्त सारणी से तुलनात्मक विश्लेषण करें।

कालानुक्रम में शिक्षक आयोग–1985 से लगभग बीस साल पीछे चलें तो शिक्षा आयोग–1964 के रिपोर्ट ने भी शिक्षकों की मौजुदा स्थिति और उसमें सुधार के नीतिगत प्रयासों की व्याख्या मिलती है। स्वतंत्रता बाद का यह पहला आयोग था जिसने सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था के साथ–साथ प्राथमिक शिक्षा का अध्ययन किया

तथा प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के बारे में भी कई अनुशंसाएं की। आगे इस रिपोर्ट के कुछ अंशों को दिया जा रहा है :

अध्यापक की प्रतिष्ठा

3.01 इनमें कोई संदेह नहीं कि शिक्षा के स्तर और राष्ट्रीय विकास में शिक्षा योगदान को जितनी भी बातें प्रभावित करती हैं उनमें शिक्षकों के गुण, क्षमता और चरित्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । अध्यापन व्यवसाय में पर्याप्त संख्या में योग्य अध्यापकों की नियुक्ति, उनके लिए सर्वोत्तम व्यावसायिक साधनों की उपलब्धि और पूर्ण प्रभावी ढंग से काम कर सकने के लिए संतोषप्रद स्थितियां पैदा करने से अधिक बात दूसरी नहीं है। आगामी तीन योजनाओं में शिक्षा के अनुमानित द्रुत विकास और विशेष रूप से शिक्षा के स्तर की अधिक –से –अधिक ऊंचा उठाने तथा निरन्तर ऊंचा उठाए जाने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि आज इन समस्याओं ने अभूतपूर्व महत्व और वरीयता प्राप्त कर ली है।

....

3.06 आयोग ने सभी राज्यों और केन्द्र प्रशासित प्रदेशों के अध्यापकों को मिलने वाले पारिश्रमिक का अध्ययन किया है, जिससे दो प्रमुख दोषों का पता चला हैः

(1)अंतर्राज्जीय भिन्नता–अध्यापकों को मिलने वाले पारिश्रमिक में, विशेषकर स्कूल आधार पर, उल्लेखनीय अन्तर है।

(2)राज्जीय भिन्नता–एक ही राज्य में मिलने वाले पारिश्रमिक भिन्न हैं। विश्वविद्यालय आधार पर एक संकाय का वेतन दूसरे संकाय के वेतन से भिन्न है। संबंद्ध कॉलेजों में भी वहीं वेतन नहीं मिलता जो विश्वविद्यालयों में मिलता है। स्कूल आधार पर विभिन्न प्रबन्धों के अधीन कार्य करने वाले अध्यापकों के वेतनों में पर्याप्त अंतर है।

इन अंतरों को समाप्त करने की बहुत सबल मांग की गई है । इसके लिए सुझाव दिया गया है कि प्रथम प्रकार की भिन्नता को समाप्त करने या उसे कम से कम करने के लिए राष्ट्रीय वेतनमानों को स्वीकार कर लिया जाए और निर्वाह खर्च में अनिवार्य स्थानीय अन्तरों को दृष्टि में रखते हुए भत्ते दिये जाएं। दूसरा अंतर समानता का सिद्धांत अपना कर दूर किया जा सकता है। इन दोनों सुझावों को निकट से जांचना पड़ेगा।

....

4.15 **प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की अवधि** –इससे प्रशिक्षण कार्यक्रम की अवधि का प्रश्न सामने आता है। प्राथमिक स्तर पर दो वर्षों की न्यूनतम अवधि आवश्यक है और जिन क्षेत्रों में आज केवल एक वर्ष की पाठ्यावधि है वहां भी सर्वत्र दो वर्ष की अवधि कर दी जाए तो विषय –वस्तु के आवश्यक पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करने में कोई कठिनाई नहीं आयेगी। माध्यमिक स्तर पर, जहाँ पाठ्यक्रम की अवधि केवल एक वर्ष है, यह सुझाव दिया जाता है कि अवधि बढ़ाकर दो वर्ष कर दी जाए, क्योंकि तभी विद्यमान बड़े– बड़े पाठ्यक्रमों के साथ न्याय हो सकेगा और तभी प्रस्तावित विषयवस्तु का समावेश हो सकेगा । वित्तीय और व्यावसायिक दृष्टि से यह बात सहज साध्य प्रतीत नहीं होती। फिर भी इतना तो संभव है ही कि संप्रति निर्धारित अवधि में ही शिक्षावर्ष के कार्यदिनों की संख्या 180–190 से बढ़ाकर 230 तक की जाए और इस प्रकार इस अवधि का पूरा लाभ उठाया जाए। कुछ माध्यमिक प्रशिक्षणशालाओं में शिक्षा वर्ष की अवधि इस रूप में बढ़ाई गई है और बड़े अच्छे परिणाम दृष्टिगोचर हुए हैं। हमारी सिफ़ारिश है कि यह सुधार संप्रति विद्यमान सभी संस्थाओं में अविलंब कर दिया जाना चाहिए।

4.28 **प्राथमिक अध्यापकों की वृत्तिक शिक्षा की पाठ्यचर्या**–इस समय यह पाठ्यचर्या दो भागों में विभक्त है। सैद्धान्तिक खंड में शिक्षण के सिद्धांत, बाल –विकास या बाल मनोविज्ञान, अध्यापन विधियाँ, स्कूल संगठन और स्वास्थय शिक्षा जैसे विषय होते हैं । व्यावहारिक काम में हस्तकला, अभ्यासार्थ अध्यापन, और समुदायिक जीवन के क्रियाकलाप सम्मिलित होते हैं। विषयों के इस वर्गीकरण में तो हमें कोई दोष नहीं दिखता। परंतु फिर भी हमारा मत है कि सिद्धांत विषयक अध्ययन के विविध विषयों में पढ़ाई जाने वाली सामग्री का उस काम के साथ सीधा संबंध होना चाहिए जो स्कूल में पढ़ाते समय करना है। साथ ही विविध विषयों में परस्पर संबंध समझा जाना चाहिए और उनका अध्यापन भी समन्वित रूप से होना चाहिए। हम पहले ही इस बात पर जोर दे चुके हैं कि विषय–वस्तु का यथेष्ट ज्ञान कराया जाना चाहिए और उसका अध्यापन की विधियों और सामग्रियों से संबंध भी जोड़ा जाना चाहिए। छात्र –अध्यापकों को स्कूल के पाठ्यविवरण के लक्ष्यों और परिणामों को समझ लेना चाहिए और इस संप्रत्यय का ऐसा उपयुक्त विकास करने की क्षमता उनमें होनी चाहिए कि वे इसे छात्रों के लिए सार्थक बना सकें।

(स्रोत : शिक्षा आयोग रिपोर्ट, 1964–66)

उपरोक्त अंश में आयोग ने उस समय के शिक्षक–प्रशिक्षण पाठ्यक्रम और वेतन के संदर्भ में कुछ टिप्पणी की है। प्राथमिक स्तर पर दोवर्षीय प्रशिक्षण की अनुशंसा को आप आज के प्रशिक्षण कार्यक्रमों की अवधि का विश्लेषण करके देख सकते हैं। आपका अपना पाठ्यक्रम भी दोवर्षीय है।
शिक्षकों के वेतन को लेकर भी आयोग कुछ प्रस्ताव रखें जो निम्नलिखित हैं :

क्रम	अध्यापक	वेतन तथा वेतनमान
1	प्राईमरी स्कूल का अध्यापक जिसने सेकेण्डरी कोर्स के साथ दो वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त किया हो	रू 150–250 अधिकतम वेतन 20 वर्ष की सेवा के पश्चात्।
2	सेलेक्शन ग्रेड (प्राइमरी स्कूल अध्यापक) नोटः–(प्राइमरी स्कूल के अप्रशिक्षित अध्यापक को 100 रू वेतन मिलेगा।) 5 वर्ष में 125 रू हो जाएगा । प्रशिक्षित होने पर उसके वेतनमान में परिवर्त्तन किया जाएगा)	250–300 15% अभ्यर्थियों के लिए
3	एक वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त ग्रेजुएट अध्यापक	220–400 (20 वर्ष की सेवा)
4	सेलेक्शन ग्रेड 15% के लिए	400–500
5	ग्रेजुएट के लिए न्यूनतम वेतन (प्रशिक्षण प्राप्त करने तक)	220–400
6	सेकेण्डरी स्कूलों में पढ़ाने वाले एम.ए. उत्तीर्ण अध्यापक नोटः – ट्रेन्ड होने पर एक इन्क्रीमेंट और मिलेगा।	300–600

उस समय बिहार राज्य की तुलना में अन्य राज्यों के शिक्षकों को कितना वेतन मिलता था, इसकी तुलना भी आयोग द्वारा किया गया, जिसे आगे दी गई सारणी में दर्शाया गया है।

राज्य	अध्यापक की श्रेणी	सरकारी संस्थाएँ	गैर –सरकारी संस्थाएँ
असम	उच्चतर माध्यमिक स्कूल का प्रधानाध्यापक	रू. 350–1000 (प्रारम्भिक वेतन रू 450)	रू. 25–0600 (प्रारम्भिक वेतन रू 390)
	हाई स्कूल का सहायक अध्यापक (प्रशिक्षित स्नातक)	रू. 250–700	रू. 125–275 (प्रारम्भिक वेतन रू 140)
बिहार	प्राथमिक स्कूल में मैट्रिक योग्यता प्राप्त प्रशिक्षित अध्यापक	रू. 115–200 (महंगाई भत्ता रू 5)	रू. 50–90 (महंगाई भत्ता रू 30)
उड़ीसा	माध्यमिक स्कूल में सहायक अध्यापक (प्रशिक्षित स्नातक)	रू. 185–325	रू. 175–300
पश्चिम बंगाल	माध्यमिक स्कूल का मुख्याध्यापक	रू. 325–1000	रू. 350–525
	माध्यमिक स्कूलों में सहायक अध्यापक एम०ए० / एम०एस०सी० /एम०काम० और बी०टी०	रू. 225–475	रू. 210–450
	माध्यमिक स्कूलों में सहायक अध्यापक अध्यापक– बी०ए०/ बी०एस–सी० और बी०टी०	रू. 175–325	रू. 160–295

उपरोक्त सारणी से आप यह विश्लेषण कर सकते हैं कि दिए गए राज्यों की तुलना में बिहार के शिक्षकों को अपेक्षाकृत कम वेतन मिलता था। ऐसा क्यों था, इसपर विचार करें।

यदि स्वतंत्रता प्राप्ति से बहुत पहले के काल में शिक्षकों को मिलनेवाले वेतन की समीक्षा करें तो हम पाएंगे कि शिक्षक का वेतन छात्रों की संख्या पर निर्भर करता था, जहां प्रति छात्र वेतन निर्धारित होता था। उस समय आज के जैसे, शिक्षक का कोई नियत वेतनमान नहीं होता था। आप यह अनुमान लगाएं कि वेतन की वैसी स्थिति के विषय में उस समय का शिक्षक क्या सोंचता होगा।

आगे एक सारणी को दिया गया है जिसमें सन् 1845 के समय में स्कूल मास्टरों के वेतन को दर्शाया गया है, इसका विश्लेषण करें।

पटना जिला के निकटवर्ती गाँवों में स्कूल(1845)			
गाँव का नाम	स्कूलों की संख्या	छात्रों की संख्या	स्कूल मास्टर का वेतन
नौबतपुर	1	40	2 आना प्रति छात्र
मनेर	2	82	1.5–2 आना प्रति छात्र
हिलसा	2	35	1 आना प्रति छात्र
फतुहा	2	43	2 आना प्रति छात्र
बख्तियारपुर	2	25	2–4 आना प्रति छात्र
बाढ़	4	67	2 आना प्रति छात्र
शेरपुर	1	36	2 आना प्रति छात्र
फुलवारी	1	25	2 आना प्रति छात्र
(स्रोत : फ्रोम दिगंबर मित्तर, डिप्टी कलक्टर, टू दि कलक्टर ऑफ पटना, 27 जून 1845)			

उपरोक्त सारणी से यह पता चलता है कि स्कूल मास्टर का वेतन छात्रों की संख्या के आधार पर तय होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि छात्रों की संख्या बढ़ने पर प्रति छात्र शिक्षक के वेतनांश में कमी की जाती थी जैसा मनेर गांव के संदर्भ में किया गया है। जहां छात्रों की संख्या अपेक्षतया कम थी, वहां प्रति छात्र शिक्षक के वेतनांश को बढ़ा दिया गया है, जैसा कि बख्तियारपुर के संदर्भ में हुआ है। यह हर मास्टर को मिलनेवाले वेतन में संतुलन की ओर भी इशारा करता है।

गतिविधि

- आज की स्थिति में अलग अलग स्तरों और अलग अलग प्रकार के शिक्षकों को कितना वेतन मिलता है, इसकी सूची बनाएं और उनका तुलनात्मक विश्लेषण करे।
- क्या प्राथमिक, माध्यमिक या उच्च स्तर के आधार पर शिक्षकों के वेतन में फर्क रखना जायज है, इस संदर्भ में अपने अध्ययन केन्द्र पर एक परिचर्चा का आयोजन करें।

यदि स्वतंत्रता पूर्व के लगभग पचास साल के काल को देखें तो बिहार में शिक्षकों के प्रशिक्षण की कुछ व्यवस्थाओं के विकास की झलक मिलती है। बिहार में शिक्षक प्रशिक्षण की शुरूआत पटना में नॉर्मल स्कूल की स्थापना के साथ शुरू होती है।1895–96 में मुंशी हसन अली के प्राधानाध्यापक के रूप में नियुक्ति के साथ पटना नॉर्मल स्कूल ने अपना कार्य शुरू किया। 1912 में बिहार से बंगाल अलग होने के बाद पटना ट्रेनिंग कॉलेज की स्थापना हुई। तत्कालीन वार्षिक प्रतिवेदन, 1912–13 के पृष्ठ 11 से पता चलता है कि तब निम्न प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना का प्रावधान किया गया था–

1. द ट्रेनिंग कॉलेज फॉर इंगलिश टीचर्स फॉर बांकीपुर
2. द फर्स्ट ग्रेड ट्रेनिंग स्कूल
3. द ट्रेनिंग कॉलेज फॉर वीमेंस एट बांकीपुर
4. द गुरू ट्रेनिंग स्कूल
5. द एडेड ट्रेनिंग क्लासेस

उक्त में से पटना ट्रेनिंग कॉलेज, जिसकी स्थापना 1908 में हुई थी, उसमें बैचलर ऑफ टीचिंग के अतिरिक्त लाइसेंसिएट इन टीचिंग (एल.टी) की भी व्यवस्था की गई। जे. एच. थिकेट जो इस कॉलेज के 1908 से 1931 तक प्राचार्य थे, के जाने के बाद एफ. ऑर. ब्लेयर ने प्राचार्य का पद ग्रहण किया एवं उनकी देख–रेख में पहली बार प्राथमिक शिक्षा में डिप्लोमा कोर्स (1931–32)की शुरूआत हुई, जो दो वर्षीय था। 1935–36 में यहाँ बैचलर ऑफ एजुकेशन की डिग्री के साथ मास्टर ऑफ एजुकेशन का पाठ्यक्रम भी शुरू किया गया।
एलिमेंट्री ट्रेनिंग स्कूल जिन्हें 1926–27 तक गुरू ट्रेनिंग स्कूल के नाम से जाना जाता था, उनकी संख्या उड़ीसा के बिहार से अलग होने के बाद 1936 से 1942 के बीच निम्न तालिका में प्रस्तुत है। ये प्रशिक्षण संस्थान सरकार द्वारा प्रबंधित थे।

वर्ष	विद्यालयों की संख्या	प्रशिक्षणार्थियों की संख्या	कुल
1936–37	55	1077	1077
1940–41	55	1083	1083
1941–42	55	1081	1081
(स्रोत : बिहार में शिक्षा के सौ वर्ष, बिहार विधान परिषद् प्रकाशन)			

उक्त संस्थाओं के अतिरिक्त एलिमेंट्री ट्रेनिंग स्कूल, सहायता प्राप्त एवं गैर सहायता प्राप्त की श्रेणी में भी थे जिनकी सूची निम्न है:

वर्ष	सहायता प्राप्त		गैर सहायता प्राप्त	
	विद्यालयों की संख्या	प्रशिक्षणार्थियों की संख्या	विद्यालयों की संख्या	प्रशिक्षणार्थियों की संख्या
1936–37	2	54	1	13
1940–41	3	71	1	44
1941–42	3	71	1	44
(स्रोत : बिहार में शिक्षा के सौ वर्ष, बिहार विधान परिषद् प्रकाशन)				

उक्त सारणियों से ज्ञात होता है कि उस समय सरकार प्रबंधित, अनुदान प्राप्त एवं गैरअनुदानित तीन तरह के Elementary Training School थे। इसी बीच सितम्बर 1938 में पटना ट्रेनिंग स्कूल को बेसिक ट्रेनिंग स्कूल में परिवर्तित कर दिया गया। ज्ञातव्य है कि 1937 से बिहार में बुनियादी शिक्षा की शुरूआत हो चुकी थी।1942 से 1947 के बीच क्रमशः बिक्रम, पटना एवं कुमारबाग, चम्पारण में दो अन्य बेसिक ट्रेनिंग स्कूल स्थापित हुए। 1949–50 तक इनकी संख्या बढ़कर 19 हो गई थी। इस प्रकार स्वतंत्रता पूर्व शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था का विकास हुआ, जिसका कुछ स्वरूप अभी भी विद्यमान है।

3.6 समेकन

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षक के आज की स्थिति के पीछे का इतिहास कितना व्यापक है। इस इकाई में उस इतिहास के कुछ अंशो को ही समेटा गया है। आज से पीछे की स्थिति में शिक्षक क्या थे और आज वे किस स्थिति में हैं, इसकी समीक्षा इस इकाई में की गयी है।

शिक्षक से संबंधित विभिन्न मुद्दों जैसे उनका वेतन, प्रशिक्षण, प्रोन्नति, सम्मान आदि के बारे में हमने नीतियों के कुछ प्रमुख भागों को पढ़ा। इससे हमने यह समझा कि शिक्षक से संबंधित कई समस्याए बहुत पहले से हमारी शिक्षा व्यवस्था में हैं। उन समस्याओं के प्रति अलग–अलग नीतियों ने क्या नजरिया रखा, इसकी भी मोटी–मोटी समझ हमने बनाई।

3.7 मूल्यांकन के प्रश्न

1. निम्नलिखित कथन पर अपनी टिप्पणी करें

   ''अध्यापक शिक्षण एक निरंतर प्रक्रिया है और इसके सेवा पूर्व एवं सेवाकालीन अवयवों को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है। पहले कदम के बतौर अध्यापक शिक्षण की प्रणाली को दुरूस्त किया जाएगा।'' *(स्रोत : राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986, 1992 मे संशोधित, खंड 9.4)*

2. आज के संदर्भ में शिक्षक से संबंधित कौन कौन से मुद्दे प्रमुख हैं, उनकी चर्चा करें।
3. पिछले एक दशक में बिहार में शिक्षकों की स्थिति में क्या बदलाव आया है, उसकी समीक्षा करें।
4. नीतियों में शिक्षको के विकास की जो सिफारिशें की गई हैं, उन्हे वास्तविकता में लागू करने के लिए क्या सिर्फ सरकार का प्रयास काफी होगा ?
5. शिक्षकों के प्रशिक्षण को लेकर विभिन्न नीतियों ने क्या कहा, उसका विश्लेषण करें।

इकाई–4
पाठ्यक्रम

4.1 परिचय
4.2 सीखने के उद्देश्य
4.3 पूर्व अनुभव
4.4 अपने विद्यालय के पाठ्यक्रम को समझना
4.5 विद्यालय के पाठ्यक्रम मे आए बदलावों को शिक्षा नीतियों के माध्यम से विश्लेषित करना
4.6 समेकन
4.7 मूल्यांकन के प्रश्न

4.1 परिचय

क्या पढ़ाया जाए? अथवा क्या पढाये जाने योग्य है? इन प्रश्नों का उत्तर दिया जाना आसान नहीं है। अगर हम इन प्रश्नों का उत्तर देते भी हैं तो उसके सर्वमान्य होने की संभावना बहुत कम होगी। आजादी के बाद के काल को देखें तो पाठ्यक्रम के स्वरूप और विषयवस्तु को लेकर लगातार कई परिवर्तन होते रहे हैं और आज भी यह कहना मुश्किल है कि हमारे विद्यालय के पाठ्यक्रमों में अब कोई बदलाव की आवश्यकता नहीं है। विद्यालयों में क्या पढ़ाया जाए, इस बात को लेकर चलने वाली बहस उतनी ही पुरानी है जितना पुराना विद्यालय का अतीत है या ऐसे कहें कि विद्यालयी शिक्षा के पाठ्यक्रम को लेकर हुए विकास का भी अपना एक इतिहास है, जो कि भारत में औपचारिक स्कूली शिक्षा की शुरूआत के साथ और व्यवस्थित होता गया। आज पाठ्यक्रम का जो स्वरूप हमारे विद्यालयों में है उसके माध्यम से शिक्षा के विकासात्मक इतिहास के कई पक्षों को प्रभावी तरीके से समझा जा सकता है। विद्यालय में पढ़ाए जा रहे पाठ्यक्रम के अंतर्गत विषयों की संख्या, उनके नाम तथा विषयों के बीच के अन्तर्संबंध की छानबीन प्रशिक्षुओं को शिक्षा के विकास को समझने में मददगार साबित होगी, विशेष तौर पर विद्यालयी पाठ्यक्रम के विकास को समझने में। विद्यालय में पढ़ाए जा रहे विषयों का समूहीकरण अथवा विभाजन किस आधार पर किया गया है, उन विषयों को पाठ्यक्रम में कब और क्यों जोड़ा गया, आदि प्रश्नों की समझ के लिए नीतियों का सराहा लेना अपरिहार्य है। अपने विद्यालय के पाठ्यक्रम के नीतिगत विश्लेषण से आप उन विषयों से कहीं गहरे रूप से जुड़ पाएंगे जिन्हें आप कक्षाओं में रोज पढ़ाते हैं। इससे उन विषयों को पढ़ाए जाने के उद्देश्य भी कहीं अधिक स्पष्ट होंगे।

4.2 सीखने के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- विद्यालय के पाठ्यक्रम के नीतिगत आयामों को समझ सकेंगे।
- विद्यालय के पाठ्यक्रम के वर्तमान स्वरूप तक पहुँचने के इतिहास को जान पाएंगे।
- विद्यालयी पाठ्यक्रम में समय–समय पर आए परिवर्तनों एवं इन परिवर्तनों की आवश्यकता के ऐतिहासिक आधारों को समझ सकेंगे।
- विभिन्न दस्तावेजों का अध्ययन करके शिक्षा नीतियों के कारण विद्यालयों के पाठ्यक्रम पर पड़े प्रभाव का विश्लेषण कर पाएंगे।

4.3 पूर्व अनुभव

अब तक आप कई प्रकार के पाठ्यक्रमों से गुजर चुके हैं। शुरूआत में स्कूली पाठ्यक्रम, फिर विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम और अभी अध्यापक शिक्षा का पाठ्यक्रम, इन सब की मोटी–मोटी समझ आपको है। और इनके अलावा, जो नवीनतम पाठ्यक्रम आज के विद्यालयों में चल रहा है, उसके अध्यापन का अनुभव भी आपको स्वतः ही है। आप अपने अनुभवों का प्रयोग इस इकाई को समझने में अवश्य करें।

4.4 अपने विद्यालय के पाठ्यक्रम को समझना

किसी विद्यालय का वर्तमान पाठ्यक्रम आज तक के पाठ्यक्रम विकास का द्योतक है। विद्यालय के पाठ्क्रम से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारियों के माध्यम से अलग–अलग शिक्षा नीतियों के बीच की कड़ियों को एक दूसरे से जोड़ा जा सकता है। इसके माध्यम से आप विद्यालय के आज के पाठ्यक्रम के स्वरूप का विश्लेषण तो कर ही पायेंगे, बल्कि साथ ही साथ विद्यालय के पाठ्यक्रम के ऐतिहासिक विकास की भी समझ हो पाएगी।

अतः इस इकाई की शुरूआत हम किसी एक विद्यालय के पाठ्यक्रम को चुनकर उससे संबंधित आंकड़ों को एकत्र करने से करेंगें। यह आपके लिए बेहतर होगा कि आप अपने विद्यालय के पाठ्यक्रम को सबसे पहले समझें। इससे आप अपने विद्यालय के पाठ्क्रम से अन्य पाठ्क्रमों का तुलनात्मक विश्लेषण कर पाने में सक्षम होंगे।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि विद्यालय के पाठ्यक्रम को समझना हो तो इससे संबंधित किन–किन सूचनाओं को इकट्ठा करना होगा और कैसे। इसके लिए क्या किसी योजना की आवश्यकता है। आपके विद्यालय में जो पाठ्यक्रम चल रहा है वह एक लिखित दस्तावेज के रूप में भी होगा जिसे आपको अवश्य देखना होगा क्योंकि आप बहुत सारी सूचनाएं सीधे–सीधे इससे ले सकते हैं। पर, अभी भी आपको अपने पाठ्यक्रम को समझने के लिए एक योजना बनानी होगी जो यह तय करेगी कि पाठ्यक्रम से संबंधित किन–किन सूचनाओं को आधार बनाकर उसका विश्लेषण किया जाए।

आगे एक गतिविधि के तौर पर विद्यालय के पाठ्यक्रम से संबंधित सूचनाओं को एकत्रित करने की योजना दी गई है। आप इस योजना में अपेक्षित संशोधन करके अपने विद्यालय के पाठ्यक्रम संबंधी सूचनाओं को एकत्र करने में उपयोग कर सकते हैं

गतिविधि : अपने विद्यालय के पाठ्यक्रम को समझना		
आपके विद्यालय के पाठ्यक्रम का नाम		
किस संस्था द्वारा तैयार किया गया है		
किस संस्था ने पाठ्यक्रम को अनुमोदित किया है		
पाठ्यक्रम को कब से लागू किया गया है		
पाठ्यक्रम पुस्तिका से संबंधित सूचनाएं		
1.	पाठ्यक्रम पुस्तिका में कितने खण्ड हैं	
2.	अलग–अलग खण्डों में क्या दिया हुआ है	
3.	क्या पाठय्क्रम मे इसके उद्देश्यों का जिक्र है	
4.	क्या पाठ्यक्रम में किन्हीं अन्य दस्तावेजों का उल्लेख है, कौन–कौन से।	
5.	पाठ्यक्रम मे कौन–कौन सी कक्षाएं शामिल हैं	
6.	इस पाठ्यक्रम को पूरा करने में न्यूनतक कुल कितने वर्ष लगेंगे	
7.	कितने विषयों को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है	
8.	कौन–कौन से विषय हैं	
9.	विषयों के विवरण में क्या–क्या दिया हुआ है	
10.	क्या मूल्यांकन की रूपरेखा पाठ्यक्रम में शामिल है	
11.	कुल कितने विषयों को एक विद्यार्थी को पढ़ना होगा।	
12.	पूरे पाठय्क्रम के दौरान किसी विद्यार्थी को कितनी भाषाओं को सीखना होगा।	
13.	क्या विषयों को आबंटित अंकों में कोई अंतर है	
14.	पाठ्यक्रम को विद्यालय में कैसे लागू करना है, क्या इस विषय में कोई उल्लेख है	
15.	किसी विद्यालय में इस पाठ्यक्रम को लागू करने के लिए अनिवार्य रूप से अपेक्षित न्यूनतम आधारभूत संसाधनों की बात क्या पाठ्यक्रम में शामिल है	
16.	पाठ्यक्रम पुस्तिका में किन बातों को विस्तार से दिया गया है।	
17.	किन बातों को बहुत ही संक्षेप में दे दिया गया है जिन्हे विस्तार से समझाने की आवश्यकता थी।	

आपके विद्यालय में पाठ्यक्रम का स्वरूप		
1.	आपके विद्यालय में यह पाठय्क्रम कब से चल रहा है? कितने वर्ष हो गए हैं	
2.	आपके विद्यालय में किस कक्षा तक यह पाठ्यक्रम लागू है	
3.	क्या शुरू से ही यही पाठ्यक्रम लागू है या इससे पहले के पाठ्यक्रमों के माध्यम से भी आपके विद्यालय में शिक्षण हो रखा है	
4.	क्या पाठ्यक्रम का कोई हिस्सा/विषय आपके विद्यालय में नहीं लागू है? हां तो कौन सा और क्यों	
5.	क्या विद्यालय स्तर पर इस पाठ्यक्रम में कोई बदलाव किया जाता है	

उपरोक्त सूचनाओं के संग्रह से आपको अपने विद्यालय के मौजूदा पाठ्क्रम के विषय में कई महत्वपूर्ण तथ्य मिलेंगे। पर, उन तथ्यों को विश्लेषण को गहन बनाने के लिए आपको कई तुलनात्मक तथ्यों की आवश्यकता होगी। आपके विद्यालयी पाठ्यक्रम को यदि देखें तो इसे दो आधार पर विश्लेषित किया जा सकता है।

1. आपके विद्यालय के मौजूदा पाठ्यक्रम का अपने पहले के पाठ्यक्रमों से तुलनात्मक विश्लेषण।
2. आपके विद्यालय के मौजूदा पाठ्यक्रम का अपने समकालीन समतुल्य पाठ्यक्रमों से तुलनात्मक विश्लेषण।

आज के पाठ्यक्रम का पहले के पाठ्यक्रमों से तुलनात्मक विश्लेषण करने से पाठ्यक्रमों के ऐतिहासिक विकास के सोपानों की एक समझ विकसित होगी। और आज के समकालीन पाठ्यक्रमों के साथ तुलनात्मक विश्लेषण करने से आज के पाठ्यक्रमों के विषयवस्तु और उद्देश्यों के बारे में आपकी समझ और व्यापक होगी। उनके साथ–साथ जुड़ी नीतियों की पड़ताल भी जरूरी है।
अब से पहले के पाठ्यक्रमों के विषय में जानकारी एकत्र करने के लिए नीचे दी गई गतिविधि को करें ताकि उनके साथ आज के पाठ्यक्रम का तुलनात्मक विश्लेषण हो सके।

बिहार के स्कूली पाठ्यक्रम में बदलाव का अनुक्रम		
वर्ष	**क्या बदलाव हुआ**	**किस नीति के कारण**

आज के शैक्षिक परिदृश्य में, अलग अलग शैक्षिक संस्थाओं द्वारा कई प्रकार के पाठ्यक्रमों का विकास किया गया है। बिहार में हीं विद्यालयों को मान्यता देनेवाली संस्था/बोर्डों के आधार पर अलग–अलग विद्यालयों में अलग–अलग पाठ्क्रमों का चलन है। अलग–अलग राज्यों में उनके अपने राज्य बोर्डों द्वारा अनुमोदित अपने पाठ्यक्रम हैं। राष्ट्रीय स्तर के बोर्डों का अपना अलग पाठ्यक्रम है। इन समकालीन पाठ्यक्रमों के तुलनात्मक अध्ययन से आप अभी के पाठ्यक्रम को बेहत तरीके से समझ पाएंगे। इसके लिए आगे दी गई गतिविधि को करें।

गतिविधि

इस गतिविधि के लिए आप एक स्तर (प्राथमिक स्तर) के किन्हीं दो अलग–अलग संस्थाओं द्वारा अनुमोदित पाठ्यक्रमों का चयन करेंगे। फिर, उन पाठ्यक्रमों की लिखित पुस्तिका को लेकर निम्नलिखित दिशानिर्देशों के आधार पर सूचनाओं का संग्रह करेंगे। उदारहण के तौर पर कुछ खण्डों को भर दिया गया है।

<table>
<tr><th colspan="2">प्रमुख बिन्दु</th><th>पाठ्यक्रम–1
(आपके अपने विद्यालय का)</th><th>पाठ्यक्रम–2
(राष्ट्रीय स्तर का)</th></tr>
<tr><td colspan="2">पाठ्यक्रम को विकसित करनेवाली संस्था</td><td>राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, (एस.सी.ई.आर.टी.) बिहार</td><td>राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, (एन.सी.ई.आर.टी.) नई दिल्ली</td></tr>
<tr><td colspan="2">पाठ्यक्रम का स्तर (किस कक्षा तक)</td><td></td><td></td></tr>
<tr><td colspan="2">पाठ्यक्रम को किस वर्ष से लागू किया गया है</td><td></td><td></td></tr>
<tr><td colspan="2">पाठ्यक्रम के प्रमुख उद्देश्य</td><td></td><td></td></tr>
<tr><td colspan="2">पाठ्यक्रम को बनाने में किन नीतिगत दस्तावेजों को आधार माना गया है</td><td></td><td></td></tr>
<tr><td colspan="2">पाठ्यक्रम में शामिल विषयों के नाम</td><td></td><td></td></tr>
<tr><td rowspan="2">विषय–1</td><td>कुल इकाइयां सभी कक्षाओं को मिलाकर</td><td></td><td></td></tr>
<tr><td>प्रमुख विषयवस्तु</td><td></td><td></td></tr>
</table>

विषय–2	कुल इकाइयां सभी कक्षाओं को मिलाकर		
	प्रमुख विषयवस्तु		
विषय–3	कुल इकाइयां सभी कक्षाओं को मिलाकर		
	प्रमुख विषयवस्तु		
विषय–4	कुल इकाइयां सभी कक्षाओं को मिलाकर		
	प्रमुख विषयवस्तु		

अब निम्नलिखित बिन्दुओं के आलोक में उपरोक्त आंकड़ों का विश्लेषण करें :

1. दोनों पाठ्यक्रमों के उद्देश्यों में क्या–क्या समानताए हैं तथा क्या अंतर है?
2. क्या दोनों पाठ्यक्रमों मे कुछ समान नीतिगत दस्तावेजों का उल्लेख है? किस प्रकार से?
3. पाठ्यक्रमों के विषयों में क्या समानता या अंतर हैं? विषयों के नाम किस प्रकार से हैं
4. अलग अलग विषयों के विषयवस्तुओं में क्या अंतर या समानता है?
5. अन्य पाठ्यक्रम की तुलना में आपके विद्यालय के पाठ्यक्रम में क्या है और क्या नहीं है?
6. मूल्यांकन के विषय में क्या व्यवस्था है अलग अलग पाठ्यक्रमों में? उनमें क्या अंतर है?

उपरोक्त बिन्दुओं की सहायता से आप अभी के पाठ्यक्रम के व्यापक स्वरूप को समझ पाएंगे, लेकिन इस समझ को समीक्षात्मक बनाने के लिए आपको उन तमाम शैक्षिक नीतिगत दस्तावेजों की मदद लेनी होगी जिन्होंने अलग अलग समय में विद्यालय के पाठ्यक्रम के संदर्भ में कुछ अनुशंसाएं की और उन अनुशंसाओं के आलोक में विद्यालयी पाठ्यक्रम मे बदलाव लाने का कार्य किया गया। आगे के खण्ड में हम उन्हीं नीतिगत दस्तावेजों का सहारा लेकर अपने विद्यालय में आज के पाठ्यक्रम के विकास को समझेंगे।

4.5 विद्यालय के पाठ्यक्रम मे आए बदलावों को शिक्षा नीतियों के माध्यम से विश्लेषित करना

इससे पहले के खण्ड में आपने अपने विद्यालय के पाठ्यक्रम से संबंधित आंकड़ों को एकत्रित किया तथा उसका अन्य पाठ्यक्रमों के साथ तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया। लेकिन, विस्तृत एवं ऐतिहासिक समझ विकसित करने के लिए वे आंकड़े स्वयं में परिपूर्ण नहीं हैं। उनके लिए शिक्षा के नीतिगत विमर्शों का सहारा लेना बहुत जरूरी है। एक प्रकार से देखें तो पाठ्यक्रम से संबंधित जिन भी आंकड़ों को आपने एकत्रित किया है वे समय समय पर हुए नीतिगत बदलावों के प्रतिफल हैं। अतः इस खण्ड में हम यह विश्लेषित करने का प्रयास करेंगे कि जिस प्रकार का पाठ्यक्रम अभी आपके विद्यालय में लागू है उसके पीछे का इतिहास क्या है।

राष्ट्रीय एवं राजकीय स्तर के कुछ चुनिन्दा दस्तावेजों के पाठ्यक्रम से संबंधी कुछ महत्वपूर्ण अंशों को आगे मौलिक रूप में दिया जा रहा है ताकि आप उनकी बातों से सीधे–सीधे परिचित हो सकें। आप उन अंशों में दिए गए महत्वपूर्ण बिन्दुओं को चिन्हित करें तथा उसे अपने विद्यालय के पाठ्यक्रम से संबंधी आंकड़ों से जोड़ने का प्रयास करें। अंशों के बीच–बीच में आपकी सहायता के लिए कुछ विश्लेषण के बिन्दुओं एवं तथ्यात्मक आंकड़ों को भी साथ में दिया गया है। आपसे यह अपेक्षा है कि दिए गए दस्तवेजों में अपने स्तर पर और भी दस्तावेजों के अंशों को जोड़ते जाएं।

जब पाठ्यक्रम बनाने की बात आती है तो सबसे पहले यह चर्चा होती है कि इसके लिए आधार क्या लें, इस विषय में बिहार सरकार का दस्तावेज 'किशोर मन की समझ' से निम्नखिलित उद्धरण लिए गए हैं जो पाठ्यक्रम के विषय में कुछ आधारों को तय कर रहा है।

पाठ्यक्रम :

एन०सी०ई०आर०टी०, नई दिल्ली द्वारा निर्मित नवीन पाठ्यक्रम के अनुरूप राज्य के शैक्षिक आवश्यकताओं और अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुये राज्य की विद्यालयीय शिक्षा का पाठ्यक्रम बनाया जाये। पाठ्यक्रम बनाते समय कक्षा 1–12 तक की निरंतरता को ध्यान में रखा जाये तथा आवश्यकतानुसार कक्षा 1 से 8, कक्षा 9–10 एवं कक्षा 11–12 के लिए अलग–अलग तीन पाठ्यक्रम बनाये जायें। पाठ्यक्रम का निर्माण पाठ्यचर्या की रूपरेखा बनाये जाने के बाद किया जाना चाहिए ताकि पाठ्यचर्या के आधारभूत सिद्धांतों के अनुरूप पाठ्यक्रम बनाया जा सके। पाठ्यक्रम निर्माण का कार्य भी शिक्षकों के सहयोग से बिहार विद्यालय परीक्षा समिति के नेतृत्व में राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्ष्ज्ञण परिषद् के सहयोग लेते हुए किया जाना चाहिए।

पाठ्यपुस्तक :

पाठ्यचर्या एवं पाठ्यक्रम निर्माण के बाद विभिन्न कक्षाओं में पढ़ाये जानेवाले विभिन्न विषयों की पाठ्यपुस्तकें कक्षावार बनायी जानी चाहिए। पाठ्यपुस्तकों का निर्माण दो चरणों में किया जा सकता है। पहले चरण में कक्षा I, III, V, VII एवं IX दूसरे चरण में II, IV, VIII एवं X की पुस्तकें निर्मित की जा सकती हैं।

(स्रोत : किशोर मन की समझ)

गतिविधि

क्या पाठ्यक्रम बनाने के लिए एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा सूझाए गए प्रारूप को आधार मानना ठीक है?
इस विषय पर अपने अध्ययन केन्द्र पर एक परिचर्चा का आयोजन करें।

किसी भी पाठ्यक्रम को बनाने के लिए उसके लक्ष्यों को तय करना जरूरी होता है ताकि उसकी विषयवस्तु में उन्हे समाहित किया जा सके। बिहार के विद्यालयी शिक्षा हेतु नवीन पाठ्यक्रम के दस्तावेज में दिए गए प्राक्कथन से उन्हीं लक्ष्यों का बोध होता है, जिन्हें आगे दिया जा रहा है :

प्राक्कथन

मानव संसाधन विकास विभाग, बिहार द्वारा राज्य की स्कूली शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर नवीन पाठ्यक्रम लागू किया गया है। निर्देशानुसार, पाठ्यक्रम विकास का कार्य राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् द्वारा किया गया। ज्ञातव्य है कि बिहार राज्य में पहली बार राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के आलोक में बिहार पाठ्चर्या की रूपरेखा 2008 का विकास परिषद् द्वारा किया गया। इस पाठ्यचर्या के आधार पर कक्षा I से XII तक का पाठ्यक्रम नवीन शिक्षाशास्त्रीय मान्यताओं के आलोक में विकसित किया गया।

हमारे प्रदेश की पाठ्यचर्या की रूपरेखा एवं नवीन पाठ्यक्रम में कई नवीनताएँ एवं कई विशेषताएँ हैं, यथा :

	पहले हम मानते थे	**आज हमारा मानना है**
1	शिक्षार्थियों को क्या पढ़ाएंगे?	बच्चे/किशोर क्या सीखेंगे?
2	रटने पर बल	अधिगम पर बल
3	शिक्षक केन्द्रित	शिक्षार्थी केन्द्रित
4	ज्ञान ठूसरे की प्रवृत्ति	ज्ञान की स्वतंत्र रचना
5	विद्यालयः ज्ञान की दुकान	ज्ञानः हमारे चारों ओर
6	आंचलिकता की उपेक्षा	आंचलिकता : प्रमुख संसाधन
7	भाषागत रूढ़ियाँ	बहुभाषिकता का संसाधन के रूप में प्रयोग

उक्त मान्यताओं के आधार पर यह माना जा सकता है कि पुरानी अवधारणा जहाँ हम यह तय करते थे कि बच्चा खाली स्लेट की तरह होता है उसपर शिक्षक जो चाहें दर्ज कर लें से प्रस्थान का समय है। बच्चा या किशोर/किशोरी स्कूल आने के पूर्व अपने जीवन के विविध अनुभवों से लैस होकर आते हैं, जिन अनुभवों का शिक्षण अधिगम में भरपूर उपयोग किया जाना चाहिए। लिहाजा यह नया पाठ्यक्रम स्कूली बच्चों को सीखने का एक माहौल प्रदान करने का पक्षघर है जिसमें हर बच्चे को प्रश्न पूछने और ज्ञान सृजन की पूरी छूट होगी। शिक्षकों से यह अपेक्षा है कि वे नई दृष्टि के साथ इस पाठ्यक्रम को आत्मसात करेंगे एवं सार्थक तथा प्रभावी ढ़ंग से कक्षा में इसे रूपायित करेंगे।

पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया एक साझी समझ पर आधारित रही है। परिषद् की यह कोशिश थी कि अधिकाधिक स्कूल शिक्षकों के सहयोग से इसका विकास किया जाए और ऐसा हुआ भी। कई कार्यशालाओं में शिक्षकों ने अपनी लगातार उपस्थिति दर्ज कर इस पाठ्यक्रम को यह स्वरूप प्रदान किया है। उनकी लम्बी सूची यहाँ दे पाना संभव नहीं है अतः परिषद् उन सभी सम्मानित विषय विशेषज्ञों, विद्यालय एवं उच्च शिक्ष से जुड़े शिक्षकों, परिषद् के संकाय सदस्यों के प्रति आभार प्रकट करता है। राज्य की स्कूली शिक्षा को सार्थक और सशक्त बनाने का निर्णय शासन ने लिया है और उसका प्रतिफल है राज्य की नई पाठ्यचर्या, नवीन पाठ्यक्रम और इस पर आधारित नई पाठ्यपुस्तकें। ....

(स्रोत : बिहार के विद्यालयी शिक्षा हेतु नवीन पाठ्यक्रम, एस.सी.ई.आर.टी.)

साथ ही, इस दस्तावेज में पाठ्यक्रम के शिक्षाशास्त्रीय आधारों को भी प्रस्तुत किया है ताकि पाठ्यक्रम की विषयवस्तु के माध्यम से क्या सीखना है और कैसे सीखना है, इसकी समझ बन सके। वास्तव में, ये वैसे नीतिगत पहलू हैं जो आज के विद्यालयों की कक्षाओं के स्वरूप में बदलाव लाने के लिए प्रयासरत हैं।

पाठ्यक्रम का शिक्षाशास्त्रीय आधार

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 एंव बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2008 पर आधारित यह नवीन पाठ्यक्रम 'शिक्षा' के बारे में एक विशिष्ट दृष्टिकोण पर आधारित है। इसके अनुसार ''शिक्षा का मतलब बिहार के स्कूली शिक्षार्थियों को इतना सक्षम बना देना है कि वे अपने जीवन का जिन्दा होने का सही–सही अर्थ समझ सकें। अपनी समस्त योग्यताओं का समुचित विकास कर सकें। अपने जीवन का मकसद तय कर सके और उसे प्राप्त करने हेतु यथासंभव सार्थक एवं प्रभावी प्रयास कर सकें। साथ ही इस बात को भी समझ सके कि समाज के दूसरे व्यक्ति को भी ऐसा ही करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है।'' यह संपूर्ण पाठ्यक्रम जिन महत्वपूर्ण शिक्षाशास्त्रीय मान्यताओं पर आधारित है उन्हें बिन्दुवार नीचे दिया जा रहा हैः–

- बिहार के विभिन्न सांस्कृतिक एवं सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमियों से आये शिक्षार्थियों में जिनकी संख्या आज स्कूलों में ज्यादा है, समानता की अवधारणा को पुख्ता करना।
- प्रतिस्पर्द्धा पर केन्द्रित जीवन मूल्यों से बाहर निकाल कर शांति, सहिष्णुता एवं मानवता आधारित मूल्यों के विकास पर बल।
- स्वयं को दूसरे के माध्यम से अनुभव करने पर बल।
- कोई भी व्यक्ति बिल्कुल स्वतंत्र नहीं होता, बल्कि दूसरे व्यक्ति के जीवन पर उसकी परस्पर निर्भरता रहती है। इस बात को शिक्षार्थियों के जेहन में उतारना।
- सूचना ही ज्ञान नहीं है। ज्ञान, सूचना से बड़ी अवधारणा है। ज्ञान कोई तैयार माल नहीं होता है, बल्कि सदैव निर्मित होते रहता है।
- शिक्षार्थी ज्ञान के ग्रहणकर्त्ता मात्र नहीं है, बल्कि ज्ञान के निर्माण करने की भी उनमें अद्भुत क्षमता है।
- पाठ्यपुस्त्क ही सीखने का साधन एवं परीक्षा के आधार हैं, यह बात सही नहीं है। शिक्षार्थियों के अपने पूर्व के अनुभव एवं अन्य सामग्री ज्ञान के सृजन में प्रमुख भूमिका अदा करती हैं।
- शिक्षार्थियों को 'सिखाने' के बदले उनमें स्वतंत्र रूप से 'सीखने' की प्रवृत्ति विकसित करना श्रेयस्कर है।
- शिक्षक ज्ञान बांटने वाला व्यक्ति नहीं बल्कि शिक्षार्थियों द्वारा ज्ञान के सृजन में एक सहायक व्यक्ति मात्र है।
- शिक्षार्थियों द्वारा रटने से अधिक समझाने पर बल।
- शिक्षार्थियों में अवलोकन, विश्लेषण, तर्कपूर्ण चुनाव, नवाचार, कल्पनाशीलता, सृजनशीलता, समस्या समाधान की प्रवृत्ति, निर्णय लेने की क्षमता आदि का विकास करना, न कि कुछ सूचनाओं का हस्तांतरण।
- ज्ञान को स्कूल के बाहरी जीवन से जोड़ना।
- परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचील बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना।

- शिक्षार्थियों में आत्मसम्मान एवं नैतिकता का विकास।
- ज्ञात से अज्ञात की ओर तथा मूर्त्त से अमूर्त्त की ओर एवं स्थानीय से वैश्विक की ओर।
- उत्पादक कार्य– शिक्षण का माध्यम।
- इसके अन्तर्गत कक्षा–ज्ञान को जीवन–अनुभव से जोड़ना। इससे हाशिए के समाज के शिक्षार्थियों को, जिनमें काम से जुड़े कौशल का ज्ञान होता है, को शिक्षार्थियों से सम्मान मिल सकेगा।
- पर्यावरण के प्रति शिक्षार्थियों में संवेदनशीलता बढ़ाना।
- अशांत प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण मानव संबंधों में तनाव लाता है, जिससे असहिष्णुता व संघर्ष पैदा होता है। शांति की संस्कृति का निमार्ण करना शिक्षा का निर्विवाद उद्देश्य है। शिक्षार्थी शांति को जीवन शैली के रूप में चुन सके। संघर्ष को सुलझाने की क्षमता रखे न कि उसका एक मूक दर्शक बने।
- एकीकृत पाठ्यक्र – इसमें सहायक होगा।
- प्राथमिक कक्षाओं में मातृभाषा/बोली में सीखने पर बल।
- पाठ्यचर्या एवं पाठ्यक्रम लचीला – विद्यार्थी एवं विद्यार्थी समूहों की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुकूल।
- सीखना – अर्थ निर्माण करना है।
- सीखना – पैटर्न को समझने की प्रक्रिया है।
- सीखना – निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया है।
- अर्थ निर्माण – व्यक्तिगत एवं सामाजिक तौर, दोनों पर संभव है।
- एक ही तरह के प्रश्न पूछने एवं उत्तर देने के बजाय शिक्षार्थियों को अपने शब्दों में जवाब देने एवं अपने अनुभव को बताने के लिए प्रोत्साहित करना।
- 'बुद्धिमान अनुमान' लगाने तथा प्रश्न पूछने के लिए शिक्षार्थियों को प्रोत्साहित करना।
- शिक्षार्थी जो जानते हैं और जो लगभग जानते हैं – उसके बीच के क्षेत्र में नये ज्ञान का सृजन होता है।
- ऐसा ज्ञान, कौशल का रूप लेता है जो स्कूल के बाहर घर अथवा समुदाय में परिष्कृत होता है।
- पढ़ाई में पूछताछ, अन्वेषण, प्रश्न पूछना, वाद–विवाद, व्यावहारिक प्रयोग व चिंतन जिससे सिद्धान्त बन सके और विचार स्थितियों की रचना हो सके पर बल।
- सीखने के लिए घूमना, खोजना, अकेले काम करना या अपने दोस्तों या व्यस्कों के साथ काम करना, भाषा पढ़ना, अभिव्यक्त करना, पूछने और सुनने के लिए प्रयोग करना आदि कुछ ऐसी महत्वपूर्ण क्रियायें हैं, जिनसे अधिगम होता है।
- शिक्षक 'ज्ञान' हस्तान्तरित करने वाला व्यक्ति नहीं, बल्कि एक सलहकर्त्ता है जो विद्यार्थियों को अभिव्यक्ति के लिए और ज्ञान के सृजन के क्रम में व्याख्या और विश्लेषण के लिए प्रोत्साहित करें।
- अधिगम प्रतिफल की तुलना में अधिगम उद्देश्यों पर बल।
- मूल्यांकन में रचना के साथ–साथ अवधारणा के विकास एवं उसकी प्रक्रिया के मूल्यांकन पर बल।
- कक्षा का समावेशी स्वरूप।

- स्वमूल्यांकन।
- पाठ योजना, गतिविधि आदि में पर्याप्त लचीलापन हो। हर शिक्षार्थी के हिसाब से उपयोगी हो।
- 'निदान' वाली कक्षायें सिर्फ दोहराने वाली कक्षा न हो बल्कि शिक्षार्थियों के हिसाब से सोचने–विचारने वाली कक्षा हो।
- विवादास्पद मुद्दों से बचने के बजाय उस पर बहस एवं चर्चा कर सही निर्णय तक पहुँचने का प्रयास।
- शिक्षार्थियों के सामने 'द्वन्द्व' की स्थिति पैदा कर उन्हें द्वन्द्व से निबटने के लिए तैयार करना।
- वर्त्तमान पाठ्यक्रम थीम पर आधारित है।

गतिविधि

उपरोक्त शिक्षाशास्त्रीय आधारों के आधार पर आप अपने शिक्षण का विश्लेषण करें। आप इनमें से किन–किन आधारों को पूरा करने की कोशिश करते हैं और किन किन आधारों को अपनाने में आपको चुनौतियों का सामना करना पड़ता है?

आपने उपरोक्त विवरण में बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008 और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 के उल्लेख को देखा है। ये वैसे नीतिगत दस्तावेज हैं जिनके आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण होता है। पाठ्यक्रम के विषय में कौन से नीतिगत सूझावों को ये प्रस्तुत करते हैं, इसके लिए इनके कुछ अंशों को आगे दिया जा रहा हैं :

बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008 से लिया गया निम्नलिखित विवरण पाठ्यक्रम निर्माण की विकास यात्रा के कुछ महत्वपूर्ण बातों को बताते हुए आपको आज के संदर्भ में उसके स्वरूप से परिचय कराता है तथा बिहार में पाठ्यक्रम का स्वरूप वैसा क्यों है, इसकी भी चर्चा करता है :

बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008

पाठ्यचर्या रूपरेखा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

स्कूली शिक्षा के संदर्भ में पाठ्यचर्या संबंधी बहसों ने हाल–फिलहाल अकादमिक क्षेत्र में काफी रूचि पैदा की है और कुद विवादों को भी जन्म दिया है। इसे इस बात का सूचक माना जा सकता है कि स्कूली शिक्षा, खास कर इसकी गुणवत्ता से जुड़े पहलुओं को कितना महत्त्व दिया जा रहा है। शैक्षिक परिषदों और रणनीतियों के निर्माण में शिक्षण–अधिगम के विषयवस्तु और तौर–तरीके हमेशा से केन्द्र की महत्त्व के सवाल रहे हैं, फिर भी इस किस्म की बहस में नयापन है और वह अहम् भी है। शुरू में पाठ्यचर्या के नाम पर पाठ्यक्रम पर बहस होती थी और उसी का निर्माण किया जाता था, लेकिन अब इन दोनों के बीच स्पष्ट फर्क किया जाता है जो विविध मुद्दों के बारे में अलग–अलग समझ का संकेतक है, जिनमें शिक्षा के उद्देश्य और व्यवहार के तरीके भी शामिल हैं, क्योंकि ये शिक्षण की प्रस्तावित विषयवस्तु से सरोकार रखते हैं।

अपनी स्थापना के थोड़े समय बाद ही राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्यचर्या विकास, पाठ्यक्रम निर्माण तथा पाठ्यपुस्तकों समेत शिक्षण सामग्रियों की तैयारी की नोडल एजेंसी

बन गया। कोठारी आयोग रिपोर्ट (1964–66) तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) के कुछ वर्ष बाद राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने 'दसवर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यचर्या – एक रूपरेखा' 1975 में प्रकाशित की और उसके बाद 'उच्च माध्यमिक शिक्षा तथा इसका व्यवसायीकरण' (1976) का प्रकाशन किया। कोठारी आयोग की अनुशंसाओं के आलोक में 10+2 रूपरेखा की पुनर्सरचना के अलावा क्रिलाकलाप आधारित शिक्षा पर नया जोर दिया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) तथा क्रियान्वयन कार्यक्रम (1988) की रोशनी में 'प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या : एक रूपरेखा' तैयारी की गई। इस दस्तावेज के आधार पर अनेक क्षेत्रों को बेहतर बनाया गया जिनमें अध्यापक शिक्षण, विद्यालयों में विज्ञान शिक्षा तथा समग्र और सतत मूल्यांकन शामिल हैं।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने दूसरी राष्ट्रीय पाठ्चर्या वर्ष 2000 में तैयार की। उसमें यह कहा गया कि :

> ''यह आम स्वीकृति की बात है कि शिक्षा में पाठ्यचर्या का नवीकरण और विकास निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है और कोई भी सरकार इस मामले में ढिलाई नहीं बरत सकती है। पाठ्यचर्या ऐसी ही होनी चाहिए कि वह शिक्षार्थी की जरूरतों, सामाजिक अपेक्षाओं, सामुदायिक आकांक्षाओं और अन्तरराष्ट्रीय तुलनाओं को संतुष्ट कर सकें। इसके अलावा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) तथा क्रियान्वयन कार्यक्रम (1992) की समीक्षा के तर्ज पर 'प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए पाठ्चर्या : एक रूपरेखा' की प्रकाशन के बाद से कोई समीक्षा नहीं हुई और इसीलिए यह वर्तमान प्रयास अनिवार्य बन गया। यह नवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002) के दस्तावेज (पृष्ठ 123) की सिफारिश के संगत भी है।''

वर्ष 2000 के दस्तावेज के प्रथम अध्याय में प्रासंगिकता, समता और उत्कृष्टता को पाठ्चर्या के तीन प्रमुख स्तंभ बताते हुए इसके संदर्भ की व्याख्या की गई है और पाठ्यचर्या का खाका बनाया गया है।

पिछली पाठ्यचर्या समीक्षा के ठीक पाँच वर्ष बाद राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 सामने आई। इसने एक दूसरी रिपोर्ट – **'शिक्षा बिना बोझ के'** – की ओर ध्यान खींचा और पाठ्यचर्या की रूपाकृति का कुछ नया परिप्रेक्ष्य पेश किया। इस प्रयास का औचित्य निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया गया :

''वर्ष 2000 में पाठ्यचर्या रूपरेखा की समीक्षा के बावजूद पाठ्यचर्या का बोझ और परीक्षाओं की यंत्रणा के जटिलतम मुद्दे अनसुलझे ही रह गए। वर्तमान समीक्षा प्रयास में इस क्षेत्र के सकारात्मक और नकारात्मक, दोनों किस्म के बदलावों का संज्ञान लिया गया है और इस शताब्दी के मोड़ पर स्कूली शिक्षा की भावी जरूरतों को पूरा करने की भी कोशिश की गई है। इस प्रयास में शिक्षा के लक्ष्य, बच्चों का सामाजिक परिवेश, मानवीय विकास की प्रकृति और मनुष्य की अधिगम प्रक्रिया जैसे अनेक अंतर्संबंधित आयामों की भी ध्यान में रखा गया है।''

वर्तमान दस्तावेज में हम राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 का बारंबार हवाला देंगे। बहरहाल राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा में वर्णित अधिगम के परिप्रेक्ष्यों का सारांश इस अध्याय में अन्यत्र प्रस्तुत किया गया है।

पाठ्यचर्या रूपरेखा, पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम – संक्षिप्त व्याख्या

अध्यापकों और शिक्षाविदों ने पाठ्यचर्या शब्द की भिन्न–भिन्न व्याख्याएं दी हैं जो उसके प्रयोग के खास सदंर्भों और व्याख्याकार की अपनी पृष्ठभूमि पर निर्भर करती है। कुछ लोग इसकी परिभाषा सीखने की विषयवस्तु के संकीर्ण अर्थ में करते हैं जबकि अनेक लोग इसका बहुत व्यापक अर्थ लगाते हैं। कुगेलमास कहते हैं कि :

> ''पाठ्यचर्या के दायरे में हर वह चीज आती है जिसे बच्चा स्कूल के अंदर सीखता हैः इसमें पाठ्यचर्येतर क्रियाकलाप तथा सामाजिक और वैयक्तिक रिश्ते भी शामिल हैं। (पाठ्यचर्या की) परिभाषा को विस्तारित कर इसमें कथित 'प्रच्छन्न पाठ्यचर्या' अथवा विद्यार्थियों को मानकों, मूल्यों और प्रवृत्तियों......... का अव्यक्त शिक्षण भी समाविष्ट कर लिया गया है.......''

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के संदर्भ में गठित 'पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों के लिए राष्ट्रीय फोकस ग्रुप' ने अपने स्थितिपत्र में पाठ्यचर्या की निम्नलिखित परिभाषा दी हैः

पाठ्यचर्या का सर्वोत्तम अर्थ शायद योजनाबद्ध गतिविधियों का ऐसा समुच्चय है जिसे पाठ्य की विषयवस्तु तथा सुविचारित ढंग से पोषित किए जाने वाले ज्ञान, कौशल व अभिवृत्तियों के साथ–साथ विषयवस्तु के चयन के लिए सिद्धांत वक्तव्य और पद्धतियों, सामग्री तथा मूल्यांकन के चयन के अर्थों में एक खास शैक्षिक लक्ष्य – लक्ष्यों के समुच्चय – को क्रियान्वित करने के लिए बनाया जाता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा या राज्य पाठ्यचर्या रूपरेखा के संदर्भ में एक ओर पाठ्यचर्या रूपरेखा और पाठ्चचर्या के बीच तथा दूसरी ओर पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम के बीच स्पष्ट फर्क करना जरूरी है। वस्तुतः राष्ट्रीय या राज्य स्तर पर सिर्फ रूपरेखा भर बनाना ही संभव है जबकि वास्तविक पाठ्यचर्या सचेतन या अचेतन रूप से, खास विद्यालय के विशिष्ट संदर्भ में ही आकार ग्रहण करती है। पाठ्यचर्या रूपरेखा में पाठ्यचर्या बीजक की परिभाषा के साथ–साथ उसकी बुनियादी अवधारणाएँ, दर्शन और मूल मान्यताएं शामिल रह सकती हैं। पाठ्यचर्या बीजक शिक्षा के लक्ष्यों और उद्देश्यों से शुरू करते हुए शिक्षण–अधिगम की विषयवस्तु और पद्धतियों तक पहुंचता है और अंततः मूल्यांकन सिद्धांत या तकनीकों तक विस्तारित हो जाना है। हालांकि शैक्षिक गतिविधियों को योजना, जो वास्तव में पाठ्यचर्या ही होती है, विद्यालय की अपनी अवस्थिति में ही ठोस शक्ल अख्तियार कर सकती है। राज्य पाठ्यचर्या रूपरेखा विद्यालयों में वास्तविक पाठ्यचर्या निर्माण के लिए पाठ्यपुस्तकें और सार्वजनिक परीक्षा प्रणाली जैसे शिक्षा के कतिपय अवयवों जिन्हें केंद्रीय रूप से निर्मित भी करना पड़ सकता है, पर ध्यान देने के अलावा व्यापक दिर्शानिर्दश और संभव हुआ तो उसके लिए उपकरण भी मुहय्या कर सकती है। तथापि जब कोई रूपरेखा बनाई जाए तो उसे सुस्पष्ट, पूर्ण और सांगोपांग होना चाहिए। न तो उसे अत्याधि आदेशात्मक होना चाहिए न व्याख्या तथा क्रियान्वयन के लिहाज से अस्पष्ट और कठिन। इसमें विद्यालय स्तर की विविधताओं से जुड़ने लायक लचीलापन रहना चाहिए और इसे अध्यापकों व अन्य संबंधित समूहों/अभिकर्त्ताओं की तैयारी के लिए रणानीतियाँ भी मुहैयाा करानी चाहिए। समूहों अभिकर्ताओं में पाठ्यपुस्तकों की तैयारी या सार्वजनिक परीक्षाओं के संचालन के कार्यभार में संलग्न लोगों को शामिल होना चाहिए।

गतिविधि

क्या आप अपने विद्यालय के लिए एक विशेष पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम का निर्माण कर सकते हैं? इसमें आप किन किन बातों का समावेश करेंगे जो वर्तमान पाठ्यचर्या में नहीं है, इसकी सूची बनाएं।

कभी–कभी 'पाठ्यक्रम' शब्द का प्रयोग, सीमित ढ़ंग में 'पाठ्यचर्या' के अर्थ में कर दिया जाता है। वास्तव में यह अपेक्षाकृत संकीर्ण शब्द है जिसका आशय है शिक्षण की विष्झयवस्तु का विशिष्ट आलेखन जो पाठ्यक्रम या परीक्षा की अवधि जैसे सावधिक मूल्यांकन तंत्र से जुड़ा होता है। पाठ्यचर्या अधिक अमूर्त श्रेणी है जबकि पाठ्यक्रम पाठ्यपुस्तकों के रूप में ठोस आकार ग्रहण कर लेता है।

वर्ष 2004 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने पर्यावरण शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या तैयार की थी। इसके निम्नांकित पाँच अवयव थे –

- अपेक्षित अधिगम परिणाम
- विषयवस्तु
- उदाहरणीय गतिविधियां
- शिक्षण–अधिगम रणनीतियां
- मूल्यांकन

सामान्यतः पाठ्यचर्या का अर्थ होता है सीखने–सिखाने के तमाम अवसरों एवं अनुभवों का क्रमबद्ध संयोजन। पाठ्यचर्या में विभिन्न प्रकार के ज्ञानों और कुशलताओं का समागम होता है, जो बालक के दृष्टिकोण के साथ–साथ दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्रीय दृष्टिकोण से आवश्यक होता है।

इसलिए पाठ्चर्या की व्यापक रूपरेखा में राष्ट्री शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के उपरिलिखित पांच के साथ निम्न अवयवों का होना भी अपेक्षित है :–

1. संरचना एवं सहयोगी संस्थाएँ
2. प्रशासनिक ढ़ाँचा
3. पाठ्यपुस्तक एवं अन्य शिक्षण अधिगम सामग्री

अन्ततः पाठ्यचर्या एक व्यापक अवधारणा है जिसके अन्तर्गत बालक के उन समस्त अनुभवों का उपयोग आता है जिन्हें वह स्कूल के अन्दर या बाहर प्राप्त करता है और जिसके द्वारा उसके व्यक्तिव का सम्पूर्ण विकास होता है।

विषयवस्तु अथवा पाठ्यक्रम पाठ्यचर्या में शामिल अनेक चीजों में से एक है, जो है तो निस्संदेह काफी महत्वपूर्ण लेकिन सिर्फ पाठ्यक्रम के लिए चिंता शिक्षा के संपूर्ण उद्देश्य या शिक्ष्ज्ञण–अधिगम प्रक्रिया के महत्व को नजरों से ओझल कर देती है।

बिहार के लिए पृथक पाठ्यचर्या क्यों?

बिहार में पाठ्यक्रम का निर्माण और संशोधन तो समय–समय पर होता रहा है, लेकिन अतीत में अपनी खुद की पाठ्यचर्या बनाने पर कभी भी गंभीरतापूर्वक विचार नहीं किया गया। यहाँ तक कि बुनियादी शिक्षा के संदर्भ में भी, जो चंपारण में गांधी जी के शैक्षिक प्रयोग के विचार की उत्पत्ति के समय से ही बिहार में अत्यंत जीवंत रहा था, शिक्षाशास्त्रीय बहसें पाठ्यचर्या निमार्ण के प्रयास से असंपृक्त बनी रहीं। बहरहाल यह गौरतलब है कि बुनियादी शिक्षा की प्रणाली में अत्यंत विशिष्ट और सुविचारित पाठ्चर्या रणनीति समाविष्ट थी। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2000 को लेकर उठे विवादों और उसके बाद राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 के बारे में व्यापक सलाह–मशविरों और बहसों के बाद, अब बिहार में अपनी खुद की पाठ्यचर्या बनाने की जरूरत महसूस हुई है।

बहरहाल, यहाँ इस आवश्यकता के पीछे मौजूद मूल कारणों को बताना उचित होगा, खास कर तब, जब राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने एक बड़े प्रयास के बाद पाठ्चर्या के बारे में काफी ज्ञानवर्धक दस्तावेज तैयार किया है। ज्ञातव्य है कि इस कार्यभार के लिए 21 राष्ट्रीय फाकस ग्रुप बनाए गए थे, जिनमें अनेक बड़ी हस्तियों को लेकर गठित 35 सदस्यीय राष्ट्रीय संचालन समिति के अतिरिक्त विभिन्न विषयों के और भी कई विशेषज्ञ शामिल थे।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारणों में एक है पाठ्यसंदर्भ की प्रासंगिकता का मुद्दा। बिहार अपनी सांस्कृतिक विविधता के अर्थ में भारत का एक छोटा प्रतिरूप प्रतीत हो सकता है, फिर भी इसकी पाठ्यचर्या में यहाँ की सांस्कृतिक विशिष्टता अवश्य प्रतिबिंबित होनी चाहिए। ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि इस राज्य में शहरीकरण का स्तर मात्र 10.47% है (2001 की जनगणना) जो राष्ट्रीय औसत 27.78% से काफी नीचे है और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 जैसा दस्तावेज शहरी मध्यवर्गीय बच्चों को ध्यान में रखकर बनाया गया प्रतीत होता है। सबसे बड़ी शहरी आबादी होने के बावजूद राजधानी पटना अभी तक महानगरों में शुमार नहीं हो पाया है। छोटे शहरों के बारे में तो कहना ही क्या, जिसका चरित्र ग्रामीण से ज्यादा अलग नहीं बन सका है। आज जिन बच्चों को विद्यालयों के दायरे में लाने की कोशिशें हो रही हैं उनमें बड़ी तादाद में पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी हैं जो अपने घरों में बोली जाने वाली स्थानीय बोली बोलते हैं। विद्यालयों में अधिसंरचनात्मक सुविधाओं का स्तर समान्यता अत्यंत निम्न है, जो अध्यापकों की दीर्घकालिक किल्लत के चलते और नीचे गिर गया है। इसके अलावा, बिहार की अन्य दूसरी समस्याएं भी हैं, जैसे कि उत्तर बिहार में बाढ़ की विभीषिका तथा बिहार के अनेक हिस्सों, खास कर दक्षिण बिहार में हिंसा और अंतःसंघर्ष, जो समाजिक जीवन की लाक्षणिकता बन गए हैं। समाज का सामंती चरित्र भिन्न किस्म की शिक्षाशास्त्रीय चुनौती खड़ी करने में रोड़े अटका रहा है। कुल मिलाकर बिहार में पाठ्यचर्या निर्माताओं के समक्ष मौजूद चुनौतियाँ अनेक रूपों में अनूठी और जटिल हैं और इसीलिए वे बिल्कुल केन्द्रित प्रयास की मांग करती हैं। बहरहाल, राज्य के लिए पाठ्यचर्या निर्माण के उसूल सूत्रबद्ध करने से पहले राज्य के सामाजिक, आर्थिक व शैक्षिक परिदृश्य पर गहरी दृष्टि डाल देना आवश्यक होगा।

गतिविधि

क्या पाठ्यचर्या या पाठ्यक्रम में वैसी बातें भी हो सकती हैं जिनका बच्चों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है? अपने विद्यालय की पाठ्यचर्या का आलोचनात्मक विश्लेषण करके कुछ उदाहरणों की मदद से समझाएं। अपने विश्लेषण को अध्ययन केन्द्र पर साझा करें।

बिहार – परिदृश्य और संभावनाएं

बिहार देश का एक सबसे पिछड़ा राज्य माना जाता है। शिक्षा समेत मानवीय विकास के लगभग तमाम सूचकों के लिहाज से यह सबसे निचले पायदान पर खड़ा है। आजादी के समय बिहार में साक्षरता की दर राष्ट्रीय औसत 18.2% के मुकाबले 16.7% थी। 2001 की जनगणना के मुताबिक जहां देश में साक्षरता की दर 65.38% हो गई, वहीं बिहार में वह 47.53% तक ही पहुंच सकी। 2001 की जनगणना के अनुसार उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र के बाद तीसरा सबसे बड़ी आबादी (लगभग 8.29 करोड़) वाला राज्य है। यहाँ का समाज प्रधानतः खेतिहर है। इसकी 89% आबादी गाँवों में निवास करती है, जहाँ निरक्षता, गरीबी और बेरोजगारी चतुर्दिक पसरी हुई है।

सातवें अखिल भारतीय शिक्षा सर्वेक्षण (2002) के अनुसार, राज्य के स्कूल जाने वाली उम्र (6–14 वर्ष) के बच्चों की संख्या 204.48 लाख पाई गई जिसमें लड़के 108.36 लाख और लड़कियां 96.12 लाख थीं।

वर्ष 2002 में बिहार में 6 से 11 वर्ष की उम्र के 130.88 लाख बच्चे थे, जिनमें 62.07 लाख लड़कियां थीं। इतनी बड़ी आबादी, जिसे प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ना चाहिए था, इस राज्य में समस्या की विशालता की सूचक हैं। इसमें ग्रामीण बच्चों की तादाद लगभग 90% थी और नीति निर्माताओं को इस पहलू पर भी ध्यान देना पड़ेगा।

1993 और 2002 के बीच बिहार में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में 10.42% की वृद्धि हुई जबकि राष्ट्रीय स्तर पर यह वृद्धि 12.91% दर्ज हुई। किंतु उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में 1.2% की क्षीण वृद्धि राष्ट्रीय स्तर पर 50.6% की वृद्धि के साथ चरम विरोधाभास प्रदिर्दित करती है। यह दिखलाती है कि जहां प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के सर्वव्यापीकरण से प्रारंभिक स्तर पर सर्वव्यापीकरण की दिशा में बढ़ने के प्रयास राष्ट्रीय स्तर पर जारी है, वहीं बिहार में प्राथमिक स्तर से आगे जाने का प्रयास किया जना अभी भी बाकी है। सातवें शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार 30 सितंबर 2002 की नीति तक प्राथमिक विद्यालय 40,511 और उच्च प्राथमिक विद्यालय 9,733 थे। यह बताया जाना जरूरी है कि ये आंकड़े सिर्फ सरकारी विद्यालयों से संबंधित हैं। निजी विद्यालय बिहार बिहार भर में फैले हुए हैं और इन विद्यालयों के वृद्धि के बारे में लेखा–जोखा रखना मुश्किल काम है।

प्राथमिक विद्यालयों की बहुत बड़ी संख्या (93.96%) ग्रामीण इलाकों में अवस्थित है। किंतु ग्रामीण इलाकों में इतनी भारी तादाद में विद्यालयों की मौजूदगी के बावजूद उनमें बच्चों के जाने और टिके रहने की स्थिति में कोई सुधार नहीं हो सका है। बिहार में छीजन दर राष्ट्रीय औसत से काफी ऊंची है। यहाँ के प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों में सकल नामांकन अनुपात क्रमशः 73.52% और 24.48% है (2002–2003), जबकि राष्ट्रीय स्तर पर यह अनुपात क्रमशः 95.39% और 60.99% था। प्राथमिक विद्यालयों में अधिसंरचनात्मक सुविधाएं बच्चों के नामांकन और उनके टिके रहने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण कारक हैं। इनमें विद्यालय भवन, मनोरंजन के साधन और बुनियादी सुविधाएं शामिल हैं। यह विडंबना है कि सातवें अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार बिहार में अभी भी 2,500 से ज्यादा प्राथमिक विद्यालय खुले आकाश तले और तंबुओं में चल रहे हैं। सिर्फ 62% विद्यालयों में कक्षा की निबधि संचालन के लिए उपयुक्त पक्के भवन मौजूद हैं। इस मामले में राष्ट्रीय आंकड़ा भी महज 65% है, जो किसी भी तरह प्रभावशाली नहीं है।

यह हर्ष का विषय है कि हाल में बिहार में कई नई पहल हुई हैं और शिक्षा का परिदृश्य बदलने लगा है। नये विद्यालय खुल रहे हैं, बड़े पैमाने पर शिक्षकों की बहाली हुई है और विद्यालयों की आधारभूमत संरचना में भी सुधार हो रहा है। फरवरी 2006 में शिक्षा पर एक विशेषज्ञ समिति का गठन हुआ जिसमें स्कूली शिक्षा में सुधार के लिए कई अनुशंसाएँ जिनमें सामान्य स्कूल प्रणाली की सिफारिश भी शामिल है।

गतिविधि

जरा पता करें कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 और बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008 के विषयवस्तु में क्या अंतर है। दोनो दस्तावेजों के विषय सारणी का अवलोकन करके बताएं।

बिहार में शिक्षा का सामाजिक संदर्भ

आजकल प्रचलित आर्थिक विकास के लगभग तमाम प्रमुख मापदंडों के आधार पर बिहार को पिछड़ा राज्य माना जाता है, तथापि इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि वृद्धि और विकास की यहाँ जबर्दस्त संभावना मौजूद है। राज्य के अनेक समाज विज्ञानिकों के लिए इसकी व्याख्या करना आसान नहीं होगा कि देश के अर्थतंत्र और बेहतरी के लिए बिहार कितने अप्रत्यक्ष तरीकों से योगदान कर रहा हैं बिहार के लोग विभिन्न क्षेत्रों और देशों में उत्कृष्ट प्रदर्शन कर रहे हैं, लेकिन अपनी धरती पर हो कुछ चूक रह जा रही है जिसको जांचने और सुधारने की जरूरत है। शिक्षा इस स्थिति को ठीक करने का सबसे तर्कसंगत उपाय साबित हो सकती है।

बिहार में शिक्षा के समकालीन संदर्भ को निम्नलिखित तरीके से श्रृंखलाबद्ध करना उपयोगी हो सकता है:

(1) बिहार में अभी भी सामाजिक सोच पर जातिआधारित श्रेणीक्रम की गहरी पकड़ है जो जीवन और समाज के तमाम पहलुओं को प्रभावित करता है, तथा समानता और स्वतंत्रता के मूल्य के आड़े आता है।

(2) ऐसी समाज व्यवस्था में शैक्षिक संस्थाओं का भी श्रेणीक्रम उभरा है जो विद्यमान असमानताओं को जारी रखने में ही सहायक है। गरीब तबकों को शामिल करने वाली राज्य संपोषित संस्थाओं की स्थिति जर्जर है।

(3) बिहार में गरीबी और आर्थिक पिछड़ापन का व्यापक विस्तार है जो अनसुलझे सामाजिक तनाव और उबलते विक्षोभ की ओर अग्रसर है, खास कर ग्रामांचलों में, जहां अभी भी नब्बे फीसदी आबादी रहती है।

(4) विरोध, अव्यवस्था और अवज्ञा अपने–आप में मूल्य से बन चुके हैं तथा व्यवस्थित और संतुलित सामाजिक रूपांतरण की राम में अवरोध पैदा कर रहे हैं।

(5) दूसरी तरफ, देश वैश्वीकरण और प्रौधोगिकीय परिवर्तन के युग में प्रवेश कर रहा है और प्रारंभिक शिक्षा वादा से मांग की ओर बढ़ते हुए संपूर्ण मौलिक अधिकार के रूप में विकसित हो गई है।

उपर्युक्त स्थिति उथल–पुथल भरे समाज की द्योतक है जहां फौरी सामाजिक हस्तक्षेप अत्यावश्यक है और इसीलिए राज्य के लिए पाठ्यचर्या बनाते समय इन कारकों को नजर में रखना जरूरी है। सौभाग्यवश, राज्य के प्रचुर सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संसाधन उपलब्ध हैं जिनका इस्तेमाल इसको मौजूदा दलदल से निकालने के लिए किया जा सकता है। उत्तर बिहार के पूर्वी हिस्से में जहां अति समृद्ध मिथिला संस्कृति विद्यमान है वहीं पश्चिम की तरफ भोजपुरी भाषी क्षेत्र का बड़ा भाग है जो राज्य के बाहर तक फैला हुआ है। मगध अंचल की अपनी भाषा और संस्कृति है और वैसी ही स्थिति भागलपुर के इर्दगिर्द के क्षेत्र की है जहां अंगिका बोलचाल की भाषा है। हर अंचल में कला की विभिन्न शैलियों का अपना समृद्ध भंडार है, संस्कृति व ऐतिहासिक पहचान का अपना बोध है। एक अर्थ में कहें तो सांस्कृतिक बहुलता के अपने खुद के संस्करण वाला बिहार भारत का एक छोटा प्रतिरूप है।

राजनीतिक चेतना के लिहाज से बिहार का समाज चौकस और सक्रिय है, हालांकि उसका ढंग हमेशा जिम्मेदाराना नहीं रहता। लोगों की ऊर्चा को दिशाबद्ध करने की जरूरत है और विद्यालय ऐसे प्रशिक्षण के लिए सबसे उपयुक्त स्थल साबित हो सकते हैं।

बिहार में स्कूली शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्य

मनुष्य के निजी व्यक्तित्व या संपूर्ण समाज को आकार देने में शिक्षा एक प्रभावकारी माध्यम है। यह सच है कि मनुष्य का व्यक्तित्व बहुतेरे कारकों से प्रभावित होता है जिसमें वह पारिवारिक और सामुदायिक वातावरण भी शामिल हैं, जिसमें बच्चा पलता–बढ़ता है तथा वे स्थितियां जिसके संसर्ग में वह आता है। इसके बावजूद अच्छी संस्था मनुष्य के व्यक्तित्व पर अमिट छाप छोड़ती है और संस्थाएं व्यक्तित्व के विकास में सहायक हो सकती हें और होती भी हैं। दूसरी ओर, किसी समाज के अधिकांश सदस्य अगर कुछ वर्षों के लिए स्कूली शिक्षा प्राप्त न करें तो वह समाज ऊंचाइयों पर नहीं जा सकते। अपनी व्यापक पहुंच के कारण विद्यालय आधुनिक युग में मूल्यों, खास कर नए मूल्यों (जैसे पर्यावरण के प्रति सौन्दर्यबोध, मानवाधिकारी, अभिवंचित वर्गों की शिक्षा आदि) के सृजन और संप्रेषण के सबसे उपयुक्त स्थल बन गए हैं। निस्संदेह, एक प्रणाली के बगैर विद्यालय हमेशा के लिए प्रभावी नहीं भी हो सकते हैं और वर्तमान इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जैसे अधिक प्रभावशाली स्रोतों से पीछे भी छूट जा सकते हैं। इन तमाम संभावित सीमाओं के बावजूद यह जरूरी है कि विद्यालयों के सम्मुख शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्य स्पष्ट रहें ताकि वे उपयुक्त उद्देश्य और दिशा से साथ अपनी शैक्षिक गतिविधियां और कार्यक्रमों का निरूपण कर सकें।

प्रथमतः विद्यालय सीखने के स्थल हैं और इसीलिए विद्यालयों का उद्देश्य प्रेरणा देना और सीखने के अवसरों में अधिकतम वृद्धि करना होना चाहिए। इस तथ्य के साथ, कि हम दुत परविर्तन के काल में रह रहे हैं, बच्चों को विद्यालयों में ज्ञानार्जन की कला सीखनी चाहिए और सतत नवीन ज्ञान हासिल करने की भावना अपनानी चाहिए ताकि वे नई परिस्थितियों के अनुसार खुद को सृजनात्मक और लचीले ढंग से ढाल सकें। फिर, सीखने का मतलब महज कुछ तथ्यों और धारणाओं की जानकारी हासिल करना भर नहीं होताः इसका मतलब अभिप्राय–निर्माण की क्षमता का विकास होता है जो उसके चारों ओर की दुनिया को समझने में सहायक हो सके। साथ ही, विद्यालय बच्चों को जो चीजें सीखने के काबिल बनाना चाहता है, उसमें विविध कुशलताओं की प्राप्ति और वांछित मूल्यों का सृजन शामिल रहना चाहिए। यद्यपि बालकेंद्रित अधिगम के विचार में यह बात निहित है कि बच्चों के बीच सीखने की गति और ढर्रे में फर्क हो सकता है लेकिन कुछ बुनियादी मूल्य और कौशल ऐसे हैं जिन्हें हर बच्चे को विद्यालय में रहते हुए देर–सवेर अवश्य सीखना चाहिए। उदाहरणार्थ, खुद से सोचने–विचारने और व्यक्तिगत जिम्मेदारी के साथ आचरण करने में समर्थ होना हर बच्चे से अपेक्षित है। उसी प्रकार, कला का अनुसरण करने की सबकी क्षमता भिन्न–भिन्न हो सकती है, तथापि सौंदर्य और कला रूपों का विवेचन सृजित व्यक्तित्व की मौलिक विशेषता होनी चाहिए। हर बच्चे का सौंदर्यबोध विकसित करना चाहिए और उसे इस तरीके से सृजनात्मक बनाना चाहिए जो उसके व्यक्तित्व के अनुरूप हो। सत्योनिष्ठा, ईमानदारी, साहस या आत्मविश्वास ऐसे गुण हैं जनकी हमेशा से कद्र की जाती रही है और आज की शिक्षा प्रणाली भी इनकी उपेक्षा करके नहीं चल सकती है।

शिक्षा का उद्देश्य एक व्यक्ति के बतौर बच्चे के व्यक्तित्व के विकास के साथ–साथ सामाजिक मूल्यों का संवर्घन भी होना चाहिए। भारतीय संविधान लोकतांत्रिक समाज का निर्माण करना चाहता है जिसमें हमारे परंपरागत समाज के कतिपय अन्यायपूर्ण/भेदभावपूर्ण मूल्यों (जैसे– लिंग–भेद, रूढ़िवाद, बाल श्रम आदि) की जगह एक नई मूल्य प्रणाली कायम हो सके। दुर्भाग्यवश बिहार के समाज में इन अन्यायपूर्ण मूल्यों की मजबूत उपस्थिति बनी हुई है। संविधान सभी नागरिकों के लिए समान हैसियत और अवसर की गारंटी करता है और इसीलिए एक श्रेणीबद्ध समाज को समतामूलक सामाजिक व्यवस्था में बदलने के लिए शिक्षा को रूपांतरकारी भूमिका अदा करनी होगी। तब इसका मतलब होगा दलितों, महिलाओं या समाज के निर्धन

तबकों के प्रति उचित सम्मान व्यक्त करना। संविधान को प्रस्तावना के अनुसार हम हर व्यक्ति के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक– हर तरह का न्याय सुनिश्चित कराने के प्रति संकल्पित है। इसी प्रकार, चिंतन और क्रियाकलाप की स्वतंत्रता तथा सबके बीच भाईचारे का विचार भी संविधान में प्रतिष्ठापित बुनियादी मूल्य हैं। धर्मनिरपेक्षता संविधान की एक अन्य मौलिक विशेषता है जिसका तात्पर्य है तमाम आस्थाओं के प्रति समान रूप से सम्मान और बच्चों को अपने स्कूली जीवन में यह अवश्य सीखना चाहिए। वस्तुतः बच्चों को अपने देश तथा राज्य की समृद्ध और विविध रूपात्मक संस्कृति के बारे में भी अवगत होना चाहिए और अपनी विविधता और बहुसांस्कृतिकता की समझ भी हासिल करनी चाहिए। तथापि, होना यह चाहिए कि विभिन्न विश्वास प्रणालियों और सांस्कृतिक विरासत के लिए सम्मान बच्चों को रूढ़िवाद की ओर अग्रसर न करे, बल्कि नई प्राथमिकताओं और उभरती जरूरतों के संदर्भ में उनके अंदर आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन और पुनर्व्याख्या की गुंजाइश पैदा करे। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 में माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952) द्वारा निरूपित लोकतंत्र की इस दृष्टि पर सही ध्यान दिया गया है :

> ''लोकतंत्र में नागरिकता अनेक बौद्धिक, सामाजिक तथा नैतिक गुणों का समावेश करती है.. ...... लोकतांत्रिक नागरिक में मिथ्या और सत्य के बीच, प्रचार और तथ्य के बीच विभेद करने तथा हठधर्मिता और पूर्वाग्रह के खतरनाक आकर्षण को खारिज करने की समझ और बौद्धिक ईमानदारी होनी चाहिए........ पुराने को पुराना कहकर खारिज नहीं करना चाहिए बल्कि विवेकपूर्ण ढंग से दोनों की जांच–परख करनी चाहिए और उन चीजों को साहसपूर्वक ठुकराना चाहिए जो न्याय और प्रगति की ताकतों को अवरोधित करती है.......''

गतिविधि

क्या पाठ्यक्रम के उद्देश्यों पर किसी खास सामाजिक वर्ग का दबाव भी रहता है, इस संदर्भ मे अपने विद्यालय के पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण करके उदारहणों को ढुंढे और अपने अध्ययन केन्द्र पर एक परिचर्चा का आयोजन करें।

वास्तव में जिन मूल्यों का विकास विद्यालयों का लक्ष्य है, बाहरी दुनिया के अनेक विरोधी प्रभावों से अगर हमारे विद्यालयों को होड़ लेना है, तो बच्चों को अपने ही समाज में मौजूद बुराई के खिलाफ भी साहस और धैर्य के साथ लड़ना सीखना पड़ेगा। अब्राहम लिंकन द्वारा एक शिक्षा को लिखे पत्र की ये पंक्तियाँ यहाँ उल्लेखनीय हैं :

मै जानता हूं, उसे सीखना होगा
कि हर आदमी न्यायपूर्ण नहीं है,
कि सब लोग सही भी नहीं हैं।
लेकिन उसे यह भी सिखाओं
कि हर शैतान के लिए एक नायक होता है
कि हर स्वार्थी राजनीतिज्ञ के लिए
होता है एक समर्पित रहनुमा ....

बच्चे को अव्वल तो खुद अपने साथ और फिर प्रकृति व समाज के साथ सामंजस्य बनाकर रहना सीखना पड़ेगा। पर्यावरण क्षरण में हाल–फिलहाल हुई वृद्धि की स्थिति में प्रकृति के साथ सामंजस्य का बोध बच्चों को प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति संवेदनशील और फलतः उसके संरक्षण के लिए तत्पर बनाएगा। इस प्रकार की शिक्षा बच्चे के अंदर टिकाऊ किस्म के मानव विकास का परिप्रेक्ष्य पैदा करेगा जो लोगों की बेहतरी के विचार का सामंजस्य प्रकृति के संरक्षण के साथ बिठाता है। दूसरी ओर, समाज में सामंजस्य का अनुसरण शांति और अहिंसा के विचार की ओर ले जाता है जो आज की कलह–जर्जर दुनिया में एक महत्वपूर्ण आदर्श है।

गतिविधि

आज की शिक्षा नीतियां के माध्याम से पाठ्यक्रम को संदर्भगत बनाने पर क्यों अधिक जोर दिया जा रहा है? बिहार पाठ्यचर्या से लिए गए उपरोक्त विवरण के आधार पर इस राज्य की विशेषताओं के कुछ ऐसे पक्षों को उजागर करें, जिसके कारण संदर्भगत पाठ्यक्रम की प्रासंगिकता बढ़ जाती है। इसके लिए आप अपने आस–पास के ऐसे स्थानीय ज्ञान के उदाहरण दें जिनको स्कूली पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाने से संदर्भगत पाठ्यक्रम की अपेक्षा को पूरा किया जा सकता है?

यदि बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008 से थोड़ा पीछे चलें तो आप राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 को पाएंगे जिसने बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008 के लिए एक आधारभूत दस्तावेज का काम किया। आगे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 से कुछ अंशों को दिया जा रहा है जो पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम के संदर्भ में कुछ मूलभूत बातों की चर्चा करते हैं। बीच बीच में कुछ प्रश्नों को भी उठाया गया है ताकि आप इस दस्तावेज के नीतिगत पहलूओं को अपने विद्यालय के संदर्भ में समझ सकें।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की इन सिफ़ारिशों के बावजूद कि विभिन्न अवस्थाओं में पोषित व विकसित की जाने वाली दक्षताओं व मूल्यों की पहचान की जाए, स्कूली शिक्षा उन परीक्षाओं द्वारा और अधिक परिचालित होती चली गई जो महज़ जानकारी से भरी पाठ्यपुस्तकों पर आधारित होती हैं। वर्ष 2000 में पाठ्यचर्या की रूपरेखा की समीक्षा के बाद भी पाठ्यचर्या के और परीक्षाओं की तानाशाही के विवादास्पद मुद्दे हल न हुए। वर्तमान समीक्षा इस क्षेत्र में हुए सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तनों पर ध्यान देती है और नयी सदी के मोड़ पर स्कूली शिक्षा की भावी आवश्यकताओं को संबोधित करने का प्रयास करती है। इस प्रयास में अनेक परस्पर संबंधित आयामों को ध्यान में रखा गया है; जैसे – शिक्षा के लक्ष्य, बच्चों का सामाजिक परिप्रेक्ष्य, ज्ञान की प्रकृति, मानव विकास की प्रकृति और मनुश्य की सीखने की प्रक्रिया।

'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा' को प्रायः गलत समझा गया है मानो यह एकरूपता लाने के लिए प्रस्तावित दस्तावेज़ हो। जबकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन.पी.ई.) 1986 और प्रोग्राम ऑफ़ एक्षन (पी.ओ.ए.), 1992 में स्पश्ट किया गया उद्देश्य इसके ठीक विपरीत था। एन.पी.ई. ने नवीन पाठ्यचर्या की रूपरेखा प्रस्तावित की ताकि वह ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के विकास का ज़रिया बने जिसमें यह सामर्थ्य हो कि वह भारत के

भौगोलिक एवं सांस्कृतिक वातावरण को दृष्टि में रखते हुए अकादमिक घटकों के साथ सामान्य आधारभूत मूल्य भी सुनिश्चित करे। ''एन.पी.ई.– पी.ओ.ए. ने 14 वर्ष की आयु तक सभी बच्चों का सार्वभौमिक नामांकन तथा सार्वभौमिक रूप से उन्हें स्कूलों में टिकाए रखने और स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में ठोस सुधार के लिए

बाल केंद्रित उपागम का विचार प्रस्तुत किया था''(पी.ओ.ए. पृष्ठ 77)। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा की खासियत के रूप में प्रासंगिकता, लचीलापन तथा गुणवत्ता पर बल देते हुए पी.ओ.ए. ने एन.पी.ईकी इसी दृष्टि को विस्तारित किया है। इस प्रकार इन दोनों दस्तावेज़ों ने राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा की परिकल्पना शिक्षा व्यवस्था को आधुनिक बनाने के साधन के रूप में की।

गतिविधि

उपरोक्त विवरण में जिन–जिन दस्तवेजों का उल्लेख किया गया है, उनके विषय में और जानकारी एकत्र करें और अपने अध्ययन केन्द्र पर साझा करें।

मार्गदर्शक सिद्धांत

हमें व्यवस्थागत मुद्दों पर ध्यान देने व उन्हें नियोजित करने की आवश्यकता है जिससे हम उन अनेक अच्छे विचारों को कार्यान्वित कर सकें जिनके बारे में पहले भी बात की जा चुकी है। इनमें सबसे अहम हैं :

- ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ना,
- पढ़ाई रटंत प्रणाली से मुक्त हो, यह सुनिश्चित करना,
- पाठ्यचर्या का इस तरह संवर्धन कि वह बच्चों को चहुँमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाए बजाए इसके कि वह पाठ्यपुस्तक–केंद्रित बन कर रह जाए,
- परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना, और
- एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य–व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय चिंताए समाहित हों।

वर्तमान संदर्भ मे कुछ नए बदलाव, नए सरोकार पैदा हुए हैं जिन्हें पाठ्यचर्या को संबोधित करना ही चाहिए। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है, सभी बच्चों को एक ऐसे कार्यक्रम के ज़रिए स्कूलों से जोड़ना तथा उन्हें वहाँ टिकाए रखना जो हर बच्चे की महत्ता को फिर से दृढ़ करने को महत्त्वपूर्ण समझे और सभी बच्चों को उनकी गरिमा का एहसास कराए तथा उनमें सीखने का विष्वास जगाए। पाठ्यचर्या की रूपरेखा में सार्वभौमिक प्रारंभिक शिक्षा (यू.ई.ई.) के लिए प्रतिबद्धता भी दिखनी चाहिए, केवल सांस्कृतिक विविधता के प्रतिनिधित्व के रूप में ही नहीं बल्कि यह सुनिश्चित करके भी कि विभिन्न सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमियों से आए विभिन्न शारीरिक, मनोवैज्ञानिक व बौद्धिक विशेषताओं वाले बच्चे स्कूल में सीखने व सफलता प्राप्त करने में समर्थ हों। इस संदर्भ में लिंग, जाति, भाषा, संस्कृति, धर्म या असमर्थता से जनित असमानताओं के परिणामस्वरूप शिक्षा में आई प्रतिकूलताओं को सीधे संबोधित करने की आवश्यकता है, नीतियों व योजनाओं के माध्यम से ही नहीं बल्कि आरंभिक बाल्यावस्था से ही अधिगम कार्य की रूपरेखा बनाने एवं चुनने तथा शिक्षाशास्त्रीय अभ्यास के ज़रिए भी।

गतिविधि

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 में सुझाए गए मार्गदर्शक सिद्धांतों पर गौर करें और यह विश्लेषण करें कि अपने विद्यालय के सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में वे किस प्रकार से शामि हैं या नहीं हैं।

सार्वभौमिक प्रारंभिक शिक्षा (यू.ई.ई.) हमें इस बात से अवगत कराती है कि पाठ्यचर्या में विस्तार करके उसमें ज्ञान, कार्य एवं षिल्प की विभिन्न परंपराओं की समृद्ध विरासत को शामिल करना भी आवष्यक है। इनमें से कुछ परंपराएँ आज अर्थव्यवस्था के भूमंडलीकरण के संदर्भ में बाज़ार के दबाव और ज्ञान के वस्तु बन जाने से प्रस्तुत गंभीर संकट से जूझ रही हैं। आत्म–सम्मान व नैतिकता का विकास और बच्चों में रचनात्मकता के पोषण की आवश्यकता को प्राथमिकता मिलनी चाहिए। तेज़ी से बदलती और प्रतिस्पर्द्धी वैष्विक अर्थव्यवस्था के संदर्भ में यह आवष्यक है कि हम बच्चों की जन्मजात बुद्धि व कल्पना का आदर करें।

विकेंद्रीकरण और पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका पर बल देना हाल ही में शिक्षा में हुए व्यवस्थागत सुधारों के कुछ प्रमुख कदम हैं। पंचायती राज संस्थाएँ व्यवस्था में दफ्तरशाही का दबाव कम करती हैं, शिक्षकों को अधिक उत्तरदायी, विद्यालयों को अधिक स्वायत्त एवं बच्चों की आवश्यकताओं के प्रति सजग बनाती हैं। इन कदमों के साथ स्थानीय पर्यावरण और जीवन के बीच संगति बिठाने की भी आवष्यकता है। बच्चे काफी कुछ सहजता से अपने परिवेष में बड़े होते हुए सीख लेते हैं। वे अपने आस–पास के जीवन व दुनिया पर भी नज़र रखते हैं। जब उनके अनुभवों को कक्षा में लाया जाएगा, तो उनके प्रष्नों, उनकी जिज्ञासाओं से पाठ्यचर्या अधिक समृद्ध और रचनात्मक बनेगी। इन सुधारों से स्वीकृत पाठ्यचर्या के सिद्धांतों कृ 'ज्ञात से अज्ञात की ओर', 'मूर्त से अमूर्त की ओर' और 'स्थानीय से वैष्विक की ओर' को बल मिलेगा। इस उद्देष्य के लिए स्कूली षिक्षण के सभी आयामों में विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र को अपनाने की आवष्यकता है, जिनमें षिक्षक षिक्षा भी षामिल है। उदाहरण के लिए उत्पादक कार्य प्रभावी षिक्षण का माध्यम बन सकते हैं, अगर (क) कक्षा के ज्ञान को बच्चों के जीवन–अनुभव से जोड़ा जाए; (ख) हाशिए के समाजों के बच्चों को, जिन्हें काम से जुड़े कौषल का ज्ञान होता है, अपने संपन्न साथियों का मान–सम्मान पाने का अवसर मिल सकेगा; और (ग) संचित मानवीय अनुभव, ज्ञान और सिद्धांतों को इस प्रकार संदर्भित किया जा सकेगा। बच्चों को पर्यावरण व पर्यावरण संरक्षण के प्रति संवेदनषील बनाना भी पाठ्यचर्या का एक महत्त्वपूर्ण सरोकार है। पिछली सदी में उभरे नए तकनीकी विकल्प व जीवनषैली से पर्यावरण को नुकसान पहुँचा है और परिणामस्वरूप सुविधासंपन्न व सुविधारहित वर्गों के बीच गहरा असंतुलन आ गया है। अब यह पहले से कहीं अधिक अनिवार्य हो गया है कि पर्यावरण का पोषण व संरक्षण किया जाए। शिक्षा इसके लिए आवष्यक परिप्रेक्ष्य दे सकती है कि मानव जीवन का पर्यावरण संकट के साथ सामंजस्य कैसे बैठाया जा सकता है ताकि जीवन, विकास व संवर्धन संभव हो सके। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 ने इस आवश्यकता पर ज़ोर दिया कि पर्यावरण को शिक्षा के सभी स्तरों पर व समाज के सभी वर्गों के लिए समाहित कर पर्यावरण संबंधी सरोकार के प्रति जागरूकता पैदा की जाए।

अपने भीतर व अपने प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करते रहना एक मूल मानवीय आवश्यकता है। एक व्यक्ति के व्यक्तित्व का भलीभांति विकास एक ऐसे माहौल में ही संभव हो सकता है जो शांतिपूर्ण हो। एक अशांत प्राकृतिक व सामाजिक वातावरण अक्सर मानव संबंधों में तनाव लाता है जिससे असहिश्णुता व संघर्ष पैदा होता है। हम अभूतपूर्व हिंसा के युग में जी रहे हैं जो स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय व वैष्विक है। ऐसे में शिक्षा प्रायः एक अकर्मक भूमिका या यहाँ तक कि युवा मस्तिश्क को असहिश्णुता की संस्कृति का पाठ पढ़ा कर घातक भूमिका निभाती है जिससे मानवीय भावनाओं व विभिन्न सभ्यताओं द्वारा खोजे गए उदात्त सत्य नकारे जाते हैं। शांति की संस्कृति का निर्माण करना शिक्षा का निर्विवाद उद्देश्य है। शिक्षा सार्थक तभी हो सकती है जब वह व्यक्ति को इतना समर्थ बनाए ताकि वह शांति

को जीवन शैली के रूप में चुन सके और संघर्श को सुलझाने की क्षमता रखे न कि केवल संघर्श का एक निश्क्रिय दर्षक बने। स्कूली पाठ्यचर्या के एक एकीकृत परिप्रेक्ष्य के रूप में शांति की अवधारणा को रखने पर इसमें राश्ट्र को स्वस्थ रखने व ऊर्जा प्रदान करने की क्षमता है।

भारत विविध संस्कृतियों वाला समाज है जो अनेक प्रादेषिक व स्थानीय संस्कृतियों से मिल कर बना है। लोगों के धार्मिक विश्वास, जीवन शैली व सामाजिक संबंधों की समझ एक–दूसरे से बहुत अलग है। सभी समुदायों को सह–अस्तित्व व समान रूप से समृद्ध होने का अधिकार है और शिक्षा व्यवस्था को भी हमारे समाज में निहित इस सांस्कृतिक विविधता के अनुरूप होना चाहिए। अपनी सांस्कृतिक विरासत और राष्ट्रीय अस्मिता को सुदृढ़ करने के लिए पाठ्यचर्या ऐसी होनी चाहिए कि वह युवा पीढ़ी को इसके लिए सक्षम बना सके कि वह नयी प्राथमिकताओं व बदलते सामाजिक संदर्भ में उभरते दृश्टिकोणों के परिप्रेक्ष्य में अतीत का पुनर्मूल्यांकन व पुनर्व्याख्या कर पाए। मानव–विकास की समझ के आधार पर यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि हमारे देष में विविधता का अस्तित्व दरअसल हमारे यहाँ की उस विशिष्ट चेतना का सुफल है जिसने उसे फलने–फूलने का पर्याप्त अवसर दिया। इस भूमि की सांस्कृतिक विविधता को हमारी विषिश्टता की तरह संजोए रखना चाहिए। इसे केवल सहिश्णुता का परिणाम नहीं समझा जाना चाहिए। इस संदर्भ में युवा पीढ़ी में अपने कर्त्तव्यों एवं अधिकारों के प्रति एक नागरिक चेतना व संविधान में निहित सिद्धांतों के प्रति प्रतिबद्धता की रचना पूर्वापेक्षित है।

(स्रोत : राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005, पृष्ठ संख्या 4–5)

गतिविधि

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 में जिन मार्गदर्शक सिद्धांतों की चर्चा की गई, उसकी तुलना बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008 के मार्गदर्शक सिद्धांतों से करें। क्या आप यह पाते हैं कि दोनों हीं दस्तावेजों में एक निरंतरता का भाव है।

अभी तक जिन नीतिगत दस्तावेजों की हमने चर्चा की, उनका यह मानना है कि तमाम सामाजिक अपेक्षाओं और विभिन्न विषयों के अध्ययन में आए बड़े बदलावों के बावजूद, पाठ्यचर्या योजना के लिए प्रासंगिक प्रमुख क्षेत्र बहुत लंबे समय तक स्थिर ही रहे हैं जिनका हमारी शिक्षा व्यवस्था पर गहरा प्रभाव है। तभी हम पाते हैं कि शिक्षा के बालकेन्द्रित स्वरूप पर बल देने के बावजूद हमारी कक्षाओं में पारम्परिक शिक्षण स्वरूप अभी भी व्याप्त है। शायद अब से पहले के पाठ्यक्रमों में वैसे उद्देश्यों पर विशेष बल नहीं था, जिन्हें आज महत्वपूर्ण माना जा रहा है। आगे 1976 के 'दसवर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम : एक रूपरेखा 1976' के कुछ अंशों को उधृत किया जा रहा है, आप उनको पढ़कर यह विश्लेषण करें कि आज के पाठ्यक्रम के संदर्भ में 1976 का संदर्भ किस प्रकार भिन्न या समान है :

प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य

3.2 शिक्षा के इस स्तर पर मोटे तौर से पहली से पांचवी कक्षा तक पढ़ने वाले 6+ से 11+ तक की आयु के बच्चे होते हें। कुछ क्षेत्रों में आयु 5+ से 10+ भी हो सकती है। कुछ स्थानों पर कक्षाएँ प्रथम से चतुर्थ तक और आयु 5 से 9 वर्ष अथवा 6 से 10 वर्ष भी हो सकती है। परन्तु आगे दी गई सामान्यताएँ वैसी ही रहेंगी। बच्चे के जीवन में यह आयु बहुत महत्वपूर्ण है। बच्चे की प्रत्युन्नति, जिज्ञासा, सर्जन व्यक्ति और क्रियाशीलता आदि में सचकहीन और अनाकर्षक शिक्षण–विधि और परिवेश के कारण रूकावट नहीं आनी

चाहिए। पाठ्यक्रम में बच्चे सामाजिक, बौद्धिक, भावनात्मक और शारीरिक परिपक्वता तथा समुदाय की सामाजिक–आर्थिक आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाना चाहिए। इस विषय में प्रत्येक बच्चे की सफलता की सीमाओं को यथार्थ दृष्टि से समझना और प्रत्येक स्कूल के लिए इस न्यूनतम सीमा का अतिक्रमण करके परिस्थितियों के अनुसार अधिक सफलता प्राप्त करने के अवसर प्रदान करना लाभदायक होगा। इसमें लचक और स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार अनुकूलन का पर्याप्त स्थान होना चाहिए। यहाँ यह संकेत करना अनिवार्य लगता है कि बहुत से बच्चों के लिए प्राथमिक स्तर ही अन्तिम भी होता है। अतः उन्हें ऐसी शिक्षा देना अत्यन्त आवश्यक है जो उन्हें अपने जीवन के लिए तथा स्वयं सीखने के लिए तैयार कर सके। इस स्तर पर शिक्षा के उद्देश्य इस प्रकार है :

3.2.1 प्रथम उद्देश्य है साक्षरता। बच्चे को प्रथम भाषा सिखाई जानी चाहिए। यह माषा सामान्यतः होनी चाहिए। प्रथम भाषा का स्तर इतना अवश्य होना चाहिए कि वह औरों से वार्तालाप करके या लिख कर अपनी बात भली भांति कह सके।

3.2.2 दूसरा उद्देश्य है अंक–ज्ञान। बच्चे को बार मूलभूत संख्यात्मक क्रियाओं का ज्ञान हो जाना चाहिए। अपने सामुदायिक जीवन में व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने में उनका उपयोग करना उसे आ जाना चाहिए।

3.2.3 तीसरा उद्देश्य है तन्त्र–ज्ञान। बच्चे को विज्ञान समझने की विधि आ जानी चाहिए और उसे इतना ज्ञान होना चाहिए कि वह अपने जीवन और आसपास के वातावरण में विज्ञान और यन्त्र का महत्व समझ सके।

3.2.4 बच्चे में झण्डे और राष्ट्रगान जैसे राष्ट्रीय प्रतीकों, देश की जनतान्त्रिक पद्धति और संस्थाओं का आदर करने की भावना उत्पन्न होनी चाहिए। उसे भारत की संश्लिष्ट और बहुवादी संस्कृति का ज्ञान होना चाहिए और उसमें छुआछूत, जाति और सामप्रदायिकता को निम्न कोटिक समझने की भावना भी उत्पन्न होनी चाहिए।

3.2.5 बच्चे में हाथ से काम करने को अच्छा समझने का दृष्टिकोण भी उत्पन्न होना चाहिए।

3.2.6 बच्चे में स्वच्छता और स्वस्थ जीवन जीने की आदत और अपने पास–पड़ोस की स्वच्छता और स्वास्थ्य के प्रति समझ भी विकसित होनी चाहिए।

3.2.7 बच्चे में अच्छे और सुन्दर के प्रति आकर्षण–भाव उत्पन्न होना चाहिए और उसे यह भी पता लगना चाहिए कि अपने वातावरण का ध्यान कैसे रखा जाए।

3.2.8 बच्चे में सहकारिता की भावना उत्पन्न होनी चाहिए। सार्वजनिक लक्ष्यों के लिए मिलकर काम करने में लाभ होता है– उसमें यह समझ भी उत्पन्न होनी चाहिए। एक व्यक्ति के रूप में परिवार, स्कूल और परिवेश में अपनी भूमिका की चेतना के साथ–साथ बच्चे में पहल, नेतृत्व, दया, ईमानदारी जैसी वांछित चारित्रिक विशेषताओं का विकास भी होना चाहिए।

3.2.9 बच्चे में सृजनातमक कार्यों के माध्यम से अभिव्यक्ति की क्षमता उत्पन्न होनी चाहिए और उसे स्वयं सीखने की आदत भी पड़नी चाहिए।

(स्रोत : दसवर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम : एक रूपरेखा 1976)

दसवर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम : एक रूपरेखा 1976 के उपरोक्त बिन्दुओं को पढ़ने के बाद आपको यह मोटी मोटी समझ हो गई है कि उस समय से लेकर अब तक हमने प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्यों एवं पाठ्यक्रम में क्या विकास किया है। आप आगे दी गई तालिका में इस पाठ्यक्रम के उद्देश्य और नवीनतम पाठ्यक्रम के उद्देश्यों के प्रमुख बिन्दुओं को दर्ज करें तथा उनका विश्लेषण करें।

दसवर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम : एक रूपरेखा 1976 के उद्देश्यों से संबंधित प्रमुख बिन्दु	**राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 और बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008 पर आधारित नवीनतम पाठ्यक्रम के उद्देश्यों से संबंधित प्रमुख बिन्दु**	**तुलनात्मक विश्लेषण**

उपरोक्त विश्लेषण के बाद, अब आप इन पाठ्क्रमों के अंतर्गत कौन कौन से विषय सम्मिलित थें, इसका भी विश्लेषण करें। आगे 1991 के प्राथमिक स्तर पर प्रस्तावित पाठ्यक्रम की संरचना को दिया गया है। आप आज के पाठ्यक्रम की संरचना को देखें तथा उनका तुलनात्मक विश्लेषण करें। क्या विषयों को लेकर कोई अंतर आया है, क्या आगे आए हुए नीतियों के कारण पाठ्यक्रम की संरचना में कोई बदलाव आया है, इन सब बातों पर विचार करें।

प्राथमिक स्तर (वर्ग 1 से 5) पर प्रस्तावित पाठ्यक्रम का ढांचा, 1991

दिनांक 3–5–88 तथा 9–8–88 को हुई शिक्षा परामर्श समिति द्वारा गठित उप–समिति तथा दिनांक 29–4–89 तथा दिनांक 29–4–89 को पाठ्यक्रम निर्माण संचालन समिति के लिए गए निर्णय के आलोक में वर्ग 1 से 5 तक प्रस्तावित पाठ्यक्रम का ढांचा निम्नवत है :

वर्तमान ढांचा			प्रस्तावित ढांचा		
वर्ग 1 से 2	**प्रति सप्ताह घंटियों की कुल संख्या**	**पूर्णांक**	**वर्ग 1 से 3**	**प्रति सप्ताह घंटियों की कुल संख्या**	**पूर्णांक**
मातृभाषा (हिन्दी, उर्दू, बंगला, मैथिली, हो, मुंडारी, संताली, उड़िया, आदि)	12	100	मातृभाषा (हिन्दी, उर्दू, बंगला, मैथिली, हो, मुंडारी, संताली, उड़िया, आदि)	10	100
गणित	8	100	गणित	8	100
पर्यावरण अध्ययन	5	100	पर्यावरण अध्ययन (विज्ञान एवं सामाजिक विकास)	6	100
शारीरिक शिक्षा	6	100	कार्यानुभव, समाजोपयोगी	5	100
चित्रांकण, संगीत एवं समाजोपयोगी उत्पादक कार्य	5	100	कला	4	50
			स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा	6	50
	36	500		39	500
वर्तमान ढांचा			**प्रस्तावित ढांचा**		
वर्ग 3 से 5	**प्रति सप्ताह घंटियों की कुल संख्या**	**पूर्णांक**	**वर्ग 4 से 5**	**प्रति सप्ताह घंटियों की कुल संख्या**	**पूर्णांक**
मातृभाषा (हिन्दी, उर्दू, बंगला, मैथिली, हो, मुडारी, संताली, उड़िया, आदि)	8	100	मातृभाषा (हिन्दी, उर्दू, बंगला, मैथिली, हो, मुंडारी, संताली, उड़िया, आदि)	10	100
द्वितीय भारतीय भाषा	4	50	संस्कृत / राष्ट्रभाषा	4	100
गणित	6	100	गणित	8	100
. पर्यावरण अध्ययन	6	100	पर्यावरण अध्ययन (विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान)	6	100
शारीरिक शिक्षा	6	50	कार्यानुभव, समाजोपयोगी	4	100
चित्रांकन संगीत एवं समाजोपयोगी उत्पादक कार्य	6	100	कला	2	50
			स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा	5	50
	36	500		39	600

(स्रोत : वर्ग 1 से 5 तक स्वीकृत पाठ्यक्रम, मानव संसाधन विकास विभाग, बिहार सरकार, 1991)

गतिविधि

आप उपरोक्त सारणी के विवरण के आधार पर उस समय के पाठ्यक्रम और प्रस्तावित पाठ्यक्रम के विषय में क्या–क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं, अपने अध्ययन केन्द्र पर इसकी चर्चा करें।

यदि 1991 से पीछे के काल में जाते हैं तो 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1976 का दसवर्षीय स्कूली पाठ्यक्रम का स्वरूप तथा शिक्षा आयोग–1964 के अनुशंसाओं के आलोक में आज के पाठ्यक्रम में आए बदलाव को भी समझा जा सकता है। इनके कुछ अंशों का आगे दिया जा रहा हैः

सिफारिशें

स्कूल की पाठ्यचर्या में निम्नलिखित बातें होनी चाहिए –

- महिलाओं की भूमिका को उभारना और इतिहास में उनकी भूमिका की छवि को अधिक सकारात्मक रूप से प्रदर्शित करना, समाज के संदर्भ में, विशेष रूप से भारतीय समाज के संदर्भ में महिलाओं का समाज को योगदान। उदहारणार्थ– सामाजिक इतिहास में महिलाओं द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन में दिये गए योगदान को उभारना। ऐसी सभी मामलों को अध्यापकों, शिक्षकों और प्रशासकों के प्रशिक्षण और नवीकरण में सावधारी से समिमलित किया जाना चाहिए।
- लड़कियों में गणित और विज्ञान की शिक्षा को अधिक प्रोत्साहित करने का प्रयास होना चाहिए। लड़कियों के स्कूलों में गणित और विज्ञान को आज की अपेक्षा अधिक महत्व देना चाहिए।
- लड़कों और लड़कियों की पाठ्यचर्या में किसी प्रकार का अंतर न हो।
- ऐसी नकारात्मक रूढ़िवादी पुरानी और जैविक तथा सामाजिक संकल्पनाओं को हटाना जिनमें लिंग–संबंधी पूर्वाग्रह दिखाई देता है। इस विषय में अगले अध्याय में विसतारपूर्वक चर्चा की गई हैं
- ऐसी रूढ़िवादी पुरानी परंपराओं और मिथकों को जो महिलाओं के सही विकास और राष्ट्रीय जीवन में उनकी भूमिका में बाधक है उनके बारे में लिंग संबंधी वस्तुनिष्ठ आधार पर कक्षा में चर्चा की जानी चाहिए। साथ ही हमारे महाकाव्यों और पुराण कथाओं में महिलाओं के चित्रण के बारे में कक्षा में समालोचनात्मक परीक्षा की जानी चाहिए।
- ऐसी आधारभूत सूचनाएं दी जानी चाहिए जिनमें बच्चों और महिलाओं के लिए संरक्षात्मक कानून हो तथा संविधान से उनके उदाहरण दिए जायें ताकि वे उसमें निहित सभी अधिकारों और अन्य बुनियादी संकल्पनाओं से परिचित हो सकें। शारीरिक शिक्षा और खेलों में लड़कियों की भागीदारी बढ़ाने के लिए विशेष प्रयास करने की जरूरत है।

(स्रोत : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा समिति की रिपोर्ट, 1990)

आप उपरोक्त विवरण के आधार पर यह विश्लेषण कर सकते है कि पाठ्चर्या–पाठ्यक्रम में जेण्डर का विमर्श किनता महत्वपूर्ण होता जा रहा है। 1986 की नीति ने इसके उपर ध्यानाकर्षण किया जिसे आगे के पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। आज हमारे पाठ्यक्रमों में जेण्डर समानता को लाने पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

गतिविधि :

अभी के पाठ्यक्रम पर आधारित पुस्तकों और अब से पहले के पुस्तकों का जेण्डर समावेशन के आधार पर विश्लेषण उदाहरण देकर करें। अपने विश्लेषण को एक चार्ट पर प्रदर्शित करके अध्ययन केन्द्र पर चर्चा करें।

इसी प्रकार शिक्षा आयोग–1964 ने भी पाठ्क्रम के संबंध में कई महत्वपूर्ण अनुशंसाए की। जिनमें से कुछ को आगे दिया जा रहा है। भाषा को लेकर पाठ्यक्रम में क्या व्यवस्था होनी चाहिए, इस विषय में आयोग नें कुछ सिफारिशें की जिन्हें त्रिभाषा सूत्र के रूप में आगे अपनाया गया।

आठवां अध्याय– स्कूल पाठ्यचर्या

इधर कुछ वर्षों में ज्ञान की अपार उपलब्धि और विज्ञान की अनेक अवधारणाओं के आमूल परिवर्तन से वर्तमान स्कूल पाठ्यक्रमों का अध्ययन बहुत स्पष्ट हो गया है और स्कूल पाठ्यचर्या में आमुल सुधार के लिए अधिकाधिक दबाव पड़ने लगा है। स्कूल की सारी पाठ्यचर्या के संगठन के लिए एकीकृत दृष्टिकोण (यूनिफाइड अप्रोच) अपनाना चाहिए, सामान्य शिक्षा के विषय की नई परिभाषा देनी चाहिए और विशेषीकरण की अवस्था के बारे में नए दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए। 8.01–02 (203–204)

पाठ्यचर्या सम्बन्धी सुधार के लिए अत्यावश्यक बातें–

(1) विश्वविद्यालय के शिक्षा विभागों, प्रशिक्षण कॉलेजों, राज्य शिक्षा संस्थानों और स्कूल शिक्षा बोर्डों द्वारा हाथ में लिए गए पाठ्यचर्या के विकास के बारे में अनुसंधानः (ख) इस प्रकार के अनुसंधानों के आधार पर किए गए नियतकालिक संशोधनः (ग)पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण–अध्ययन सामग्रियों की तेयारीः और (घ) अन्त सेवा शिक्षा द्वारा संशोधित पाठ्यचर्याओं के सम्बन्ध में शिक्षकों का अनुस्थापन इत्यादि प्रयत्नों द्वारा स्कूल पाठ्यचर्याओं को उन्नत बनाना इत्यादि।

(2) स्कूलों को अपनी सुविधाओं के अनुसार नई पाठ्यचर्याओं को बनाने या उनके बारे में प्रयोग करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

(3) राज्य स्कूल शिक्षा बोर्डों द्वारा सभी विषयों में समान्य और उच्च पाठ्यचर्याएं बनाई जानी चाहिए और जो स्कूल विषय तथा सुविधा सम्बन्धी कुछ शर्तें पूरा करते हों उनमें वे पाठ्यचर्याएं क्रमिक रूप से शुरू की जानी चाहिए।

भाषाओं का अध्ययन

(1) स्कूल अवस्था के भाषा अध्ययन पर पुनः विचार करने की और स्कूल अवस्था पर भाषाओं के अध्ययन के सम्बन्ध में नई नीति बनाने की आवश्यकता है।

(2) भाषा सूत्र में परिवर्तन निम्नलिखित मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुसार किए जाने चाहिए।

(क). मातृभाषा के बाद संघ की राजभाषा के रूप में स्थित हिन्दी का ही स्थान आता है।

(ख). अग्रेंजी का व्यावहारिक ज्ञान छात्रों के लिए मूल्याकान बना रहेगा।

(ग). भाषा में प्राप्त की गई क्षमता उपलब्ध शिक्षकों और सुविधाओं पर उतना ही निर्भर करती है जितना कि उसके सीखने के लिए दिए जाने वाले समय की लम्बाई पर।

(घ). तीन भाषाओं को सीखने के लिए सबसे उपयुक्त व्यवस्था अवर माध्यमिक अथवा (आठवीं से दसवीं तक) है।

(ड़). दो अतिरिक्त भाषाओं को एक दूसरे के बीच थोड़े अन्तर से शुरू करना चाहिए।

(च). हिन्दी या अंग्रेजी का अध्ययन तब शुरू करना चाहिए जब उनके लिए अधिकतम अभिप्रेरणा और आवश्यकता हो, और

(छ). किसी भी अवस्था में चार भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य नहीं करना चाहिए।

(3) इन सिद्धान्तों के अनुसार संशोधित विभाषा सूत्र में ये बाते सम्मिलित होनी चाहिए, (क) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा। (ख) संघ की राजभाषा या संघ की सहचारी राजभाषा (जब तक वह बनी रहे), और (ग) ऐसी आधुनिक भारतीय या योरोपीय भाषा जो (क) और (ख) में सम्मिलित न की गई हो और जो शिक्षण के माध्यम के रूप में प्रयुक्त न हो।

(स्रोत : शिक्षा आयोग–1964)

गतिविधि

स्वतंत्रता पूर्व स्कूली पाठ्यक्रम में विषयों की क्या व्यवस्था थी, इसका पता लगाएं। क्या उन विषयों की छवि आप आज के पाठ्यक्रम में भी पाते हैं? विश्लेषण करें।

4.6 समेकन

इस इकाई में हमने वर्तमान पाठ्यक्रम के स्वरूप और इसके एतिहासिक विकास पर ध्यान देते हुए स्कूली शिक्षा की समझ बनाने की कोशिश की। हमने जाना कि किन–किन स्तरों पर किसी पाठ्यक्रम का विकास निर्भर करता है, इसमें शिक्षा के नीतिगत दस्तावेजों की क्या भूमिका होती है। हमने पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या के बीच के संबंध और फर्क को भी समझा। पाठ्यचर्या के विषय में हमने जाना कि यह योजनाबद्ध गतिविधियों का ऐसा समुच्चय है जिसे पाठ्य की विषयवस्तु तथा सुविचारित ढंग से पोषित किए जाने वाले ज्ञान, कौशल व अभिवृत्तियों के साथ–साथ विषयवस्तु के चयन के लिए सिद्धांत वक्तव्य और पद्धतियों, सामग्री तथा मूल्यांकन के चयन के अर्थों में एक खास शैक्षिक लक्ष्य – लक्ष्यों के समुच्चय – को क्रियान्वित करने के लिए बनाया जाता है। हमने पाठ्यचर्या के उद्देश्यों में आए क्रमिक विकास का विश्लेषण भी किया और पाया कि हमारी स्कूली शिक्षा पर उसका प्रभाव कैसे पड़ता है। आपके विद्यालय को कोई पाठ्यक्रम किस प्रकार से प्रभावित करता है, इसकी भी समझ आपने बनाई।

4.7 मूल्यांकन के प्रश्न

1. आपके विद्यालय में जो पाठ्यक्रम है उसका समकालीन शैक्षिक उद्देश्यों के आलोक में विश्लेषण करें।
2. पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के मध्य के संबंध को उदाहरण देकर स्पष्ट करें।
3. आज के पाठ्यक्रम के उद्देश्यों के प्रमुख आधार क्या हैं और ये पहले के उद्देश्यों से किस प्रकार अलग या समान हैं? उदाहरण देकर समझाएं।
4. क्या पूरे देश में एक पाठ्यक्रम का होना सही है? क्यों या क्यों नहीं? नीतियों का उल्लेख करते हुए इस विषय में तर्क प्रस्तुत प्रस्तुत करें।
5. क्या पाठ्यक्रम को लेकर कुछ विवाद भी रहे हैं? पाठ्यक्रम से जुड़े विवादों से संबंधित सूचनाएं एकत्र कर एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार करें ।
6. पाठ्यक्रम में भाषा के स्थान को कैसे समझा गया है? आपके विद्यालय में इसे किस प्रकार लागू किया गया है?

इकाई–5
परीक्षा

5.1 परिचय
5.2 सीखने के उद्देश्य
5.3 पूर्व अनुभव
5.4 आज के विद्यालयों में परीक्षा की व्यवस्था : घटकों एवं प्रक्रिया की समझ
5.5 विद्यालय की परीक्षा से शिक्षा नीतियों का जुड़ाव : विकास के ऐतिहासिक संदर्भ की समझ
5.6 समेकन
5.7 मूल्यांकन के प्रश्न

5.1 परिचय

जिस विद्यालयी व्यवस्था से हम सभी पढ़े हैं या जो व्यवस्था हम वर्तमान में देख रहे हैं, उसमें परीक्षा एक अनिवार्य घटक के रूप में प्रतीत होती है। यदि कक्षाओं मे हो रहे शिक्षण को देखें तो कई बार ऐसा भी लगता है कि पाठ्यक्रम संचालन की पूरी योजना परीक्षा को केन्द्र में रखकर ही बनायी जाती है। यह नज़रिया केवल शिक्षकों का ही नहीं है बल्कि विद्यार्थी भी लगभग ऐसा ही मानते हैं। इसप्रकार सत्र की शुरूआत से ही परीक्षा को एक अंतिम मंजिल के रूप में देखा जाना शुरू हो जाता है। यह परीक्षा या मूल्यांकन की एक पारम्परिक समझ है जिसके माध्यम से यह फैसला होता है कि जो कुछ भी सिखाया है उसमें से कितना सीखा गया तथा इस आधार पर कौन आगे बढ़ेगा और कौन नहीं। अतः अक्सर परीक्षा को उस कसौटी के तौर पर माना जाता रहा है जो यह तय करती है कि सीखना हुआ है या नहीं। लेकिन, साथ ही ये सवाल भी महत्वपूर्ण हैं कि उस कसौटी को किस प्रकार से निर्धारित किया जाता रहा है? कैसे होती है विद्यालय में परीक्षा की पूरी प्रक्रिया और आज जिस प्रकार से विद्यालयी परीक्षा की प्रणाली को समझा जा रहा है, वैसी समझ बनने के पीछे का शैक्षिक इतिहास क्या है? इन प्रश्नों के विश्लेषण से परीक्षा प्रणाली के आज के स्वरूप को समझने में मदद मिलेगी। विश्लेषण के दौरान ये सवाल भी स्वाभाविक रूप से मन में उठेंगे कि क्या शिक्षा में परीक्षा या मूल्यांकन की यह अनिवार्यता हमेशा से थी? क्या इसका स्वरूप भी हमेशा से ऐसा ही रहा है, जैसा आज है या समय–समय पर इसमें बदलाव हुआ है? क्या अलग–अलग समय में मूल्यांकन की प्रक्रिया अलग–अलग रही है? बदलाव के पीछे क्या कारण रहे होंगे? परीक्षा द्वारा जांची जाने वाली विषयवस्तु में ऐतिहासिक रूप से क्या–क्या बदलाव आए हैं?

इस इकाई में आप अपने विद्यालयी परीक्षा के संदर्भ को केन्द्र में रखरकर परीक्षा संबंधी उपरोक्त प्रश्नों का विश्लेषण प्रमुख शिक्षा नीतियों तथा दस्तावेजों के आलोक में समझेंगे। आप अपने विद्यालय में होनेवाली परीक्षा से संबंधित उपलब्ध ऐतिहासिक आंकड़ों की मदद से विद्यालयी परीक्षा के इतिहास को टटोलने का प्रयास करेंगे।

5.2 सीखने के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- अपने विद्यालय की वर्तमान परीक्षा व्यवस्था से संबंधित विभिन्न कारकों को समझ सकेंगे।
- विद्यालय की परीक्षा व्यवस्था में जो ऐतिहासिक बदलाव हुए हैं, उनको विभिन्न शिक्षा नीतियों से जोड़कर विश्लेषित कर सकेंगे।
- विद्यालयी परीक्षा से सम्बंधित महत्वपूर्ण नीतिगत विमर्शो से अवगत हो सकेंगे।
- विभिन्न नीतिगत दस्तावेजों का अध्ययन करके देश के विद्यालयों में परीक्षा व्यवस्था के विकास क्रम को समझ पाएंगे।

5.3 पूर्व अनुभव

अपनी विद्यालयी शिक्षा के दौरान, एक विद्यार्थी के रूप में आपने कई परीक्षाओं को दिया होगा और आज एक अध्यापक या अध्यापिका के रूप में आपके ऊपर विद्यार्थियों के मूल्यांकन का दायित्व है। इन दोनो प्रकार के अनुभव से आपके पास पहले और आज की विद्यालयी परीक्षा में हुए बदलाव की एक मोटी–मोटी समझ अवश्य है। आप परीक्षा के विभिन्न स्वरूपों एवं प्रक्रियाओं से स्वयं गुजरे हैं, अतः परीक्षा के विभिन्न घटकों का ज्ञान भी आपको स्वतः ही है। इस इकाई में आप को अपने पूर्व अनुभवों का प्रयोग जगह–जगह पर करना होगा।

5.4 आज के विद्यालयों में परीक्षा की व्यवस्था : घटकों एवं प्रक्रिया की समझ

हमारे विद्यालय में जिस प्रकार से अभी परीक्षा की व्यवस्था चल रही है, एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि वह अब तक के नीतिगत विमर्शों एवं शैक्षिक विकास का प्रतिफल है। वह इसका द्योतक है कि हमारी शैक्षिक नीतियों के माध्यम से शिक्षा के विकास में कितनी सफलता मिली है और कहाँ–कहाँ हम विफल रहे हैं। अतः इस इकाई की शुरूआत में यह समझ लेना जरूरी है कि आज की शैक्षिक व्यवस्था में परीक्षा का स्वरूप क्या है। साथ ही, यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि यहाँ परीक्षा व्यवस्था से मूलतः तात्पर्य है– स्कूली व्यवस्था में परीक्षा का स्वरूप, विशेषरूप से प्राथमिक व माध्यमिक विद्यालयों में।

समकालीन परीक्षा व्यवस्था की समझ के लिए आपका अपना विद्यालय एक महत्वपूर्ण स्रोत है, जहाँ परीक्षा को संचालित किया जाता है और आप स्वयं उसका हिस्सा हैं। अतः आपको अपने ही विद्यालय की परीक्षा संबंधी सूचनाओं को आधार बनाकर समकालीन परीक्षा व्यवस्था को समझने का कार्य शुरू करना है।

इसके लिए उपयोगी सूचनाओं को व्यवस्थित तरीके से एकत्र करना भी एक कौशल है। आप अपने विद्यालय से परीक्षा संबंधी कितने उपयोगी आंकड़े व दस्तावेज एकत्र कर सकते हैं, यह आपके व्यवस्थित योजना पर निर्भर करती है। वे आंकड़े अलग–अलग स्थानों, दस्तावेजों, समयों व अध्यापक/अध्यापिकाओं से संबंधित हो सकते हैं और बहुत बिखरे भी हो सकते हैं। अतः आपको एक कुशल योजना बनानी होगी कि आपके उपयोग के आंकड़े कैसे मिलेंगे। आप स्वयं से एक योजना बनाएं।

उदाहरण के तौर पर, एक गतिविधि के रूप में योजना की रूपरेखा आगे दी जा रही है, जिससे आपको परीक्षा संबंधी महत्वपूर्ण सूचनाओं को व्यवस्थित तरीके से इकट्ठा करने में मदद मिलेगी। आप इस योजना में अपने संदर्भ के सापेक्ष बदलाव कर सकते हैं तथा अन्य महत्वपूर्ण सूचनाओं को भी जोड़ सकते हैं।

गतिविधि : योजना की रूपरेखा की तैयारी		
इस गतिविधि–योजना के अंतर्गत मूलतः वैसे प्रश्नों को पूछा गया है, जिससे विद्यालय में परीक्षा की व्यवस्था के विभिन्न कारकों से संबंधित सूचनाओं के स्रोतों को चिन्हित करके उपयोगी सूचनाओं को एकत्र किया जा सके। यहाँ तीन खण्डों में पूछे गए प्रश्नों के माध्यम से सूचनाओं को एकत्रित किया जाएगा। प्रत्येक प्रश्न के आगे आपको यह लिखना है कि उस प्रश्न से संबंधित जानकारी आपको विद्यालय के किस स्रोत से मिल सकता है या मिला है।		
खण्ड		**जानकारी के स्रोत**
खण्ड–1 परिचयात्मक जानकारी		
1.1	अभी जिस प्रकार की परीक्षा व्यवस्था आपके विद्यालय में है उसे कब लागू किया गया था?	
1.2	आपके विद्यालय में इस व्यवस्था को लागू करने का दिशा निर्देश कैसे मिला था? क्या उसका कोई लिखित स्वरूप आपके विद्यालय में है, उसमें किन–किन दस्तावेजों का उल्लेख किया गया है?	*प्रधानाचार्य या बी.ई.ओ या बी.आर.सी.सी.*
1.3	क्या आपके विद्यालय के अध्यापक/अध्यापिका/प्राचार्य इस नयी परीक्षा व्यवस्था के विषय में पहले से अवगत थे?	
1.4	नयी परीक्षा व्यवस्था में क्या–क्या किया जाना शुरू हुआ, जो इससे पहले की परीक्षा व्यवस्था में नहीं था?	
खण्ड–2 परीक्षा के स्वरूप से संबंधित जानकारी		
2.1	अभी की परीक्षा व्यवस्था मे किन–किन अवयवों/विषयों की परीक्षा ली जाती है?	
2.2	परीक्षा लेने की विधि क्या है? क्या परीक्षा एक ही विधि से होती है या अनेक विधियों से?	
2.3	परीक्षा लेने का समय कितना है तथा इसे कब–कब लिया जाता है?	
2.4	परीक्षा के परिणामों को कैसे प्रदर्शित किया जाता है?	
खण्ड–3 परीक्षा के क्रियांवयन से संबंधित जानकारी		
3.1	आपके विद्यालय में परीक्षा कैसे होती है? इसके लिए विद्यालय में क्या व्यवस्था बनाई जाती है?	
3.2	परीक्षा की कसौटियों को कौन तय करता है?	
3.3	परीक्षा संबंधी सामग्री कैसे तैयार होते हैं?	
3.4	परीक्षा का मूल्यांकन कैसे होता है? उसमें कौन–कौन शामिल होते हैं?	
3.5	परीक्षा का मूल्यांकन कहां होता है और किसके निर्देशन में?	
3.6	मूल्यांकन के आंकड़ों को कैसे और कहां संग्रहित किया जाता है?	
3.7	कौन तैयार करता है परीक्षा परिणामों को और इसकी घोषणा कैसे होती है?	

स्रोतों को चिन्हित करने के बाद आप उन स्रोतों से संबंधित सूचनाओं को एकत्रित करें। उन सूचनाओं का विश्लेषण करके हम आज की परीक्षा व्यवस्था को समझने तथा उन्हें शिक्षा के नीतिगत संदर्भों से जोड़ने की कोशिश करेंगे।

उदाहरण के तौर पर परीक्षा परिणामों को प्रदर्शित करनेवाले एक प्रगति–पत्रक का नमूना नीचे दिया जा रहा है। यह स्वयं में आज के मूल्यांकन व्यवस्था तथा नीतिगत प्रभावों का उदाहरण है।

सीखने के बिन्दू	अपनी बात समझाता है	कविता सुनाता है	कहानी सुनाता है	वाक्यों को समझकर पढ़ता है	प्रश्नों के मौखिक उत्तर देता है	अक्षरों एवं छोटे शब्दों को पहचानकर पढ़ता है	अक्षरों से शब्द बनाता है	शब्दों को देखकर लिखता है	क से ह तक तक अक्षरों को पहचान कर लिखता है	तीन–चार शब्द वाले वाक्य को पढ़ता है	दो अक्षरों वाले शब्द को सुनकर लिखता है
पहला सत्र	★★	★	★★	★							
दूसरा सत्र	★★★	★★	★★★	★★	★	★★	★	★	★	★	★★
तीसरा सत्र	★★★	★★	★★★	★★	★★★	★★	★	★★	★	★★	★★★

प्रगति–पत्रक के अपेक्षित सूचनाओं का विश्लेषण निम्नलिखित बिन्दुओं के आलोक में करें :

1. यहां मूल्यांकन का जोर किस बात पर है? बच्चे को समझने पर या उसे सफल–असफल घोषित करने पर?
2. ऐसी मूल्यांकन व्यवस्था के पीछे क्या तर्क होगा। क्या कोई नहीं शिक्षा नीति इसके लिए जिम्मेवार है।

उपरोक्त बिन्दुओं मे संदर्भ में अभी के प्रगति पत्रक का विश्लेषण करने के बाद जरा उससे पहले के प्रगति पत्रकों या परीक्षाफल–तालिका के नमूने को इकट्ठा करें और उनका तुलनात्मक विश्लेषण करें। आज के संदर्भ को समझने में उनसे भरपूर मदद मिलेगी क्योंकि आज जिस प्रकार की परीक्षा व्यवस्था है, वह कोई अचानक से उत्पन्न हुई व्यवस्था नहीं है बल्कि उसके पीछे कई दशकों के विचार–विमर्श तथा कई प्रकार के प्रयोगों की भूमिका है। आज का प्रगति–पत्रक अपने पहले के प्रगति–पत्रकों का विकसित स्वरूप है, अतः इसे विकास की निरंतरता में समझना अधिक जरूरी है जिसमें शिक्षा नीतियों के कारण कई बदलाव हुए। आगे खण्ड 5.5 में दिए गए दस्तावेजों के अंशों से आप परीक्षा के नीतिगत विमर्शों की समझ बनायेंगे।

परीक्षा के अन्य आयामों में यह बात भी महत्वपूर्ण है कि परीक्षा लेने की पूरी प्रक्रिया क्या है। उसके प्रत्यक्ष एवं परोक्ष तत्व कौन–कौन से हैं? उसमें किन–किन बातों का ध्यान रखा जाता है तथा कौन–कौन से लोग उसमें शामिल होते हैं। इस संदर्भ में कुछ प्रश्नों को उपरोक्त गतिविधि में दिया गया है। उन प्रश्नों से संबंधित सूचनाओं को एकत्रित करके उनका विश्लेषण करें। विश्लेषण को और गहन बनाने के लिए आप अब से पहले की परीक्षा प्रणाली से संबंधित कुछ आंकड़ों का सहारा ले सकते हैं जिसे आगे की तालिका में दिया गया है। इस तालिका को राष्टीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा समिति की रिपोर्ट 1990 से लिया

गया है, जो यह दर्शाता है कि उस समय तक अलग–अलग राज्यों में परीक्षा की व्यवस्था को संचालित करने के लिए क्या–क्या सुधार किए गए थें। आप इन आंकड़ों की मदद से तत्कालीन बिहार राज्य में परीक्षा प्रणाली की स्थिति का अनुमान लगा सकते हैं तथा आज की व्यवस्था से उसका तुलनात्मक समीक्षा कर सकते हैं।

तलिका

स्कूल स्तर पर परीक्षा सुधार कार्यान्वयन की विभिन्न राज्यों में स्थिति : 1990 में

क्र.स.	परीक्षा में सुधार के लिए उठाये गये कदम	बोर्ड/राज्य जिन्होंने सुधार लागू किए
1.	प्रत्येक प्रश्न पत्र के लिए नीति संबंधी विवरण (डिजाइन) विकसित करना	आंध्रप्रदेश, गुजरात, केरल, महाराष्ट्र, पंजाब, राजस्थान, सी.आर.एस.सी.ई., जम्मू और कश्मीर, एम.पी., मणिपुर, सी.बी.एस.ई., हरियाणा, त्रिपुरा, कर्नाटक, गोआ, यू.पी., पश्चिम बंगाल
2.	मूल्यांकन में प्रशिक्षित प्राश्निकों की नियुक्ति	आंध्रप्रदेश, गुजरात, केरल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, सी.आर.एस.सी.ई., जम्मू और कश्मीर, एम.पी., मणिपुर, तमिलनाडु, हरियाणा, गोआ, यू.पी., पश्चिम बंगाल
3.	प्रत्येक प्रश्न पत्र के लिए प्राश्निकों का पेनल	आंध्रप्रदेश, असम, केरल, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, सी.आई.एस.सी.ई., त्रिपुरा, गोआ, यू.पी.
4.	विभिन्न परीक्षण योग्यतायें मापने के लिए प्रत्येक प्रश्नपत्र में अंकों का आनुपातिक प्रतिशत निर्धारण	आंध्रप्रदेश, असम, गुजरात, महाराष्ट्र, केरल, राजस्थान, सी.आर.एस.सी.ई., जम्मू और कश्मीर, एम.पी., सी.बी.एस.ई., हरियाणा, मणिपुर, त्रिपुरा, कर्नाटक, गोआ, यू.पी.
5.	प्रश्नपत्र द्वारा पाठ्यक्रम का औसत मूल्यांकन सुनिश्चित करना	आंध्रप्रदेश, असम, गुजरात, केरल, महाराष्ट्र, राजस्थान, सी.आई.एस.सी.ई., सी.बी.एस.ई., जम्मू और कश्मीर, मणिपुर, एम.पी., हरियाणा, गोआ, यू.पी.
6.	प्रश्नपत्र में नपे तुले प्रश्नों का समावेश करना	आंध्रप्रदेश, असम, गुजरात, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, सी.आई.एस.सी.ई., सी.बी.एस.ई., हरियाणा, त्रिपुरा, गोआ, यू.पी., पश्चिम बंगाल
7.	निबंध जैसे प्रश्नों के अतिरिक्त संक्षेप में अपेक्षित उत्तर वाले प्रश्नों का प्रश्न–पत्र में सामवेश	आंध्रप्रदेश, असम, गुजरात, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, मणिपुर, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, सी.आई.एस.सी.ई., सी.बी.एस.ई., हरियाणा, त्रिपुरा, गोआ, यू.पी., पश्चिम बंगाल
8.	प्रश्न पत्र में वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का समावेश (बहुविकल्पी)	आंध्रप्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, मणिपुर, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, सी.आई.एस.सी.ई., सी.बी.एस.ई., हरियाणा, त्रिपुरा, गोआ, यू.पी.
9.	प्रश्न पत्र बनाने के लिए प्रश्न बैंक का इस्तेमाल	गुजरात, राजस्थान, सी.आई.एस.सी.ई., गोआ, बिहार, सी.बी.एस.ई., हरियाणा, पश्चिम बंगाल
10.	प्रश्न पत्रों में समग्र विकल्पों को हटाना	आंध्रप्रदेश, असम, गुजरात, कर्नाटक, केरल, उड़ीसा, राजस्थान, सी.बी.एस.ई., यू.पी.
11.	प्राश्निकों द्वारा स्वयं प्रत्येक प्रश्नपत्र के मूल्यांकन की योजना को विकसित करना	असम, गुजरात, कर्नाटक, केरल, पंजाब, राजस्थान, सी.आई.एस.सी.ई., सी.बी.एस.ई., यू.पी., गोआ, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल

12.	प्रश्न पत्र का दो भागों में विभाजन, एक में निश्चित उत्तर और दूसरे में समय की निर्धारित सीमा के भीतर उत्तर	आंध्रप्रदेश, गुजरात, केरल, कर्नाटक, राजस्थान, सी.बी.एस.ई.
13.	उत्तर पुस्तिकाओं का एक केन्द्र पर तत्काल मूल्यांकन	आंध्रप्रदेश, असम, गुजरात, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, सी.आई.एस.सी.ई., सी.बी.एस.ई., त्रिपुरा, गोआ, यू.पी.
14.	मशीनी प्रकरण द्वारा परीक्षाफल निकालना	आंध्रप्रदेश, गुजरात, केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, राजस्थान, सी.आई.एस.सी.ई., सी.बी.एस.ई., यू.पी.
15.	विषयवार परीक्षा का मापन, तुलना की दृष्टि से	गुजरात, केरल, सी.आई.एस.सी.ई.
16.	छात्रों को खण्डशः परीक्षा में बैठने की अनुमति	आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, केरल, राजस्थान, पंजाब, सी.बी.एस.ई.
17.	परवर्ती परीक्षा में बैठ कर अपने स्तरों को सुधारने का अवसर देना	आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, केरल, राजस्थान, पंजाब, सी.बी.एस.ई.
18.	विज्ञान विषयों के प्रायोगिक कार्य के मूल्यांकन में उत्पाद तथा दक्षता दोनों की गणना करना	असम, गुजरात, केरल, पंजाब, महाराष्ट्र, राजस्थान, सी.आर.एस.सी.ई., त्रिपुरा, सी.बी.एस.ई., गोआ, यू.पी.
19.	योजना विषय में शैक्षिक तथा शैक्षिकेत्तर छात्रों की वृद्धि शामिल करना	राजस्थान, तमिलनाडु
20.	बाहरी परीक्षा के साथ–साथ आंतरिक मूल्यांकन के लिए अलग से प्रमाणपत्र जारी करना	राजस्थान
21.	प्राश्निकों को ''फीडबैक'' देने के लिए प्रश्न–पत्रों का विश्लेषण	राजस्थान
22.	परीक्षा की उत्तर पुस्तिकाओं का विश्लेषण सामान्य त्रुटियों को खोजना, अंक प्राप्ति में सह–संबंध, तथा प्रत्येक मद का प्रकार्यात्मक मूल्य	राजस्थान
23.	पाठ्यक्रम के अध्यापन, पाठ्य पुस्तकों तथा मूल्यांकन में स्कूलों को स्वायत्तता	राजस्थान
(स्रोत : तालिका–4, राष्टीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा समिति की रिपोर्ट 1990, पृष्ठ संख्या 261–263)		

उपरोक्त तालिका में दिए गए परीक्षा संबंधी सूधार के बिन्दुओं का विश्लेषण इस आधार पर भी करें कि वे किस प्रकार के मूल्यांकन की अवधारणा को प्रोत्साहित कर रहे थे। आज की परीक्षा प्रणाली में उन सूधारों में से क्या–क्या बरकरार है और किस प्रकार से, विश्लेषण करें।

अपने विद्यालय के समकालीन परीक्षा व्यवस्था के समझने के लिए उस व्यवस्था का बच्चों पर पड़नेवाले प्रभाव को जानना जरूरी है। मौजूदा व्यवस्था में बच्चे एक कक्षा से दूसरी कक्षा में किस प्रकार प्रवेश पाते हैं, उन्हे किस आधार पर आगे की कक्षा में जाने के लिए सफल घोषित किया जाता है। समकालीन परीक्षा की प्रकृति को जानने के लिए आप अपने विद्यालय के आज तक के वार्षिक परीक्षा परिणामों का तुलनात्मक अध्ययन कर सकते हैं। साथ ही, यह भी विश्लेषण कर सकते हैं कि क्या परीक्षा परिणामों का छीजन से

कोई संबंध है क्या? आगे छीजन से संबंधित कुछ आंकड़ों को उदाहरणस्वरूप दिया गया है, इससे आप परीक्षा की प्रकृति से संबंधित क्या विश्लेषण कर सकते हैं।

विद्यालयों में छीजन (% में)						
वर्ष	कक्षा 1–5		कक्षा 1–8		कक्षा 1–10	
	राष्ट्रीय स्तर	बिहार	राष्ट्रीय स्तर	बिहार	राष्ट्रीय स्तर	बिहार
1991–92	64.40	42.00	79.38	58.67	85.02	71.51
2003–04	59.00	31.50	78.00	52.30	–	–
2008–09	34.65	24.93	58.33	42.25	81.50	55.88
स्रोतः एजुकेशन इन इंडिया, अंक 1991–92, 1998–99 तथा चयनित शैक्षिक सांख्यिकी, 2003–04 और 2008–09, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली						

उपरोक्त सारणी के आधार पर आप क्या–क्या अनुमान लगा सकते हैं। आज से बीस साल पहले और आज के परीक्षा परिणामों में क्या अंतर हैं। क्या कारण हो सकते है, ऐसे अंतर का। जैसा कि आप उपरोक्त सारणी में देख रहे हैं कि समय के साथ–साथ विद्यालयों में छीजन की समस्या धीरे–धीरे कम होती जा रही है। इसमें क्या परीक्षा प्रणाली में हुए सुधारों की भी भूमिका हो सकती है। आपके विद्यालय में छीजन की समस्या की क्या स्थिति है। क्या मूल्यांकन के स्वरूप में आए परिवर्तन के कारण छीजन की समस्या पर कुछ प्रभाव पड़ा है, विचार करें।

इन सब की समझ के लिए आपको समय–समय पर लायी गई शिक्षा नीतियों का सहारा लेना होगा। आगे के खण्ड में हम कुछ चुनिन्दा नीतियों के कुछ अंशों की चर्चा करनेवाले हैं जिनसे आपको अपने विद्यालय की परीक्षा व्यवस्था के मौजूदा स्वरूप को समझने में मदद मिलेगी।

गतिविधि

अपने विद्यालय के पिछले कुछ वर्षों के परीक्षा परिणामों का अध्ययन करके यह पता लगाएं कि जो बच्चे बीच में ही विद्यालय छोड़ देते हैं, प्रगति पत्रक के दृष्टिकोण से उनका विद्यालयी रिकार्ड कैसा होता है? क्या परीक्षा परिणामों के कारण भी वे विद्यालय से विमुख हो जाते हैं?

5.5 विद्यालय की परीक्षा से शिक्षा नीतियों का जुड़ाव : विकास के ऐतिहासिक संदर्भ की समझ

इससे पहले के खण्ड में आपने अपने विद्यालय से कुछ वैसे आंकड़ों को एकत्रित किया जिनसे आज की परीक्षा व्यवस्था की समझ बनाई जा सकती है। लेकिन, अपेक्षित समझ विकसित करने के लिए वे आंकड़े स्वयं में परिपूर्ण नहीं हैं। बल्कि उनके लिए शिक्षा के नीतिगत विमर्शों का सहारा लेना बहुत जरूरी है। वास्तव में वे आंकड़े नीतिगत बदलावों के ही प्रतिफल हैं। अतः इस खण्ड के माध्यम से हम यह विश्लेषित करने का प्रयास करेंगे कि जिस प्रकार की परीक्षा व्यवस्था आपके विद्यालय में है उसके पीछे का नीतिगत इतिहास क्या है।

राष्ट्रीय एवं राजकीय स्तर के कुछ चुनिन्दा दस्तावेजों के परीक्षा संबंधी कुछ महत्वपूर्ण अंशों को आगे ज्यों का त्यों दिया जा रहा है ताकि आप उनके मौलिक चिंतन से परिचित हो सकें। आप इन अंशों में दिए गए महत्वपूर्ण बिन्दुओं को चिन्हित करें तथा उसे अपने विद्यालय के परीक्षा संबंधी आंकड़ों से जोड़ने का प्रयास

करें। अंशों के बीच–बीच में आपकी सहायता के लिए कुछ विश्लेषण के बिन्दुओं को भी साथ में दिया गया है। साथ ही, यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि आगे दिए गए दस्तावेजों के अंश अनंतिम नहीं हैं। आप स्वयं भी इसमें अन्य उपयोगी दस्तावेजों को कालक्रम के अनुसार अवश्य जोड़े ताकि विश्लेषण में और गहनता व निरंतरता आ सके।

आज जब हम परीक्षा की बात करते हैं तो सबसे पहले 'सतत एवं व्यापक मूल्यांकन' का ध्यान आता है। इस व्यवस्था के महत्वपूर्ण बिन्दुओं को 'परीक्षा प्रणाली में सुधार' नामक दस्तावेज में उल्लेखित किया गया है तथा विद्यलयों में इसे अपनाने पर जोर दिया गया है। आगे उसी दस्तावेज़ से कुछ अंशों को दिया गया है।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.)

स्कूलों में सी.सी.ई. को एक प्रभावी और व्यवस्थित रीति से शामिल किए जाने की जरूरत लंबे समय से महसूस की जा रही है। चूंकि स्कूल शिक्षा बोर्डों द्वारा संचालित परीक्षाओं में कुछ कमियाँ हैं, इसलिए अब स्कूल स्तर पर सी.सी.ई. को ज्यादा महत्व दिया जाता है। कुछ एक बोर्डों ने स्कूलों में लागू करने के लिए सी.सी.ई. की योजना का विकास किया है। कुछ मामलों में पब्लिक स्कूलों के प्राचार्यों ने अपने स्तर पर परीक्षण की आवधिक व्यवस्था को प्रारंभ करने के लिए कदम उठाए हैं। कुछ राज्यों में सरकार ने शैक्षिक क्षेत्रा में आवधिक परीक्षण के लिए प्रयास शुरू किए हैं, लेकिन सह–शैक्षिक क्षेत्र को ऐसे ही छोड़ दिया गया है। सी.सी.ई. को स्कूली शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर संस्थागत रूप दिए जाने की आवश्यकता है। वर्तमान स्वरूप में, बोर्ड द्वारा किए गए मूल्यांकन को ज्यादा महत्व दिया जाता है और स्कूल–आधारित मूल्यांकन को पीछे धकेल दिया गया है। यह परिदृश्य अब बदल रहा है। कई स्कूल–बोर्ड सी.सी.ई. के महत्व पर बल दे रहे हैं और राज्य शिक्षा विभाग के सहयोग से इसे स्कूलों में लागू करने हेतु उपाय कर रहे हैं। सी.सी.ई. को बोर्ड मूल्यांकन के विकल्प के रूप में नहीं बल्कि पूरक के रूप में देखा जाना चाहिए।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.) की विशेषताएँ

1. सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.) का अर्थ विद्यार्थी के स्कूल–आधारित मूल्यांकन व्यवस्था से है, जो विद्यार्थी के विकास के सभी पक्षों पर ध्यान देता है।
2. सी.सी.ई. का 'सतत' पक्ष मूल्यांकन की 'निरंतरता' और आवर्तन पर ध्यान देता है।
3. सतत का अर्थ है–अनुदेशन के प्रारंभ में विद्यार्थी का आकलन (स्थापन मूल्यांकन) और अनुदेशन प्रक्रियाओं के दौरान अनौपचारिक रूप से मूल्यांकन की विविध तकनीकों का उपयोग करते हुए आकलन (निर्माणात्मक मूल्यांकन)।
4. आवर्तन का अर्थ है–कसौटी संदर्भित परीक्षणों का तथा मूल्यांकन की विविध तकनीकों का उपयोग करते हुए बहुधा इकाई/अवधि के अंत में निष्पत्ति का आकलन (योगात्मक)।
5. सी.सी.ई. का 'व्यापक' अवयव बच्चे के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के मूल्यांकन पर ध्यान देता है।
6. शैक्षिक क्षेत्र के अंतर्गत पाठ्यचर्या क्षेत्र या विषय–विशेष क्षेत्र आते हैं, जबकि सह–शैक्षिक पक्ष में पाठ्य सहगामी और व्यक्तिगत सामाजिक गुण, रुचियाँ, अभिवृनियाँ तथा मूल्य समाहित हैं।
7. शैक्षिक क्षेत्रों में जाँच की विविध तकनीकों का औपचारिक और अनौपचारिक उपयोग करते हुए नियत कालिक और निरंतर मूल्यांकन किया जाता है। निदानात्मक मूल्यांकन इकाई/अवधि परीक्षण के अंत में होता है। कुछ इकाइयों में खराब प्रदर्शन के कारणों की जाँच निदानात्मक परीक्षण के द्वारा की जाती है। इन सबका सोद्देश्य समाधान मध्यस्थता के पश्चात् पुनः परीक्षण द्वारा किया जाता है।
8. सह–शैक्षिक क्षेत्रों में मूल्यांकन पहचानी गई कसौटियों के आधार पर विविध तकनीकों का उपयोग करते हुए किया जाता है, जबकि व्यक्तिगत सामाजिक गुणों में मूल्यांकन विभिन्न अभिरुचियों, नैतिक मूल्यों, प्रवृत्तियों इत्यादि के व्यवहार सूचकों का उपयोग करते हुए किया जाता है।

शैक्षिक क्षेत्र					
स्तर	**कक्षाएँ**	**प्रक्रियाएँ / तकनीक**	**उपकरण**	**आवर्तन एवं अभिलेखन**	**प्रतिवेदन**
प्राथमिक	पहली एवं दूसरी	अवलोकन मौखिक लिखित	• अवलोकन सारणी • मौखिक प्रश्न • प्रश्नपत्र • निदानात्मक परीक्षण	• दिन प्रतिदिन अवलोकन एवं शिक्षक द्वारा अभिलेखन • इकाई / योग्यता के अंत में • परीक्षण के बाद अभिलेखन	प्रत्यक्ष / निरपेक्ष श्रेणीकरण (तीन बिन्दु)
	तीसरी, चौथी एवं पाँचवीं	मौखिक लिखित	• मौखिक प्रश्न • प्रश्नपत्र • प्रदत्तकार्य • गतिविधि • निदानात्मक परीक्षण	• इकाई के अनुसार • मासिक • आवधिक • परीक्षण के बाद • अभिलेखन	निरपेक्ष श्रेणीकरण (तीन बिन्दु)
उच्च प्राथमिक	छठी से आठवीं तक	मौखिक लिखित प्रायोगिक	• मौखिक प्रश्न • प्रश्नपत्र • प्रदत्तकार्य • परियोजना • निदानात्मक परीक्षण • गतिविधि / प्रयोग	• इकाई के अनुसार • मासिक • आवधिक • परीक्षण के बाद • अभिलेखन	निरपेक्ष श्रेणीकरण (पाँच बिन्दु)
माध्यमिक	नवीं एवं दसवीं	लिखित प्रायोगिक मौखिक परीक्षा	• प्रश्नपत्र • प्रदत्तकार्य • परियोजना • प्रायोगिक • (गतिविधि / प्रयोग) • मौखिक प्रश्न	• इकाई के अनुसार • मासिक • आवधिक • परीक्षण के बाद • अभिलेखन	निरपेक्ष श्रेणीकरण (नौ बिन्दु)
उच्च माध्यमिक	ग्यारहवीं एवं बारहवीं	लिखित प्रायोगिक मौखिक परीक्षा	• प्रश्नपत्र • प्रदत्तकार्य • परियोजना • प्रायोगिक • (गतिविधि / प्रयोग) • मौखिक प्रश्न	• इकाई के अनुसार • मासिक • आवधिक • परीक्षण के बाद • अभिलेखन	निरपेक्ष श्रेणीकरण (नौ बिन्दु)

सह–शैक्षिक क्षेत्र		
क्रम संख्या	**सह पाठ्यचर्या क्रियाकलाप**	**व्यक्तिगत सामाजिक गुण जिसमें अभिवृत्तियाँ तथा मूल्य शामिल हैं**
I	**साहित्यिक**	स्वच्छता
	1. पाठन/वाचन	सहयोग
	2. वाद–विवाद/भाषण देना	समयनिष्ठता/नियमितता
	3. रचनात्मक लेखन	अनुशासन/आज्ञाकारिता
II	**वैज्ञानिक**	भावनात्मक स्थायित्व
	1. सभा की गतिविधियां	पहल
	2. प्रकृति अध्ययन	जिम्मेवारी
	3. कंप्यूटर साक्षरता	कर्मठता
III	**कलात्मक**	पर्यावरण जागरूकता
	1. रेखांकन	सहिष्णुता
	2. चित्रकारी	अच्छे गुणों की सराहना
	3. कढ़ाई	नेतृत्व
	4. शिल्प	सच्चाई
	5. मूर्तिकला	देशभक्ति
IV	**सांस्कृतिक**	समाज सेवा
	1. संगीत (वाद्ययंत्र/गायन)	नागरिक चेतना
	2. प्रदर्शन कलाएँ (नाट्य/नृत्य)	शारीरिक श्रम का सम्मान
V	**शारीरिक (खेल/मनोरंजन एवं योग)**	बड़ों/गुरूजनों के प्रति आदर भाव
	1. भीतरी	पर्यावरण संरक्षण
	2. बाहरी	सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण
	3. योगाभ्यास	
VI	**विविध**	
	1. प्राथमिक चिकित्सा	
	2. रेड क्रॉस	
	3. बालचर क्रम (स्काउटिंग)	
	4. राष्ट्रीय कैडेट कोर (एन.सी.सी.)	
	5. राष्ट्रीय सेवा योजना (एन.एस.एस.)	
	6. साहसिक गतिविधियाँ	
	7. अन्य शौक	

(स्रोत : परीक्षा प्रणाली में सुधार, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार–पत्र, एन.सी.ई.आर.टी., 2008)

उपरोक्त विवरण के आधार पर, आप अपने विद्यालय में लागू सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की वर्तमान परीक्षा प्रणाली की संरचना और प्रयोजन को समझ सकते हैं। इस प्रणाली के लागू होने से पहले, परीक्षा की पारंपरिक व्यवस्था थी जिसमें लिखित परीक्षाओं का वर्चस्व था। धीरे–धीरे मूल्यांकन के स्वरूप को बदलने के लिए कई नीतिगत अनुशंसाएं आयीं। राष्ट्रीय फोकस समूह के आधार–पत्र 'परीक्षा प्रणाली में सुधार' ने परीक्षा के तरीके में बदलाव पर विशेष बल दिया।

गतिविधि

कई लोगों का मानना है कि परीक्षा के सतत एवं व्यापक मूल्यांकन व्यवस्था के कारण विद्यालयों में मूल्यांकन की प्रक्रिया बहुत बोझिल हो गई है। इस प्रणाली की नीतिगत पक्षों की चर्चा करते हुए आप उनको कैसे समझाएंगे।

मूल्यांकन व्यवस्था में परिवर्तन के लिए राज्य के नीतिगत दस्तावेजों के माध्यम से भी कई सुझाव प्रस्तुत किए गए। आगे 'किशोर मन की समझ : बिहार में माध्यमिक शिक्षा एवं परीक्षा के संबंध में अध्ययन दल का प्रतिवेदन–2006' से कुछ अंशों को दिया जा रहा है जिसमें बिहार में ली जानेवाली विद्यालयी परीक्षा के पुराने तरीके की समीक्षा की गई है।

वर्तमान चुनौतियां

शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर समयानुकूल परिवर्तन अपेक्षित माना जाता है। अतः वर्तमान चुनौतियों को समझना एवं जानना अनिवार्य होगा। बिहार विद्यालय परीक्षा समिति के नवीं एवं दशवीं के पाठक्रम को केन्द्र में रखकर देखा जाए तो ज्ञात होता है किः–

1. वर्तमान पाठ्यक्रम सापेक्ष नहीं है। विगत 14 वर्षों में इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ।
2. विभिन्न विषयों में कौशल के स्थान पर सूचनाओं को अधिक महत्व दिया गया है जिसके कारण बच्चों में कौशल आधारित ज्ञान के स्थान पर सूचनापरक ज्ञान के जानने का भार है।
3. बोर्ड की दसवीं की परीक्षा में छात्रों का प्राप्तांक कम आने के कारण एक तरह की निराशा छात्रों में व्याप्त है।
4. हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत और उर्दू की पढ़ाई एवं परीक्षा संप्रेषणीयता के आधार पर नहीं हो रही जबकि वर्तमान संदर्भ में भाषाओं की संप्रेषण क्षमता पर बल देने की आवश्यकता है।
5. विषयों का आधिक्य होने के कारण यहाँ के बच्चों को 11 पाली में 11 विषयों की परीक्षा देनी होती है जो अव्यवहारिक है।
6. परीक्षा प्रणाली में किसी तरह का सुधार विगत कई वर्षों से नहीं किया गया, अतः यह दोषपूर्ण हो गई है। बोर्ड की वार्षिक परीक्षा में पूछे गये प्रश्नों के प्रकार भी उचित प्रतीत नहीं होते।
7. मूल्यांकन की सतत् प्रक्रिया की कोई गुंजाईश यहाँ नहीं है।
8. अंग्रेजी की अनिवार्यता नहीं होने के कारण इस विषय की पढ़ाई पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया जाता जो यहाँ के बच्चों के लिए उचित नहीं है।
9. बिहार विद्यालय परीक्षा समिति सिर्फ परीक्षा संचालन का कार्य करती है। इसकी कोई अकादमिक भूमिका नहीं है। जबकि बिहार स्कूल एक्जामिनेशन बोर्ड रेगुलेशन 1952 के सेक्शन–7 में कमिटी ऑफ कोर्सेज का प्रावधान है।
10. विगत 12 वर्षों में यह जानने की कोशिश नहीं की गयी राज्य के बच्चों की विभिन्न विषयों में उपलब्धि का स्तर क्या है?

इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि बिहार विद्यालय परीक्षा समिति के क्रियाकलापों को समय सापेक्ष बनाने के लिए आवश्यक कदम उठाये जायें जो परिवर्तन की दिशा में हों।

(स्रोत : किशोर मन की समझ : बिहार में माध्यमिक शिक्षा एवं परीक्षा के संबंध में अध्ययन दल का प्रतिवेदन–2006, पृ.सं. 05)

दस्तावेज के उपरोक्त अंश में माध्यमिक शिक्षा की पारंपरिक परीक्षा प्रणाली की सीमाओं के विषय में आप कई विश्लेषण कर सकते हैं। जरा विचार करें कि ऐसी प्रणाली से गुजरे हुए बच्चों के किन विशेषताओं व योग्यताओं को परीक्षा ने नज़रअंदाज कर दिया होगा। उसका उनके विकास पर कितना गहरा असर पड़ा होगा। आप उपरोक्त बिन्दुओं में से क्या किसी का प्रभाव अपने विद्यालय के मूल्यांकन व्यवस्था पर देखते हैं, यदि हाँ तो उन्हें चिन्हित करके उनकी चर्चा अपने अध्ययन केन्द्र पर करें।

यदि थोड़ा पीछे चलें तो 2005 में आयी 'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा' में परीक्षा के नए स्वरूप के विषय में विस्तार से चर्चा की गई है जिसका जिक्र इसके आगे के दस्तावेजों में होता रहा। परीक्षा शब्द के स्थान पर दो नए शब्दों का प्रयोग होना शुरू हो गया– आकलन और मूल्यांकन। आइए इसके कुछ अंशों को पढ़कर उन्हें अपने विद्यालय से जोड़कर विश्लेषित करें :

आकलन और मूल्यांकन

भारतीय शिक्षा में मूल्यांकन शब्द परीक्षा, तनाव और दुश्चिंता से जुड़ा हुआ है। पाठ्यचर्या की परिभाषा और नवीनीकरण के सभी प्रयास विफल हो जाते हैं, अगर वे स्कूली शिक्षा प्रणाली में जडें जमाए मूल्यांकन और परीक्षा तंत्र के अवरोध से नहीं जूझ सकते। हमें परीक्षा के उन दुष्प्रभावों की चिंता है जो सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को सार्थक बनाने और बच्चों के लिए आनंददायी बनाने के प्रयासों पर पड़ते हैं। वर्तमान में बोर्ड की परीक्षाएँ स्कूली वर्षों में होने वाले हर आकलन और हर तरह के परीक्षण को नकारात्मक रूप से ही प्रभावित करती हैं। इसमें शाला पूर्व–स्तर में होने वाला आकलन और परीक्षण भी शामिल है।

एक अच्छी मूल्यांकन और परीक्षा पद्धति सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन सकती है जिसमें शिक्षार्थी और शिक्षा तंत्र दोनों को ही विवेचनात्मक और आलोचनात्मक प्रतिपुष्टि से फायदा हो सकता है। यह भाग मूल्यांकन और आकलन को संबोधित करते हुए शुरू होता है क्योंकि ये सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के लिए पाठ्यचर्या के भाग की तरह प्रासंगिक होते हैं। परीक्षा तंत्र और खासकर बोर्ड की परीक्षाओं से जुड़े मुद्दों को अध्याय 5 में अलग से संबोधित किया गया है।

आकलन का उद्देश्य

शिक्षा का सरोकार एक सार्थक व उत्पादक जीवन की तैयारी से होता है और मूल्यांकन आलोचनात्मक प्रतिपुष्टि देने का तरीका होना चाहिए। यह प्रतिपुष्टि इस बात की होती है कि हम ऐसी शिक्षा लागू करने में किस हद तक सफलता प्राप्त कर पाएँ। इस परिप्रेक्ष्य से देखें तो वर्तमान में चल रही मूल्यांकन की प्रक्रियाएँ जो केवल कुछ ही योग्यताओं को मापती और आकलित करती हैं बिलकुल ही अपर्याप्त हैं और शिक्षा के उद्देश्यों की ओर प्रगति की संपूर्ण तस्वीर नहीं खींचती हैं।

लेकिन मूल्यांकन का यह सीमित प्रायोजन भी, अकादमिक और शैक्षिक विकास पर प्रतिपुष्टि देने वाला, तभी बन सकता है जब शिक्षक पढ़ाने से पहले ही न केवल आकलन के तरीकों की तैयारी करें बल्कि मूल्यांकन के मानकों और उसके लिए प्रयुक्त होने वाले औजारों की भी तैयारी करें। विद्यार्थियों की उपलब्धि की गुणवत्ता की जाँच के अलावा एक अध्यापक को विभिन्न विषयों में उनकी उपलब्धि की जानकारी इकट्ठा कर, उसका विश्लेषण कर और उसकी व्याख्या करनी होगी। तभी अध्यापक विभिन्न क्षेत्रों में विद्यार्थियों के अधिगम की सीमा की एक समझ बना पाएँगे। आकलन का प्रायोजन निश्चय ही सीखने–सिखाने की प्रक्रियाओं एवं सामग्री का सुधार करना है और उन लक्ष्यों पर पुनर्विचार करना है जो स्कूल के विभिन्न चरणों के लिए तय किए गए हैं। यह पुनर्विचार और सुधार इस आधार पर किया जा सकता है कि शिक्षार्थियों की क्षमता किस हद तक विकसित हुई। यह कहने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए कि यहाँ इस आकलन का मतलब विद्यार्थियों का नियमित परीक्षण कतई नहीं है। बल्कि, दैनिक गतिविधियाँ और अभ्यास के उपयोग से अधिगम का बहुत ही अच्छा आकलन हो सकता है।

सुनियोजित आकलन और नियमित प्रगति रपट शिक्षार्थियों को उनके काम की प्रतिपुष्टि देते हैं और साथ ही वे मानक भी स्थापित करते हैं जिनको पाने के लिए विद्यार्थी प्रयासरत रहते हैं। वे अभिभावकों को उनके बच्चों के अधिगम की गुणवत्ता और उनके विकास के बारे में भी जानकारी देते हैं। ऐसा आकलन

प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देने का तरीका बिलकुल नहीं है; अगर कोई शिक्षा में गुणवत्ता चाहता है तो बच्चों का विभाजन कर उन्हें ऐसी श्रेणियों में डालना जिससे उनमें हीन भावना आ जाए तो बिलकुल नहीं होना चाहिए। अंतिम बिंदु है कि विश्वसनीय आकलन एक रपट देता है, या अध्यापन के एक कोर्स के खत्म होने का प्रमाण देता है या जिससे दूसरे स्कूलों, शैक्षिक संस्थानों, समुदाय और भावी मालिकों (रोज़गार देने वालों) को अधिगम की गुणवत्ता और सीमा के बारे में जानकारी मिल जाती है।

यह धारणा प्रचलित है कि मूल्यांकन से उन ज़रूरतों को पहचानने में मदद मिलती है, जिन ज़रूरतों को उपचारात्मक शिक्षण से पूरा किया जाता है। इस धारणा ने पाठ्यचर्या की योजना बनाने में बड़ी समस्याएँ पैदा की हैं। इस 'उपचारात्मक' शब्द को उन विशिष्ट/विशेष कार्यक्रमों तक सीमित रखने की ज़रूरत है जो उन बच्चों की क्षमता विकास में मदद करते हैं जिनको पठन/साक्षरता (पठन में असफलता जिससे बाद में बोध पर फर्क पड़ता है) या अंकज्ञान (खासकर गणित के संकेतों वाले पहलू, स्थानीय मान और संगणना संबंधी) में समस्याएँ आती हैं। शिक्षकों को अच्छे निदानकारी परीक्षणों के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण की ज़रूरत है, जो उन्हें उपचार के प्रयासों में मदद करेगा। ठीक इसी तरह, निदानात्मक कार्य के लिए भी विशिष्ट रूप से विकसित सामग्री और नियोजन की ज़रूरत है ताकि शिक्षक प्रत्येक बच्चे के साथ अलग से काम कर पाएँ। इस उपचारात्मक काम की शुरुआत उन चीज़ों से होगी जो बच्चे को पहले से आती हैं और उन चीज़ों तक जाएगी जिन्हें बच्चे को सीखने की ज़रूरत है। यह आकलन और सतर्क अवलोकन की सतत प्रक्रिया के द्वारा ही संभव है। शब्दों का बिना सोचे–विचारे किया गया उपयोग, प्रभावशाली शिक्षाशास्त्र की आम समस्याओं से हमारा ध्यान हटा देता है और अधिगम एवं असफलता की ज़िम्मेदारी पूरी तरह से बच्चे पर डाल देता है।

शिक्षार्थियों का आकलन

बच्चे की अधिगम की गुणवत्ता और विस्तार पर लिखी गई एक सार्थक रपट को समावेशी होना चाहिए। हमें एक ऐसी पाठ्यचर्या की आवश्यकता है जिसमें सृजनात्मकता, नवप्रवर्तकता और बालक का संपूर्ण विकास हो। तो ऐसे में पाठ्यपुस्तक आधारित अधिगम और रटे हुए तथ्यों को जाँचने वाले परीक्षण, दोनों ही बेकार हैं। हमें मूल्यांकन और प्रतिपुष्टि को पुनः परिभाषित करने और उनके नए मानक ढूँढ़ने की ज़रूरत है। विशिश्ट विषयों में शिक्षार्थियों की उपलब्धि का बड़े आराम से परीक्षण हो जाता है। उसके अलावा हमें आकलन में सीखने के प्रति अभिवृत्तियों, रुचि और स्वयं सीखने की क्षमता को भी शामिल करना होगा।

शिक्षण के क्रम में आकलन

प्रगति–पत्र (रिपोर्ट कार्ड) तैयार करने से शिक्षक को अपने प्रत्येक विद्यार्थी के बारे में यह सोचने का मौका मिलता है कि उसने सत्र के दौरान क्या सीखा और किस क्षेत्र में उसको ज्यादा मेहनत करने की ज़रूरत है। ऐसे रिपोर्ट कार्ड को लिख पाने के लिए शिक्षक को प्रत्येक विद्यार्थी के बारे में सोचना होगा और इसीलिए रोज़मर्रा के शिक्षण के दौरान उस पर ध्यान देना होगा। इसके लिए विशिष्ट परीक्षाओं की ज़रूरत नहीं है। स्वयं सीखने वाली गतिविधियाँ बच्चों में निरंतर चलने वाले अवलोकनात्मक एवं गुणात्मक आकलन का आधार बनती हैं। अवलोकन के आधार पर रोज़ की दैनंदिनी रखने से निरंतर, सतत एवं व्यापक मूल्यांकन में मदद मिलती है। एक शिक्षक की साप्ताहिक डायरी से लिया गया अंश – "किरण को अपने काम में मज़ा आया। उसको वे किताबें फौरन पसंद आईं जो छोटी थीं और जिनमें जानकारी थी। वह कहता है कि उसे साफ और सादी भाषा पसंद है। तथ्यों को लिखते हुए वह अक्सर संक्षिप्त उत्तर लिखता है। उसका कहना है कि इससे वह चीज़ों को आसानी से समझ पाता है। उसे व्यावहारिक तरीका पसंद

है''। इसी तरह विभिन्न स्तर पर बच्चों के काम और उनके बारे में लिखने से शिक्षार्थी और शिक्षक को उसके अधिगम की प्रगति का व्यवस्थित रिकॉर्ड मिल जाता है।

यह विश्वास कि आकलन से सीखने में आने वाली कठिनाइयों का पता लगना ही चाहिए ताकि उनका उपचार हो सके अक्सर बहुत ही अव्यावहारिक हो जाता है और यह शिक्षाशास्त्रीय प्रयास की ठोस समझ पर आधारित नहीं होता। अवधारणात्मक विकास से जुड़ी समस्याएँ पहचाने जाने के लिए औपचारिक परीक्षण का इंतज़ार नहीं कर सकतीं। पढ़ाने के क्रम के दौरान ही एक शिक्षक ऐसी समस्याओं से अवगत हो सकता है।

पाठ्यचर्या के वे क्षेत्र जो अंकों के लिए जाँचे नहीं जा सकते

पाठ्यचर्या के सभी विषय परीक्षा द्वारा नहीं जाँचे जा सकते; बल्कि ऐसा करना तो पाठ्यचर्या के उन क्षेत्रों के सीखने की प्रकृति के विपरीत होगा। इनमें काम, स्वास्थ्य, योग, शारीरिक शिक्षा, संगीत एवं कला शामिल हैं। यद्यपि शारीरिक शिक्षा और योग के कौशल आधारित पक्षों का परीक्षण किया जा सकता है परन्तु स्वास्थ्य से जुड़े पक्षों को सतत और गुणात्मक आकलन की ज़रूरत होती है। वर्तमान में इन्हें पाठ्यचर्या में कम महत्व देने का चलन है। इन क्षेत्रों के लिए न ही पर्याप्त सामग्री उपलब्ध करवाई जाती है, और न ही पाठ्यचर्या के लिए ढंग से योजना बनाई जाती है और आगे बढ़ें तो इन विषयों को दिए गए समय को 'विशेष पढ़ाई' के लिए हमेशा बलिदान कर दिया जाता है। पाठ्यचर्या के इन भागों के साथ यह बहुत ही बड़ा समझौता है, जबकि इन भागों की गहरी शैक्षिक महत्ता और संभावनाएँ होती हैं।

'अंक' बिना दिए भी बच्चों का इन क्षेत्रों में विकास के लिए आकलन किया जा सकता है। भागीदारी, रुचि, और जुड़ाव तथा जिस स्तर तक क्षमताओं एवं कौशलों का विकास हुआ, ये कुछ सूचक हैं जिनके आधार पर शिक्षक यह समझ बना सकते हैं कि बच्चों को इन गतिविधियों से कितना फायदा हुआ है। बच्चों को अगर अपने अधिगम के बारे में खुद बताने के लिए कहा जाए तो उससे भी शिक्षकों में बच्चों की शैक्षिक उन्नति संबंधी अंतर्दृष्टि विकसित होगी और पाठ्यचर्या एवं शिक्षाशास्त्रीय सुधार करने के आधार मिलेंगे।

गतिविधि

आप अपने पाठ्क्रम का विश्लेषण करके ऐसे विषयों की सूची बनाएं जिन्हे जाँचने के लिए अलग प्रकार की प्रकिया को अपनाया जाता है।

उन विषयों के विषवस्तु को जाँचने के लिए किस प्रकार की विधि का प्रयोग आप करते हैं उसके विवरण को भी लिखें और विश्लेषण करें कि उस विधि में मूल्यांकन की किन अवधारणाओं को शामिल किया जाता है।

स्व–आकलन और प्रतिपुष्टि

आकलन की भूमिका उस प्रगति को समझने की होती है जो शिक्षार्थी और शिक्षक निर्धारित लक्ष्यों की दिशा में करते हैं। और इस प्रक्रिया को बेहतर बनाने के लिए उसकी समीक्षा भी करते हैं। प्रतिपुश्टि पाने के ऐसे अवसर हमेशा उपलब्ध होने चाहिए जो प्रदर्शन को दोहराने व सुधारने की दिशा में ले जाएँ, परीक्षाओं व मूल्यांकन के भय का इस्तेमाल किए बिना पढ़ने की दिशा में प्रेरित करें।

विद्यार्थियों की मौजूदगी में की गई जाँच व सुधार कार्य उन्हें इस तरह की प्रतिपुश्टि देते हैं कि उन्होंने क्या सही किया, क्या गलत और क्यों? बच्चों से इस बारे में जानकारी लेना कि उन्होंने कोई उत्तर क्यों दिया,

शिक्षक को लिखित उत्तर से आगे जाने में मदद देता है और बच्चों की सोच से जुड़ने का मौका देता है। ऐसी प्रक्रियाएँ परीक्षाओं के डरावने और निर्णायक गुण को भी दूर कर देती हैं और बच्चों को सक्षम बनाती हैं कि वह अपनी गलतियों को समझें, उन पर ध्यान दें और उनसे सीखें। कभी–कभी प्रधानाध्यापक यह कह कर एतराज उठाते हैं कि बच्चों की मौजूदगी में की गई जाँच में वस्तुपरकता नहीं आ पाती। वस्तुपरकता के लिए यह सरोकार बिलकुल अनुचित है जो प्रतियोगी व्यवस्था से उपजता है और जो बच्चों के परीक्षण में विश्वास रखता है। वस्तुपरकता की दृश्टि से यह सरोकार उस मूल्यांकन के लिए भी अनुचित है जो शैक्षिक लक्ष्यों से सुसंगत हो।

न केवल अधिगम के परिणाम बल्कि अधिगम के अनुभवों का भी मूल्यांकन होना चाहिए। शिक्षार्थी बहुत खुशी से अपने अनुभवों की संपूर्णता पर टिप्पणी देते हैं। व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों स्तर के ऐसे अभ्यास बनाए जा सकते हैं जिनसे बच्चे अपने अधिगम का आकलन करने और उस पर चिंतन करने में सक्षम हो पाएँ। इस तरह के अनुभव उन्हें स्व–नियामन की क्षमताएँ भी देते हैं जो 'सीखने के लिए सीखने' की खातिर ज़रूरी होती हैं। ऐसी जानकारी शिक्षक के लिए भी बहुत मूल्यवान प्रतिपुष्टि होती है जिसका उपयोग अधिगम की पूरी व्यवस्था को बेहतर बनाने में किया जा सकता है।

बच्चों के साथ की गई प्रत्येक कक्षायी अंतःक्रिया की माँग होगी कि बच्चे अपने काम का खुद मूल्यांकन करें और उनसे यह चर्चा भी हो कि किसका परीक्षण किया जाना चाहिए और यह पता करने के क्या तरीके हैं कि क्षमताओं का विकास दरअसल हुआ कि नहीं। बहुत छोटे बच्चे भी इसका सही आकलन कर सकते हैं कि कौन से काम वे कर पाते हैं और कौन से नहीं। अध्यापन की भूमिका यह है कि वह प्रत्येक बच्चे को उसकी क्षमता के अनुसार सीखने के सर्वश्रेष्ठ मौके दे और इस तरह के अनुभव दे कि जिससे संज्ञानात्मक गुणों का विकास हो, शारीरिक कुशलक्षेम सुनिश्चित हो, खेल–कूद संबंधी गुणों का भी विकास हो और सौंदर्यबोध और भावनात्मकता भी विकसित हो।

यह ज़रूरी है कि रपट कार्ड बच्चों और माता पिता के सामने बच्चों के कई क्षेत्रों में विकास पर एक समावेशी और समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करे। शिक्षक प्रत्येक बच्चे के बारे में ऐसी बातें कह पाएँ जो बताएँ कि उस बालक/शिक्षार्थी पर व्यक्तिगत ध्यान दिया गया है, एक सकारात्मक आत्म छवि को मजबूत करती हो और उनके सामने ऐसे व्यक्तिगत उद्देश्य रख पाती हो जिनको लक्ष्य करते हुए वे काम करें। चाहे अंकों की सूचना दी जा रही हो या श्रेणियों की, शिक्षक के द्वारा दिया गुणात्मक कथन आकलन के समर्थन के लिए बहुत ज़रूरी है। केवल इसी तरह का रिश्ता बनाने के बाद एक शिक्षक विद्यार्थियों को प्रभावित कर सकता है और उनके अधिगम में योगदान दे सकता है। शिक्षा प्रत्येक बच्चे का आकलन करे, इसके अलावा प्रत्येक बच्चा स्वयं का भी आकलन कर सकता है और उस स्व–आकलन को रिपोर्ट कार्ड में शामिल करना चाहिए।

वर्तमान में, कई रिपोर्ट कार्डों में विषय क्षेत्रों पर जानकारी होती है लेकिन बच्चे के विकास के दूसरे पहलुओं पर बताने के लिए कुछ नहीं होता है; जैसे – स्वास्थ्य, शारीरिक कुशलता, खेलों में दक्षता, सामाजिक कौशल, कला और हस्तकला में दक्षता। बच्चों की शिक्षा और उनके विकास के इन पहलुओं पर दिए गए गुणात्मक कथन शैक्षिक सरोकारों का एक समग्र आकलन दे सकेंगे।

(स्रोत : एन.सी.एफ.–2005, 3.11 आकलन और मूल्यांकन : 3.11.1 से 3.11.6, पृष्ठ संख्या 82–86)

विचार करें :

परीक्षा के आकलन व मूल्यांकन व्यवस्था के पीछे कौन–कौन से नीतिगत तर्क दिए गए हैं? यह आपके विद्यालय के बच्चों के लिए किस प्रकार से लाभकारी है?

परीक्षा सुधार

'शिक्षा बिना बोझ के' में कहा गया है कि दसवीं और बारहवीं के अंत में होने वाली परीक्षा की इस दृष्टि से समीक्षा की जानी चाहिए कि अभी के पाठ–आधारित और प्रश्नोत्तरी प्रकार की परीक्षा की विधि को बदल दिया जाए क्योंकि इससे तनाव का स्तर काफी बढ़ जाता है और रूढ़िबद्ध अध्ययन को भी इससे बढ़ावा मिलता है। शहरी बच्चे बहुत अच्छा प्रदर्शन करने के लिए तनाव में रहते हैं, तो ग्रामीण बच्चे इस कारण तनाव मेंरहते हैं कि पता नहीं उनकी तैयारी इतनी है भी या नहीं कि वे सफलता पा सकें। असफलता की ऊँची दर, विशेषकर ग्रामीणों, गरीबों, सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के बच्चों में जिस तरह से देखने में आती है उससे लगता है कि संपूर्ण मूल्यांकन या परीक्षा पद्धति पर गहरे विचार की ज़रूरत है। अगर यह व्यवस्था समुचित और कारगर होती तो कोई कारण नहीं कि बच्चे विकास न कर पाएँ या सीख न पाएँ।

पर्चा–निर्धारण, परीक्षा और रपट

वर्तमान परीक्षा को अधिक वैध बनाने के लिए पर्चा बनाने की प्रक्रिया में पूरे बदलाव की ज़रूरत है। ध्यान अच्छे प्रश्न बनाने पर हो न कि महज पर्चा–निर्धारण पर। इस प्रकार के प्रश्न केवल विशेषज्ञों द्वारा ही नहीं बनाए होने चाहिए। अच्छी तरह प्रचारित कर शिक्षकों से, विषय के प्रोफेसरों से, राज्य के शिक्षाविदों और यहाँ तक कि विद्यार्थियों से भी सालभर के दौरान अच्छे प्रश्न मंगा लेने चाहिए। इन प्रश्नों को विशेषज्ञों की मदद से सावधानी पूर्वक संपादन करवा कर कठिनाई के स्तर, क्षेत्र, अवधारणा/दक्षता जिसका कि मूल्यांकन किया जाना है तथा हल करने में लगने वाले समय के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। इन प्रश्नों के बनने के दौरान, इन्हें इनके उपयोग और परीक्षण के रिकॉर्ड के साथ संभाला जाना चाहिए ताकि प्रश्न–पत्र बनाते समय उन्हें काम में लिया जा सके।

शिक्षकों को अपर्याप्त पारिश्रमिक देने से भी बेहतर और सुसंगत ढंग से उत्तर पुस्तिकाएँ जाँचने का उत्साह नहीं जगता। चूंकि सभी शिक्षा बोर्ड अच्छी आर्थिक हालत में हैं इसलिए मूल्यांकन की गुणवत्ता में धन को आड़े नहीं आने देना चाहिए। कंप्यूटरीकरण के कारण परीक्षार्थी और परीक्षक की पहचान को छुपाए रखना अब आसान हो गया है। गलत प्रथा रोकने के लिए उत्तर पुस्तिकाएँ अदल–बदल कर दी जा सकती हैं। बाहर के व्यक्ति की मदद से परीक्षा में चोरी को इस तरह से रोका जा सकता है कि परीक्षा के पहले आधे समय में परीक्षार्थियों को परीक्षा–केंद्र छोड़ने की इज़ाजत न मिले और परीक्षा के दौरान वह प्रश्न–पत्र बाहर न ले जाए। प्रश्न–पत्र परीक्षा के बाद उसको दिया जा सकता है। कंप्यूटरीकरण के कारण अंक–पत्र पर विस्तृत प्रदर्शन मानकों को दर्शाना संभव हो गया है –पूर्णांक/श्रेणी, विषय विशेष के सभी परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों के बीच प्रतिशांक श्रेणी, सहपाठियों के बीच प्रतिशांक श्रेणी (उदारणार्थ एक ही ग्रामीण या शहरी–खण्ड के विद्यालय)। यह भी संभव हो गया है कि विभिन्न परीक्षकों की गुणवत्ता और वे कितने सुसंगत हैं, का मूल्यांकन हो सकेगा। अंतिम मानक, हमारे विचार से गुणवत्ता की गहरी परख का मानक है। इस सूचना को सार्वजनिक बनाने से उच्च शिक्षा संस्थानों की स्तरीयता को लेकर अधिक जटिल और सापेक्ष दृश्टिकोण अपनाना पड़ेगा। इस विश्लेषण से पारदर्शिता आएगी। उन जगहों पर पुनःपरीक्षा के लिए प्रार्थियों की संख्या में पर्याप्त कमी आई जहाँ विद्यार्थियों को एक निर्धारित अल्प फीस के बदले अपनी उत्तर पुस्तिका की प्रतिलिपि मिल जाती है।

सत्र के मध्य में हमें स्कूल–आधारित आकलनों की ओर अधिक से अधिक बढ़ना चाहिए। ऐसे उपाय खोजे जाएँ जिनसे इस तरह के आंतरिक आकलन अधिक विश्वसनीय बन सकें। प्रत्येक स्कूल को एक लचीली और लागू होने योग्य मूल्यांकन प्रक्रिया की सतत और व्यापक योजना लागू करनी चाहिए। यह योजना

मुख्यतः सीखने में आने वाली कठिनाइयों के निदान व उपचार और अध्ययन में सुधार के लिए लागू की जानी चाहिए। इस योजना में सामाजिक वातावरण और उपलब्ध सुविधाओं का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। संवेदनशील शिक्षक अक्सर विद्यार्थियों की विशिश्ट क्षमताओं और कमज़ोरियों को पकड़ लेते हैं। इस प्रकार की सूझबूझ के उपयोग के उपाय तलाशने चाहिए। साथ ही, स्कूल द्वारा दुरुपयोग (जैसा अभी प्रायोगिक परीक्षाओं में होता है) रोकने के लिए सापेक्ष, न कि निरपेक्ष आधार पर, श्रेणीबद्ध किया जाना चाहिए तथा इस श्रेणीबद्धता को लगातार बाह्य परीक्षा में प्राप्त अंक के आधार पर सही करना चाहिए। विकास, शिक्षक–प्रशिक्षण और प्रासंगिक संस्थागत व्यवस्थाओं पर अधिक शोध की आवश्यकता है।

आकलन में लचीलापन

तमाम मनोवैज्ञानिक आंकड़ों से यह पता चलता है कि विद्यार्थी अलग–अलग ढंग से सीखते हैं और सीखे हुए की जाँच की उनकी प्रस्तुति भी अलग–अलग होती है। इसलिए परीक्षा हॉल में कागज़–कलम से ली गई परीक्षा के अलावा मूल्यांकन के बहुविध रूप होने चाहिए। मौखिक परीक्षा और समूह कार्य मूल्यांकन को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

खुली–पुस्तक परीक्षा और लचीली समय सीमारहित परीक्षा को देश भर में प्रायोगिक तौर पर लागू किए जाने की ज़रूरत है। इन नवाचारों का अतिरिक्त फायदा यह है कि वे परीक्षाओं को स्मृति जाँच से हटाकर व्याख्या, विश्लेषण और समस्या समाधान करने जैसी उच्चतर क्षमताओं की जाँच की ओर ले जा सकेंगे। यहाँ तक कि परंपरागत परीक्षा पद्धति को भी बेहतर तरीके से प्रश्न–पत्र तैयार कर और विद्यार्थियों को वांछनीय जानकारी (जैसे आवर्ती सारणी, त्रिकोणमितीय आकृतियाँ, नक्शे, इतिहास की तिथियाँ, सूत्र आदि) देकर इस दिशा में मोड़ा जा सकता है। चूंकि विद्यार्थियों की प्रकृति एक दूसरे से भिन्न होती है और शिक्षण की पद्धतियाँ भी अलग–अलग होती हैं, इसलिए अगले चरण में जाने के लिए हर विद्यार्थी से हर विषय में समान स्तर की मांग करना उचित नहीं है। भारत में ग्रामीण–शहरी विभाजन के कारण इस मांग को सामाजिक दृश्टि से भी उचित नहीं कहा जा सकता। यह अभिलिखित तथ्य है कि ग्रामीण स्कूलों में असफलता और स्कूल छोड़ने का बड़ा कारण गणित और अंग्रेज़ी में कम क्षमता का प्रदर्शन है। बोर्डों को इस संभावना पर विचार करना चाहिए। इन विशयों में पास होने के लिए विद्यार्थियों को दो स्तरों में से एक, यहाँ तक कि तीन स्तरों में से एक पर परीक्षा देने का अवसर दिया जाए। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि अलग–अलग चरण की पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकें अलग–अलग हों।

'सभी के लिए एक समान परीक्षा' की पद्धति सांगठनिक रूप से तो ठीक हो सकती है, लेकिन उसे विद्यार्थी–केन्द्रित नहीं कहा जा सकता और न ही भारत के तेज़ी से उभरते रोज़गार बाज़ार के अनुकूल, जिसमें विविधताएँ बढ़ रही हैं। आकलन की औद्योगिक एसेंबली लाइननुमा एकसमान मूल्यांकन पद्धति के स्थान पर आकलन को अधिक मानवीय और विविध बनाने की ज़रूरत है। यदि अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि आने वाले दस सालों में प्रत्येक चार में से चार नयी नौकरियाँ सेवाओं के क्षेत्र में होंगी तो भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव की आश्यकता है। जैसे–जैसे मानकीकृत यंत्र बनाने वाले भारतीय कम हो रहे हैं वैसे–वैसे सह नागरिकों की समस्याओं को सुलझाने के ज्यादा से ज्यादा काम किए जा रहे हैं। इसलिए परीक्षा प्रणाली को और अधिक मुक्त, लचीला, रचनात्मक तथा सरल होना चाहिए।

अन्य स्तरों पर बोर्ड परीक्षाएँ

किसी भी परिस्थिति में बोर्ड या राज्य स्तरीय परीक्षाएँ अन्य स्तरों पर आयोजित नहीं की जानी चाहिए, जैसे कक्षा पांच, आठ या ग्यारहवीं के स्तर पर। वास्तव में बोर्ड को दूरगामी कदम के तौर पर इस दिशा में

सोचना चाहिए कि कक्षा दस की परीक्षा को वैकल्पिक बना दिया जाए, विद्यार्थियों को इस छूट के साथ कि वे उसी स्कूल में आगे शिक्षा पाते रहें और जो बोर्ड का प्रमाणपत्र नहीं चाहते वे इसके बदले में आंतरिक परीक्षा में हिस्सा ले सकें।

प्रवेश परीक्षाएँ

स्कूल के अंत की बोर्ड परीक्षा और स्पर्धात्मक प्रवेश परीक्षाओं को अलग करने की ज़रूरत है। अगर विद्यार्थियों को ऐसी कुछ ही प्रतिस्पर्द्धात्मक परीक्षाओं में बैठना पड़े तो इनके चलते पैदा होने वाला तनाव कम हो सकता है। एक ऐसी केंद्रीय संस्था हो, जो साल में कई बार प्रवेश परीक्षाओं का आयोजन करे, जो देश भर में उनके केंद्रों पर आयोजित हों, तथा वह संस्था विद्यार्थियों की उपलब्धियों का समय पर आकलन करे और नतीजे घोशित करे। इस प्रकार की राश्ट्रीय परीक्षाओं में विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर शिक्षण संस्थान विद्यार्थियों को विश्वविद्यालयों और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में नामांकन दे सकते हैं। वास्तविक डिज़ाईन और परीक्षण तैयार करना इस संस्था के अधिकार क्षेत्र में नहीं होना चाहिए।

(स्रोत : एन.सी.एफ.–2005, 5.3 परीक्षा सूधार : 5.3.1 से 5.3.4, पृष्ठ संख्या 127–130)

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 से लिए गए इस अंश के माध्यम से आपने परीक्षा के लिए आकलन व मूल्यांकन के नए स्वरूप को जाना। आपने यह भी देखा कि किस प्रकार से परीक्षा की पहलेवाली प्रणाली विद्यार्थियों की असफलता को मापने पर ज्यादा जोर देती थी और उन्हें आगे बढ़ने से रोकती थी।

गतिविधि

विद्यालय की मूल्यांकन प्रणाली में ग्रेड आधारित व्यवस्था पर अधिक जोर दिया जा रहा है? आपके अनुसार, पहले के मूल्यांकन व्यस्था से यह किस प्रकार अलग है। इसपर कक्षा में चर्चा करें।
क्या ग्रडिंग सिस्टम में मूल्यांकन अधिक लचीला हो जाता है? अपने विद्यालय के अन्य शिक्षकों से बात करे और उनके अनुभवों के विश्लेषण के आधार पर कहें।

थोड़ा और पीछे चलें तो परीक्षा के संदर्भ में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा समिति की रिपोर्ट 1990' और 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986' ने भी कई सिफारिशें पेश की। आप यह विश्लेषण करें कि उनमें से कौन कौन सी सिफारिशों पर आगे ध्यान दिया गया। इन रिपोर्टो के कुछ अंश आगे दिए जा रहे हैं :

सिफारिशें (12.10.7) :

1. परीक्षा सुधार के प्रश्न को निम्नलिखित तथ्यों का पैकेज माना जाना चाहिए:

- सेमेस्टर पद्धति का समावेश
- अनवरत आंतरिक मूल्यांकन, तथा इस प्रकार के मूल्यांकनों की विश्वसनीयता की रक्षा (तथा जिस किसी भी रूप में परीक्षा में ली जाय तथा ''जिस स्केल'' पर वे मापी जायं)। एक ही कक्षा में प्राथमिक स्तर पर छात्रों के वर्ग का समूहिक मूल्यांकन तथा छात्रों के वैयक्तिक भेदों के आधार पर उनका मूल्यांकन। अध्यापक की प्रमूख भूमिका हो। सिद्धांत यह हो कि ''जो भी पढ़ाता है अथवा पढ़ाती है वही पाठ्यक्रम निर्धारित करे तथा मूल्यांकन करे''।
- छात्रों को एक चरण से दूसरे चरण में प्रवेश करने की सुविधा (प्रवेश परीक्षा उर्तीण करके)।

- छात्रों को प्रमात्रक (मॉड्यूल) चुनने की स्वतंत्रता और सुविधा, बजाय इसके ि कवे संपूर्ण पाठ्यक्रम के पैकेज लेने को बाध्य हो।
- छात्रों को इकाई (क्रेडिट) संचयन का प्रावधान, एक संस्था से दूसरी संस्था में ग्रेड के अंतरण की सुविधा, छात्रों को अनेक बार प्रवेश लेने तथा छोड़ने की सुविधा जो वास्तव में *अनौपचारिक* स्कूल पद्धति का *आरंभ* करेगी। वास्तव में इस पैकेज को संपूर्ण रूप से क्रियान्वित किया जाना चहिए न कि तदर्थ रूप में तथा अंशों में अथवा मात्र व्यक्तिगत प्रयास के रूप में।

2. हमारी शिक्षा पद्धति के वर्तमान संदर्भ में दरअसल गंभीर आशंकाएं हैं, मुख्यतः अध्यापक की प्रमुख भूमिका की संकल्पना को लेकर। शिक्षा के परिप्रेक्ष्य पर्चे पर अनुक्रिया करने हुए कई उत्तरदाताओं ने शंकाएं व्यक्त की है। इसका मुख्य कारण यह बताया गया कि अध्यापक को जो इतना अध्किार दिया है वह उसका दुरूपयोग कर सकता है अथवा कर सकती है। उतरदाताओं का यह भी कहना था कि अतीत में इस प्रकार के प्रयोग सफल नहीं हुए। दूसरा मत यह भी व्यक्त किया गया कि अध्यापक स्वयं इस परीक्षा में सुधार के श्रमसाध्य कार्य के अधिकार को सवीकार नहीं करेंगे। यह स्वाभाविक है कि स्थापित व्यवस्था के स्थान पर परिवर्तन लाने पर उसका प्रतिरोध होगा। तथापि कई बरसों से लगातार विशेषज्ञों द्वारा परीक्षा में सुधार की मांग की जा रही है और कई राज्यों में विश्वविद्यालयों ने आंशिक रूप से परीक्षा सुधार लागू करना शुरू कर दिया है। उपरोक्त पैकेज के अंतर्गत निस्संदेह परीक्षा सुधारों की दिशा में व्यवस्थित ढंग से प्रगति की आवश्यकता है किंतु विशाल देश होने के कारण तथा उसकी शिक्षा में विविधता होने के कारण इस पैकेज के क्रियांवयन के साथ कई व्यावहारिक समस्याएं जुड़ी हैं। इसलिए एक परीक्षा सुधार आयोग की आवश्यकता है। यह एक स्थायी संस्था होनी चाहिए जो समय–समय पर परीक्षा में सुधार की प्रगति का ''मानीटरिंग'' करती रहे जब तक कि काम चरणों में पूरा नहीं हो जाता। इस आयोग का कार्य क्षेत्र इस प्रकार हो सकता है–

- समय–समय पर परीक्षा सुधारों की स्थिति का पुनरावलोकन
- परीक्षा सुधारों को चरणों में पूरा करना, इसके लिए समय सीमा निर्धारित करना जिसके अंतर्गत सुधार प्रभावी होंगे।
- स्तरण (ग्रडिंग) और मापन (स्केलिंग) की वस्तुनिष्ठ ओर निष्पक्ष पद्धति का समावेश करना।
- अनवरत व्यापक आंतरिक मूल्यांकन के लिए मानक निर्धारित करना।
- शिक्षण के न्यूनतक स्तर पर परामर्श, जो आंतरिक मूल्यांकन पद्धति का भाग होगा।
- सेमेस्टरीकरण तथा प्रमाणीकरण के लिए रीति निर्धारित करना।
- अंतरसंस्थानीय संपर्क के बारे में परामर्श, जिससे अपेक्षाकृत उच्च स्तर प्राप्त हो सके।
- परीक्षा सुधारों के सफल क्रियान्वयन के लिए अध्यापकों का अभिविन्यास (प्रशिक्षण)

यह स्पष्ट है कि परीक्षा सुधार आयोग को प्रत्येक राज्य की परीक्षा सुधार की समस्याओं में जाना होगा और राज्य स्तर के अधिकारियों को उसमें शामिल करना होगा ताकि राज्य स्तर तथा राज्य स्तर से नीचे की समस्याओं पर पूरी तरह से विचार किया जा सके। इस आयोग को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, ए.आई.यू, ए.आई.सी.टी.ई., एन.सी.ई.आर.टी., नीपा तथा राज्य संसाधन संस्थाओं, राज्यों के शिक्षा बोर्डों, दूसरी विशेषज्ञ संस्थाओं के अधिकारीयों और राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर अध्यापक व आम संगठनों से भी समय–समय पर

परामर्श करना होगा। आयोग का अध्यक्ष कोई ख्याति प्राप्त शिक्षाशास्त्री होगा जिसे भारत सरकार के मंत्री के समकक्ष स्थान प्राप्त होगा। आयोग एक सुगठित संस्था होगा। अध्यक्ष के अलावा इसमें स्कूल के क्षेत्र के विशेषज्ञ, विश्वविद्यालय तथा तकनीकी शिक्षा विशेषज्ञ होंगे। इसके अध्यक्ष और सदस्य पूर्णकालिक कार्यकर्ता होंगे। (स्रोत : राष्टीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा समिति की रिपोर्ट 1990, पृष्ठ संख्या 264–265)

गतिविधि

परीक्षा को लेकर विद्यार्थियों और शिक्षकों के मन में क्या–क्या आशंकाए होती हैं, उनकी एक सूची बनाएं। क्या उन आशंकाओं के विषय में नीतिगत दस्तावेजों में कोई चर्चा मिलती है?

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के भाग 8 में मूल्यांकन प्रक्रिया और परीक्षा में सुधार के लिए निम्नांकित अनुशंसाएं की गयीं:–

8.23– 'विद्यार्थियों के कार्य का मूल्यांकन सीखने और सीखाने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। एक अच्छी शैक्षिक नीति के अंग के रूप में शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए परीक्षाओं का उपयोग होना चाहिए।

8.24– परीक्षा में इस प्रकार सुधार किया जाएगा जिससे कि मूल्यांकन की एक वैध और विश्वसनीय प्रक्रिया उभर सके और वह सीखने और सीखाने की प्रक्रिया में एक सशक्त साधन के रूप में काम आ सके। क्रियात्क रूप में इसका अर्थ होगाः

i. अत्यधिक संयोग (चान्स) और आत्मगतता (सब्जेक्टिविटि) के अंश को समाप्त करना।
ii. स्टाई पर जोर को हटाना
iii. ऐसी सतत् और संपूर्ण मूल्यांकन प्रक्रिया का विकास करना जिसमें शिक्षा के शास्त्रीय और शास्त्रेतर पहलू समाविष्ट हो जाएं और जो शिक्षण की पूरी अवधि में व्याप्त रहें।
iv. अध्यापकों, विद्यार्थियों और माता–पिता के द्वारा मूल्यांकन की प्रक्रिया का प्रभावी उपयोग।
v. परीक्षाओं के आयोजन में सुधार।
vi. परीक्षा में सुधार के साथ–साथ शिक्षण–सामग्री और शिक्षण विधि में भी सुधार।
vii. माध्यमिक स्तर से क्रमबद्ध रूप में सत्र–प्रणाली का प्रारंभ।
viii. अंकों के स्थान पर ''ग्रेड'' का प्रयोग।

8.25– ये उद्देश्य वाह्य परीक्षाओं और शिक्षा–संस्थाओं के अंदर के मूल्यांकन दोनों के लिए प्रासंगिक हैं। संस्थागत मूल्यांकन की प्रणाल को सरल बनाया जायेगा और बाहरी परीक्षाओं की प्रचुरता को कम किया जाएगा।

(स्रोत : राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986)

गतिविधि

आप अपने विद्यालय में विद्यार्थियों की परीक्षा से संबंधित वैधता और विश्वसनीयता का खयाल कैसे रखते है, कुछ उदाहरणों की मदद से समझाएं।

उपरोक्त विवरण में से किन अनुशंसाओं की छाप आप अपने विद्यालय पर देख पा रहे हैं, साथ ही आप यह भी बताएं कि किन अनुशंसाओं का प्रभाव विद्यालय पर नहीं देख पा रहे हैं।

थोड़ा और पीछे चलें तो 'दसवर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम : एक रूपरेखा–1976' ने भी मौजूदा परीक्षा तंत्र के विषय में कुछ अनुशंसाएं रखी। आप यह विश्लेषण करें कि उनमें से किन–किन अनुशंसाओं को विद्यालयी व्यवस्था में आगे शामिल किया गया और कैसे?

मूल्यांकन : वर्तमान शिक्षा–प्रणाली में या तो बिना किसी परीक्षा के सब विद्यार्थियों को उत्तीर्ण कर दिया जाता है अथवा प्रत्येक विषय की वार्षिक परीक्षा लेकर बच्चों को इस बात के लिए अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरित किया जाता है कि वे कुछ समय लगाकर अधपची जानकारी को रट लें और बाद में भूल जाएं। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर के लिए उद्देश्यों को निश्चित किया जाए! फिर उसके अनुसार इकाई–श्रृंखला के रूप में पाठ्यक्रम रखा जाए। इस प्रकार प्रत्येक इकाई का पृथक मूल्यांकन करके वर्ष के अंत में पड़ने वाले परीक्षा के भार को कम किया जा सकता है। आवश्यकता साधनों और विधियों का प्रयोग केवल विद्यार्थियों के कार्य में ही नहीं, बल्कि समग्र शिक्षा प्रक्रिया के मूल्यांकन के लिए किया जाना चाहिए। और जहां तक संभव हो विद्यार्थियों के दण्ड के तौर पर अनुत्तीर्ण करने की अपेक्षा आवश्यकतानुसार उनकी कमियों को उपचार–पाठ्यों द्वारा दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। ज्यों–ज्यों आन्तरिक –मूल्यांकन प्रणाली जड़ पकड़ती जायेगी और स्तर को गिराने वाली व्यक्तिगत द्वेष भावना दूर होती जायेगी, त्यों–त्यों (दसवीं कक्षा के अंत में भी) वाह्य–लोक–परीक्षा अनावश्यक होती जायेगी। आन्तरिक मूल्यांकन प्रणाली का विकास करने के बाद वाह्य परीक्षा को भी समाप्त कर देना होगा। प्रत्येक बोर्ड/राज्य को इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक क्रमिक कार्यक्रम निश्चित करना चाहिए।

(स्रोत : दसवर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम : एक रूपरेखा–1976, पृष्ठ संख्या 7–8)

7.3 प्राथमिक स्तर पर बच्चे छोटे और कोमल होते हैं। इस स्तर पर उन पर मूल्यांकन की कोई लचकहीन प्रणाली नहीं थोपी जा सकती। अतः मूल्यांकन शिक्षा प्रक्रिया में ही सन्निहित होना चाहिए। प्रत्येक बच्चे के लिए लगातार प्रगति का लेखा रखने की प्रणाली का विकास किया जाना चाहिए। इसका आधार निरीक्षण और मौखिक परीक्षाएँ होनी चाहिए। प्रोन्नति का आधार वर्ष के अंत में ली जाने वाली मौखिक परीक्षा नहीं होनी चाहिए। सम्पूर्ण सत्र में प्रगति के लेखे के आधार पर ही बच्चे को अगली कक्षा में चढ़ा देना चाहिए। फिर भी उन बच्चों पर विशेष ध्यान देना चाहिए जो संतोषजनक प्रगति नहीं करते। उन बच्चों पर और भी अधिक ध्यान देना चाहिए जो समाज के पिछड़े हुए वर्गों से हैं।

7.4 प्रत्येक क्षेत्र में विद्यार्थियों की प्रगति का अविरल मूल्यांकन एक नियमित कार्य–पद्धति पर आधारित होना चाहिए। मिडिल व आगे के विद्यार्थियों की विभिन्न विषयों में प्रगति के मूल्यांकन के लिए लिखित परीक्षाएँ भी होनी चाहिए। किन्तु परीक्षण की विधि केवल निबंध–परीक्षाओं की ही नहीं होनी चाहिए। उसके लिए अलग–अलग तरीके अपनाये जा सकते हैं। प्रायोगिक परीक्षाएं भी प्रारंभ करनी चाहिए। निरीक्षण, जाँच–सूचियाँ, मौखिक परीक्षाएँ, विद्यार्थियों द्वारा वस्तुओं का मूल्यांकन भी इस परीक्षण के अतिरिक्त साधनों और विधियों के रूप में प्रयुक्त होना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो वार्षिक परीक्षा भी ली जाा सकती है। किन्तु, वर्ष भर में किए गए अन्य मूल्यांकनों की तूलना में इस पर अधिक बल नहीं देना चाहिए। कुल मिलाकर उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण करने के लिए औपचारिक परीक्षाओं पर बल नहीं देना चाहिए! बल विद्यार्थी की प्रगति के मूल्यांकन पर होना चाहिए जिससे संबद्ध व्यक्तियों का मार्गदर्शन हो सके। वास्तव में किसी भी परीक्षा में कोई उत्तीर्ण अथवा अनुत्तीर्ण नहीं होना चाहिए। पाँच सूचक अक्षरों की स्तर प्रणाली (ए.बी.सी.डी.ई) का आसानी से प्रयोग किया जा सकता है। इस मूल्यांकन का आगामी शिक्षा में उपयोग महत्वपूर्ण है। यह विद्यार्थियों की उनकी परीक्षित उत्तर–पुस्तिकाएँ लौटा कर और

उनकी अशुद्धियों पर बातचीत कर तथा उन्हें बेहतर ढंग से कार्य कर सकने के निर्देश देकर किया जा सकता है। यदि कोई विद्यार्थी अपने किसी मूल्यांकन में अपना स्तर सुधारना चाहता है, तो उसे उस विषय में पुनः परीक्षा देने का अवसर दिया जाना चाहिए।

7.5 प्रत्येक विषय/इकाई में स्कूल द्वारा किये गए संचयित मूल्यांकन का रिकार्ड बनाया जाना चाहिए और प्रत्येक विद्यार्थी को दिया जाना चाहिए। इस प्रकार के मूल्यांकन के लेखे में शैक्षिक और गैर शैक्षिक क्षेत्र, दोनों होने चाहिए। उनका समुच्य नहीं किया जाना चाहिए। अतः स्कूल छोड़ने के अंतिम प्रमाणपत्र में उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण नहीं लिखा होना चाहिए। इस प्रमाणपत्र में प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा विद्यालय में प्राप्त सूचकांक–अक्षरों (ए.बी.सी.डी.ई) का ही उल्लेख होना चाहिए। धीरे–धीरे जब आंतरिक मूल्यांकन की प्रणाली जड़े जमा लेगी और स्तर को निम्न करने वाले परीक्षण–पूर्वाग्रहों को समाप्त करने की विधि जब बन जायेगी, तब दसवीं कक्षा के अंत में वाह्य लोक–परीक्षा की अनिवार्यता नहीं रहेगी और तब उसे समाप्त कर देना चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रत्येक बोर्ड/राज्य को एक क्रमिक–कार्यक्रम बनाना चाहिए।

7.6 राज्य भर में स्कूल समुच्चयों की स्थापना की जा सकती है। किसी भी समुच्चय के स्कूल के अध्यापकों की एक समिति बनाई जा सकती है, जो अपने क्षेत्र के स्कूलों से समय–समय पर उत्तर पुस्तिकाएँ और प्रश्न पत्र मंगा कर पूर्वाग्रह दूर करने हेतु कुछ को पुनः मूल्यांकित करें। फिर संबद्ध अध्यापकों से उन पर खुला विचार–विमर्श किया जा सकता है। जिला स्तर पर जिला शिक्षा अधिकारीं, निरीक्षक और वरिष्ठ अध्यापक ऐसी समिति बना करके इस प्रकार के नमूनों की पुनः परीक्षा कर सकते हैं। फिर वे संबंद्ध स्कूल समुच्चयों से परिणामों पर बातचीत कर सकते हैं। राज्य स्तर पर भी ऐसी समितियों का निर्माण कियाय जा सकता है। यह इस बात को सुनिश्चित करने का एक तरीका होगा कि मूल्यांकन ठीक हुआ है। इससे स्तर को भी बनाए रखा जा सकेगा। यह केवल समुदाय को विद्यालय से संपृक्त करने के लिए ही नहीं होगा बल्कि यह बनाने के लिए भी होगा कि मूल्यांकन किस प्रकार किया जाता है व विद्यार्थी की शिक्षा और विकास से प्रगति लाने और अध्यापकों द्वारा शिक्षण में सुधार लाने में किस प्रकार उसका उपयोग किया जाता है।

(स्रोत : दसवर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम : एक रूपरेखा–1976, पृष्ठ संख्या 47–88)

गतिविधि

आप उपरोक्त अनुशंसाओं में से किन–किन की छवि अपने विद्यालय की परीक्षा व्यवस्था में देखते हैं। साथ हीं यह भी विश्लेषित करें कि परीक्षा के संदर्भ में विद्यालयों में क्या नहीं होना चाहिए।

परीक्षाओं मे सूधार के संदर्भ में शिक्षा आयोग 1964 ने भी कई सूझाव दिए। आयोग का मत था कि हम बाह्य परीक्षाओं को धीरे धीरे समाप्त कर दें और उनके स्थान पर निरन्तर आंतरिक मूल्यांकन की एक प्रणाली अपनायें (पैरा11.53), परीक्षकों का पारिश्रमिक (जो एक निहित स्वार्थ है और प्रणाली को चिरस्थायी बनाये रखने की चेष्टा करता है) समाप्त कर दिया जाय (पैरा11.51), थोड़े थोड़े समय पर मूल्यांकन करना आरम्भ किया जाय, जिससे अंतिम बाह्य परीक्षा का महत्व कम हो, और परीक्षा के तरीकों को सुधारा जाय (पैरा11.54 और पैरा 11.55), स्कूल की परीक्षा के अन्त में छात्र को जो प्रमाण पत्र दिया जाय, उसमें केवल यह विवरण हो कि उसने कैसा कार्य किया है, परन्तु उसमें छात्र के सफल या असफल होने का कोई उल्लेख न हो (पैरा 9.80), और विद्यार्थियों के पूर्णतः आंतरिक मूल्यांकन की एक प्रणाली विकसित की जाय

(जिसमें बाह्य परीक्षा के परिणाम सम्मिलित नहीं किये जायें)(पैरा 9.84)। यदि देखे तो इन सिफारिशों पर बहुत कम व्यावहारिक कार्य हुआ है और हम लोग अभी तक प्रायः एकमात्र बाह्य परीक्षाओं पर ही भरोसा करते हैं।

गतिविधि

- अपने विद्यालय में हानेवाले आंतरिक और बाह्य दोनो परीक्षाओं की व्यवस्था का वर्णन करें। किसी अन्य विद्यालय की परीक्षा प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन अपने विद्यालय की परीक्षा प्रणाली से करें।
- शिक्षा आयोग 1964 के उन मौलिक अंशों को प्राप्त करें जिसकी चर्चा उपर की गई है?

यदि थोड़ा और पीछे चलें तो 'बिहार राज्य माध्यमिक शिक्षा समिति का प्रतिवेदन 1961–63' से कुछ अंशों का उल्लेख करना आवश्यक हो जाएगा जिसके माध्यम से परीक्षा की तात्कालीन अवधारणा एवं विमर्शों को समझने में मदद मिलेगी। आगे उसके कुछ अंशों को दिया गया है।

यहाँ एक युक्तिसंगत प्रश्न यह उठता है कि छात्र की निष्पत्तियों (attainments) को मापने का अभिकरण क्या होना चाहिए? इस उद्देश्य के लिए निम्नांकित वैकल्पिक अभिकरण काम में लाये जा सकते हैंः–

1. *परीक्षा लेकर आंतरिक एवंय अभिकरणों द्वारा मूल्यांकन*
2. *केवल शिक्षकों के द्वारा छात्रों का मूल्यांकन, और*
3. *उपरिनिर्दिष्ट दोनों अभिकरणों को मिलाकर छात्रों की निष्पत्तियों का मूल्यांकन सार्वजनिक परीक्षाओं के द्वारा छात्रों की निष्पत्तियों का मूल्यांकन एक सुविदित प्रणाली है। इसका बड़े पैमाने पर संगठित सांस्थिक शिक्षा की प्रणाली में ढूंढा जा सकता है। जब प्राचीन भारत के शिक्षक अपने छात्रों को एकांत स्थानों में पढ़ाते थे, तब बाह्य अभिकरणों और जांच की प्रणाली का विकास हुआ हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। किन्तु जब एक समुदाय या कई समुदायों ने आपस में मिलकर शैक्षिक संस्थाओं का संगठन किया, जब अध्ययन के पाठ्यक्रम बाहर से आरोपित किये गये, और जब वे बाह्य प्राधिकारों से नियंत्रित होने लगे तो बाह्य अभिकरणों द्वारा छात्रों की उपलब्धियों का मूल्यांकन का मापनसिद्ध बन गया।*

छात्रों की आंतरिक परीक्षाएं प्रायः उनके शिक्षकों द्वारा नियंत्रित होती है तथा ली जाती है, और छात्रों के निष्पत्तियों के निर्धारण में उनका प्रमुख योग रहताा है। ऐसा अनुभव किया जाता है कि जब शिक्षक यह जानते हैं कि वे एक मात्र निर्धारक नही हैं, और उनके छात्रों की निष्पत्तियों किसी बाह्य अभिकरण द्वारा आंकी जायेगी तो उनपर इसके कुछ निरोधाकत्मक प्रभाव पड़ते हैं, जिसके लाभ भी हैं और हानियां भी हैं। जहां बाह्य परीक्षाएं छात्रों के उन्नयन के लिए उन्हें अधिक प्रयास करने को प्रेरित करती हैं वहां बाह्य परीक्षाएं छात्रों के उन्नयन के लिए उन्हें अधिक प्रयास करने को प्रेरित करती हैं वहां बाह्य अभिकरणों द्वारा व्यवहृत मूल्यांकन की प्रणाली के प्रति उनमें दास भावना और निष्क्रियता भी उत्पन्न करती हैं। वाह्य परीक्षा की पद्धति से शिक्षा की उत्कृष्टतर प्रणाली को लागू करने की स्वाधीनता अवरूद्ध हो जाती है, छात्र अपनी गति से नहीं चल पाते और शिक्षक मूल्यांकन के अपने उपकरणों (tools) का विकास नहीं कर पाते। फिर भी कुछ अच्छी संस्थाओं के ऐसे उदाहरण हैं, जो बाह्य परीक्षा के अभिकरणों की स्वेच्छाचारित को स्वीकार नहीं करती, बल्कि वे उस पर अपनी श्रेष्टता बनाए रखती है और अपने छात्रों के लिए असाधारण रूप से अच्छे परिणाम प्राप्त करती हैं।

परीक्षाओं के निम्नांकित उद्‌देश्य हो सकते हैं :–

1. *छात्रों का क्रमस्थापन,*
2. *छात्रों की सबलताओं और निर्बलताओं का निदान, पाठ्‌यक्रम की विषय–वस्तुओं, विधियां, अध्यापन, क्रिया शैलियां और परीक्षण आदि,*
3. *छात्रों की भावी सफलता की प्रागुक्ति (prediction)*

जबतक छात्र किसी शैक्षिक इकाई की पूर्णता की अवस्था तक नहीं पहुंच जाते, तबतक परीक्षा लेने और उपरिनिर्दिष्ट कार्यों को करने का दायित्व, बिना किसी हिचक के, पृथक्–पृथक् स्कूलों और शिक्षकों को दे दिया जाता है, किन्तु अन्तिम परीक्षा के संबंध में ऐसी बात नहीं है।

प्रश्न है– क्या इन सार्वजनिक परीक्षाओं का परित्याग कर प्रत्येक स्कूल द्वारा संचालित अन्तिम गृह–परीक्षाओं को मान्यता प्रदान की जा सकती है? यहां जो पहली बात सामने आती है, वह यह है कि क्या हमारे जीवन के अधिविद्य और सार्वजनिक क्षत्रों में अलग–अलग स्कूलों के निर्णयों को स्वीकार करने के लिए लोग तैयार हैं? कुछ समय बीतने पर कतिपय प्रमुख संस्थाओं द्वारा दिये गये प्रमाण–पत्र स्वीकार्य हो सकते हैं, किन्तु आरंभ में लोग उन्हें स्वीकार करने में हिचक सकते हैं। उच्चतर अध्ययन की संस्थाओं में प्रवेश पाने के लिए सभी स्कूलों द्वारा दिये गये प्रमाण–पत्रों को मान्यता प्राप्त करना तो अत्यंत उन्नत देशों के लिए भी संभव नहीं हो सका है। यदि नियोजक स्कूल के स्नातकों को नियुक्त करने के लिए निर्वाचन–परीक्षा ले रहे हैं और कॉलेज तथा विश्वविद्यालय मिलकर स्कूल स्नातकों की परीक्षा लेते हैं और अपने द्वारा संचालित कॉलेज प्रवेश परीक्षाओं के आधार पर उन्हें भर्ती करते हैं, तो संचित अभिलेखों (cumulative) एवं गृह परीक्षाओं के आधार पर माध्यमिक स्कूलों द्वारा दिये गये स्नातक प्रमाण–पत्र की स्वीकृति प्राप्त हुई है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। हमारे देश के कुछ नियोजक और कतिपय प्रतिष्ठित संस्थाएं, जो चयनात्क (selective) है, चुनाव के लिए प्रतियोगिता परीक्षाएं लिया करती हैं, क्योंकि उनमें नियुक्ति या प्रवेश पाने की इच्छा रखनेवालों की संख्या बहुत बड़ी होती है। किन्तु सार्वजनिक परीक्षाएं संचालित करने वाले किसी स्वतंत्र निकाय (body) द्वारा प्रदत्त स्नात्तक प्रमाण–पत्र सेवाओं अथवा उच्चतर अध्ययन की संस्थाओं में प्रवेश के लिये पृथक प्रवेश परीक्षा लेने से हमें मुक्त करते हैं। सार्वजनिक परीक्षओं से स्तर को तर्कसंगत एकरूपता का निश्चय रहता है, जिसका सामान्य सावर्जनिक परीक्षा नहीं होने पर, अभाव हो जायेगा।

अभी शिक्षकों द्वारा किये गये छात्रों के मूल्यांकन के आधार पर अलग–अलग स्कूलों द्वारा मिड्‌ल स्कूल प्रमाण–पत्र दिये जाते हैं। मिड्‌ल स्कूल प्रमाण–पत्र परीक्षा की समाप्ति से हमें अच्छे परिणाम नहीं प्राप्त हुए हैं। इसके कारण छात्रों के मूल्यांकन कार्य में स्तर–भेद आ गया है। फिर शैक्षिक स्तरों में इससे सुनिश्चित ह्रास हुआ है और स्कूलों को दिये गये अधिकारों का दुरूपयोग भी हुआ है। शिक्षकों और छात्रों, दोनों के प्रयासों में इससे शिथिलता भी आई है। स्कूलों द्वारा छात्रों को दिये गये प्रमाण–पत्रों एवं क्रमों का उपयोग गलत उद्‌देश्यों की पूर्ति के लिए किया है। ऐसे उदाहरण हैं कि स्कूल में बिना गये लोगों ने सप्तम वर्ग की उत्तीर्णता के प्रमाण–पत्र प्राप्त, और प्रस्तुत, किये हैं। यह स्थिति इसलिए अधिक निराशजनक है चूंकि सामान्यता महिला अभ्यर्थियों और अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के पुरूष अभ्यर्थियों को प्राथमिक स्कूल शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए जो शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय हैं उनमें प्रवेश की योग्यता प्राप्त हो जाती है, यदि उनके पास सप्तम वर्ग की उत्तीर्णता का प्रमाण–पत्र हो। शैक्षिक रूप से पिछड़े कई क्षेत्रों में बिना किसी प्रशिक्षण के भी प्राथमिक स्कूलों में शिक्षक के पदों पर उनकी नियुक्ति हो सकती है, क्योंकि ऐसे स्थानों में काम करने वाले अधिक योग्यता प्राप्त और प्रशिक्षित व्यक्ति नहीं मिलते। सहज ही अनुमान

किया जा सकता है कि ऐसे स्कूलों में जहाँ सप्तम वर्ग की उत्तीर्णता का झूठा प्रमाण–पत्र प्राप्त करनेवाला शिक्षक छात्रों को पढ़ाने के लिए नियुक्त किया जाता है, वहाँ शिक्षण और अध्ययन की स्थिति कैसी होगी। और इसके उपर उच्च विद्यालय के शिक्षक प्राथमिक विद्यालयों के गिरते हुए स्तरों की निंदा करते हैं। प्राथमिक विद्यालयों द्वारा छात्रों को दिये गये क्रमों को स्वीकार करने की तत्परता वे शायद ही दिखलाते हैं। अष्टम वर्ग के लिये छात्रों को चुनने के उद्देश्य से माध्यमिक स्कूलों को पृथक प्रवेश परीक्षा लेनी पड़ती है।

(स्रोत : बिहार राज्य माध्यमिक शिक्षा समिति का प्रतिवेदन 1961–63, पृष्ठ संख्या 77–79)

उपरोक्त अंश के माध्यम से उस समय विद्यालयों में चल रही परीक्षा की स्थितियों का अनुमान लगाएं। क्या उनमें अब कुछ परिवर्तन आया है। परीक्षा के कुछ उद्देश्यों की चर्चा इस दस्तावेज में की गई है, आप आज के संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता का विश्लेषण करें।

गतिविधि

अब तक आप ने परीक्षा के विषय में जितना पढ़ा, उसके आधार पर परीक्षा की पुरानी व्यवस्था और नयी व्यवस्था के कुछ विशेषताओं को सूचीबद्ध करके उनका विश्लेषण करें।

यदि परीक्षा के संदर्भ में स्वतंत्रता पूर्व की स्थिति को देखें तो 1858 से 1917 तक बिहार के माध्यमिक बोर्ड की परीक्षा जिसे पहले 'एंट्रेन्स' एवं बाद में मेट्रीकुलेशन परीक्षा कहा जाने लगा, का संचालन कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा किया जाता था। 1918 के बाद यह परीक्षा पटना विश्वविद्यालय द्वारा ली जाने लगी। वर्तमान बिहार विद्यालय परीक्षा समिति के 1952 में अस्तित्व में आने के वर्ष तक पटना विश्वविद्यालय ही इस परीक्षा को संचालित करती रही।

उसके पहले की व्यवस्था को देखें तो पटना स्कूल का एक उदाहरण प्रस्तुत होता है। पता चलता है कि 1835 में पटना स्कूल की स्थापना पटना के आलमगंज में हुई। इस विद्यालय में अंग्रेजी, साहित्य और विज्ञान की पढ़ाई पर विशेष ध्यान था। आगे चलकर 1839, में इस स्कूल में तीन अलग–अलग विभाग अंग्रेजी, हिन्दी और उर्दू के बनाए गये। उस वक्त कोई बोर्ड नहीं था। सार्वजनिक परीक्षा स्थानीय जज की कचहरी में लोकल कमेटी सदस्यों तथा गणमान्य भारतीयों की उपस्थिति में संचालित की जाती थी। यह परीक्षा मौखिक एवं लिखित दोनों रूप में ली जाती थी। (स्रोत : किशोर मन की समझ, पृष्ठ संख्या 22)

__"ऐतिहासिक"__ रूप से देखे तो सार्वजनिक परीक्षाओं ने शिक्षा की नौकरशाही व्यवस्था के विकास में योगदान किया है। कसौटियों और अपेक्षाओं की सर्वमान्यता परीक्षा प्रणाली में नीहित थी। हमारी शिक्षा व्यवस्था के आरंभिक विकास–काल में परीक्षाओं ने उभरते हुए मध्यमवर्ग में औपनिवेशिक तंत्र के प्रति विश्वास और आशा की भावना कायम की। जहां इलिट स्कूल सुविधाप्राप्त परिवारों के बच्चों के लिए हैसियत वाली नौकरियों के सुरक्षित रास्ते मुहैया करा रहे थे, वहीं सार्वजनिक परीक्षाएं शेष समाज को यह तसल्ली दे रही थीं कि हैसियत प्रतियोगिता के जरिए भी पाई जा सकती है। यह तसल्ली इतनी विश्वनियता के साथ देने में परीक्षा प्रणाली इसलिए सक्षम सिद्ध हुई क्योंकि वह इतनी आनुष्ठानिक थी। वइ इस बात की मांग करती थी कि विद्यार्थी उन परिचित कौशलों का अनंत रिहर्सल करते रहे जो औपनिवेशिक प्रशासन की सुरक्षित नौकरियां पाने के लिए जरूरी थे। सिविल सर्विस वह प्रमुख इलिट भूमिका थी। जिसे शिक्षा के जरिए हासिल किया जा सकता था। इसलिए सारी परीक्षाएं सिविल सर्विस की प्रतियोगिता परीक्षा जैसी बन गई और उसकी तैयारी का ही एक रूप हो गई। इस संगत ने पाठ्यक्रम को स्थिर और लागू किए गए पाठ्क्रम में सीमित रखने में मदद दी।

(–प्रो0 कृष्ण कुमार, शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व, पृष्ठ संख्या 60–61)

गतिविधि

आप अलग–अलग काल के परीक्षा तालिकाओं का संग्रह करें और उनका विश्लेषण करें। यदि स्वतंत्रतापूर्व के विद्यालयी परीक्षा से संबंधित कोई तालिका मिल जाए तो और बेहतर होगा।

5.6 समेकन

इस इकाई में हमने परीक्षा की प्रक्रिया से संबंधित विभिन्न नीतिगत दस्तावेजों को अपने विद्यालय के संदर्भ में समझने की कोशिश की। साथ ही हमने यह जाना कि आज के संदर्भ में जिस प्रकार से विद्यालयी परीक्षा की प्रणाली को समझा जा रहा है, वैसी समझ बनने के पीछे का शैक्षिक इतिहास क्या है। अलग अलग समय के शैखिक दस्तावेजों के उद्धरण के माध्यम से आपने परीक्षा के संबंध में उनकी अनुशंसाओं को भी समझ तथा यह विश्लेषण किया कि उनका आपके विद्यालय की परीक्षा प्रणाली पर क्या असर पड़ा है। आपने यह भी विश्लेषित किया कि परीक्षा द्वारा जांची जाने वाली विषयवस्तु में ऐतिहासिक रूप से क्या–क्या बदलाव आए है।

5.7 मूल्यांकन के प्रश्न

1. परीक्षा की प्रणाली में क्या–क्या ऐतिहासिक बदलाव हुए हैं, उनकी एक सूची बनाएं।
2. आज के संदर्भ में आपके विद्यालय में जो परीक्षा की प्रणाली है, वह कब से शुरू की गई है, उसके कारण कौन कौन से नए काम शिक्षकों को करने पड़े।
3. आधुनिक नीतियों का परीक्षा के विषय में क्या मत है, इसका विश्लेषण करें।
4. क्या परीक्षा की प्रणाली में बाह्य मूल्यांकन होना चाहिए, विभिन्न नीतिगत दस्तावेजों की मदद से इसका विश्लेषण करें।
5. आप जिस परीक्षा प्रणाली से गुजर कर आए हैं और आज विद्यालयों में जिस प्रकार की परीक्षा प्रणाली है, उसका तुलनात्मक विश्लेषण करे।

उपयोगी संदर्भ सूची

- एस.सी.ई.आर.टी. (2008). बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008. पटना : एस.सी.ई.आर.टी.
- एस.सी.ई.आर.टी. (2009). बिहार के विद्यालयी शिक्षा हेतु नवीन पाठ्यक्रम. पटना : एस.सी.ई.आर.टी.
- एन.सी.ई.आर.टी. (1976). दसवर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम. नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी.
- एन.सी.ई.आर.टी. (2005). राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005. नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी.
- एन.सी.ई.आर.टी. (2006). राष्ट्रीय फोकस समूह के आधार पत्र (कुल 21). नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी.
- एन.सी.ई.आर.टी. (2008). परीक्षा प्रणाली में सुधार–राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र. नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी.
- एन.सी..टी.ई. (2010). अध्यापक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा. नई दिल्ली : एन.सी.टी.ई.
- कुमार, कृष्ण (1999), शिक्षा और ज्ञान. नई दिल्ली : ग्रन्थशिल्पी
- त्रिपाठी, डॉ. ज्ञानदेव मणि एवं कुमार, डॉ. खगेन्द्र (2011). शिक्षा के सौ वर्ष–स्कूली शिक्षा का इतिहास. पटना : बिहार विधान परिषद्.
- बिहार सरकार (1961–63). बिहार राज्य माध्यमिक शिक्षा समिति का प्रतिवेदन. पटना : शिक्षा विभाग.
- बिहार सरकार (1991). वर्ग 1 से 5 तक स्वीकृत पाठ्यक्रम. पटना :मानव संसाधन विकास विभाग.
- बिहार सरकार (2006). किशोर मन की समझ : बिहार में माध्यमिक शिक्षा एवं परीक्षा के संबंध में अध्ययन दल का प्रतिवेदन. पटना : शिक्षा विभाग.
- बिहार सरकार (2007). समान विद्यालय प्रणाली आयोग प्रतिवेदन. पटना : शिक्षा विभाग.
- भारत सरकार (2009). निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार का अधिनियम–2009. नई दिल्ली : मानव संसाधन विकास विभाग.
- भारत सरकार, (1966). शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग). नई दिल्ली : शिक्षा मंत्रालय.
- भारत सरकार, (1985). शिक्षक आयोग. नई दिल्ली
- भारत सरकार, (1986). राष्ट्रीय शिक्षा नीति. नई दिल्ली : मानव संसाधन विकास विभाग.
- भारत सरकार, (1990). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा समिति की रिपोर्ट. नई दिल्ली : मानव संसाधन विकास विभाग.
- भारत सरकार, (2009). शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009. नई दिल्ली : मानव संसाधन विकास विभाग.
- सी.बी.एस.ई. (2009). सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन शिक्षक निर्देशिका 2009. नई दिल्ली : केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड.

- सदगोपाल, अनिल (2009). शिक्षा का अधिकार कानूनः नव उदारवाद का नया चेहरा. शिक्षा विमर्श, नवम्बर–दिसम्बर.
- नायक, जे.पी. (1998). शिक्षा आयोग और उसके बाद. बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन
- बिहार प्राथमिक शिक्षा कम्पेंडियम
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार का वेबसाइट
- Balu, A. N. (1941) (Ed.). Reports on the state of Education in Bengal: William Adam. Calcutta: Calcutta University Press.
- Government of India (2012). Justice Verma Commission Report: Vision of Teacher Education in India Quality and Regulatory Perspective. New Delhi: Ministry of Human Resource Development.
- Long, J. Rev. (1868). Adam's Reports on Vernacular Education in Begal and Behar. Calcutta: The Home Secretariat Press.
- NCERT (2009). All India School Education Survey. New Delhi: NCERT.
- NCTE (2010). National Curriculum Framework for Teacher Education. New Delhi: NCTE.